ISSN : 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का
समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल

वर्ष 22 | अंक 2 | दिसम्बर 2024

www.mpissr.org

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

संरक्षक

प्रोफेसर गोपालकृष्ण शर्मा

सम्पादक

प्रोफेसर यतीन्द्रसिंह सिसोदिया

उप-सम्पादक

डॉ. आशीष भट्ट

डॉ. सुदीप मिश्र

सलाहकार मण्डल

प्रोफेसर अनिल कुमार वर्मा

समाज एवं राजनीति अध्ययन केन्द्र, कानपुर (उ.प्र.)

प्रोफेसर बदरीनारायण

गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रोफेसर राम शंकर

पं. एस.एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

प्रोफेसर संजय लोढ़ा

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर संजीव कुमार शर्मा

चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

प्रोफेसर हिमांशु रॉय

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गणेश कावडिया

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

प्रोफेसर अरुण चतुर्वेदी

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर उत्तमसिंह चौहान

मध्य प्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रोफेसर सन्दीप जोशी

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

UGC-CARE-Group-I ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

वर्ष 22 दिसम्बर 2024 अंक 2

सम्पादक
प्रोफेसर यतीन्द्रसिंह सिसोदिया

उप-सम्पादक
डॉ. आशीष भट्ट
डॉ. सुदीप मिश्र

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान
(भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार
एवं उच्च शिक्षा मन्त्रालय, मध्यप्रदेश शासन का स्वायत्त शोध संस्थान)
6, प्रोफेसर रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र
उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश)

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन द्वारा प्रकाशित ***मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल*** अन्तर्विषयक प्रकृति का समीक्षीत अर्द्धवार्षिक जर्नल है। जर्नल के प्रकाशन का उद्देश्य समाज विज्ञानों में अध्ययन एवं अनुसन्धान को बढ़ावा देना तथा समसामयिक विषयों पर लेखकों एवं शोधार्थियों को लेखन एवं सन्दर्भ हेतु समुचित अवसर प्रदान करना है।

यह जर्नल यूजीसी-कन्सोर्टियम फॉर एकेडमिक एण्ड रिसर्च एथिक्स - समूह-एक (UGC-CARE - Group-I) में सूचीबद्ध है।

समाज विज्ञानियों एवं शोधार्थियों से भारतीय एवं क्षेत्रीय सन्दर्भों पर सम-सामयिक विषयों यथा - सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, विकासात्मक, प्रशासनिक मुद्दों, समस्याओं एवं प्रक्रियाओं पर शोधपरक आलेख, पुस्तक समीक्षा आदि आमन्त्रित हैं।

निदेशक
म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान
6, प्रोफेसर रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र
उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश)
दूरभाष - (0734) 2510978
e-mail: mpissrhindijournal@gmail.com, mailboxmpissr@gmail.com
web: mpissr.org

जर्नल में प्रकाशित शोध आलेखों में प्रस्तुत किये गये तथा व्यक्त किये गये विचार और टिप्पणियाँ सन्दर्भित लेखकों की हैं। इन्हें सम्पादक अथवा संस्थान के विचारों के प्रतिनिधित्व के रूप में नहीं लिया जाना चाहिये।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक		प्रति अंक	
संस्थागत	रु. 400.00	संस्थागत	रु. 200.00
व्यक्तिगत	रु. 300.00	व्यक्तिगत	रु. 150.00

जर्नल के प्रकाशन हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद् (शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार) के प्रति संस्थान आभार व्यक्त करता है।

UGC-CARE-Group-I ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)

वर्ष 22 दिसम्बर 2024 अंक 2

शैक्षिक संकट में बालिकाएँ : मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में सामाजिक रूप से वंचित और आर्थिक रूप से गरीब समूहों के बीच प्रारम्भिक शिक्षा छोड़ने के कारणों का अध्ययन **1**
- पंकज दास

उदीयमान भारत में असाधारण विधि, अन्यकरण तथा मानवाधिकार को चुनौती : सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य **19**
- अभिषेक चौधरी

आशा एवं निराशा के मध्य गाँधी एवं उनके विचार **27**
- निशान्त यादव

शासन से सुशासन तक : सामाजिक दृष्टिकोण से एक विश्लेषणात्मक अध्ययन **45**
- नवीन एवं राजेन्द्र शर्मा

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी, प्रतिनिधित्व एवं मतदान व्यवहार : उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के विशेष सन्दर्भ में **61**
- पूजा भारती एवं रिपुसूदन सिंह

पुरुष प्रवासन और इसके बहुमुखी प्रभाव : घर पर रह गए परिवारों और प्रवासियों पर प्रभावों की एक व्यापक समीक्षा **73**
- विनय कुमार, संजय कुमार एवं सच्चिदानन्द सिन्हा

मतदान व्यवहार अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण - सैद्धान्तिक विश्लेषण **87**
- राकेश कुमार एवं विकास तिवारी

उत्तर प्रदेश से एशियाई देशों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में सोशल नेटवर्क की भूमिका: गोरखपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में **100**
- नरेन्द्र कुमार शर्मा

मुसहर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक अस्मिता और आजीविका का सवाल **122**
- सुमन पाल, गोपाल कृष्ण ठाकुर एवं विनोद कुमार

जनजातियों में विवाह-विच्छेद : एक सामाजिक अध्ययन **136**
- अश्विनी महाजन एवं खोमन लाल साहू

भारत और इजराइल के बीच बढ़ती सामरिक साझेदारी : **146**
रक्षा और सुरक्षा संबंधों के संदर्भ में
- शम्भु लाल सालवी

बुनयादी स्तर पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में खेल आधारित शिक्षा का महत्व : **156**
राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2022 के सन्दर्भ में
- मोनू सिंह गुर्जर एवं नीतू यादव

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: ग्रामीण विकास की ओर सार्थक पहल **167**
- ऋचा शुक्ला

ओबीसी मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति : **176**
उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में
- ज्याउद्दीन एवं हयात अहमद

विकास पर पुनर्विचार : पश्चिमी बनाम भारतीय परम्परा **187**
- रेनू एवं सार्तिक बाघ

छत्तीसगढ़ राज्य की विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति परिवारों के **197**
जोत का आकार एवं मासिक आय स्तर का भौगोलिक विश्लेषण
- शिवेन्द्र बहादुर

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 1-18)
UGC-CARE (Group-I)

शैक्षिक संकट में बालिकाएँ : मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में सामाजिक रूप से वंचित और आर्थिक रूप से गरीब समूहों के बीच प्रारम्भिक शिक्षा छोड़ने के कारणों का अध्ययन

पंकज दास*

कम उम्र में स्कूल छोड़ना पूरे भारत में एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, खासकर मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के ग्रामीण इलाकों और सरकारी स्कूलों में। वर्तमान में यह समस्या अधिक चिन्ताजनक है, क्योंकि विशिष्ट योगदान कारकों के कारण छात्रों के पढ़ाई छोड़ देने का खतरा है। बच्चों की निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और निष्क्रिय सीखने के अनुभव जैसे कारक निम्न जाति और आदिवासी बच्चों के लिए, पढ़ाई छोड़ने का जोखिम बढ़ा सकते हैं। विविध सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की बालिकाओं को समान चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस लेख का उद्देश्य भारत में स्कूल छोड़ने वाली बालिकाओं की समस्याओं को व्यापक रूप से समझना है। यह इस विचार को भी

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
E-mail: daspankaj4@gmail.com

चुनौती देता है कि स्कूल छोड़ना सजातीय श्रेणी है। स्कूल छोड़ना एक घटना नहीं बल्कि एक प्रक्रिया है।

बीज शब्द - शैक्षिक संकट में बालिकाएँ, चुप्पी पूर्वक बहिष्कार, पढ़ाई छोड़ना, निष्क्रिय सीखने के अनुभव।

प्रस्तावना

वर्तमान 'सर्व शिक्षा अभियान', प्रारम्भिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए भारत सरकार का प्रमुख कार्यक्रम है, जो मुख्य रूप से शिक्षा में लिंग और सामाजिक श्रेणी के अन्तर को सार्वभौमिक पहुँच बनाए रखने और पाटने तथा सीखने के स्तर को बढ़ाने से जुड़ा है। एक निश्चित दूरी के भीतर सभी बच्चों तक भौतिक पहुँच के रूप में पहुँच के मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, साथ ही लड़कियों सहित पारम्परिक रूप से बहिष्कृत श्रेणियों की शैक्षिक आवश्यकताओं और दुर्दशा को भी ध्यान में रखा गया है, जो श्रेणियों में सबसे कमजोर समूह है। हाल के दशक में, लिंग अन्तर को सम्बोधित करने के लिए, सरकार ने लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रोत्साहन कार्यक्रमों के भीतर और अधिक समग्र और व्यापक सुधार ढाँचा अपनाया है। सरकार ने लड़कियों की स्कूली शिक्षा में भागीदारी में सुधार के लिए विभिन्न प्रगतिशील रणनीतियाँ शुरू की हैं। इनमें शामिल हैं (अ) लड़कियों के लिए विशिष्ट सुविधाओं और महिला शिक्षकों का प्रावधान; (ब) वर्दी, स्कूल की पाठ्यपुस्तकें, परिवहन और साइकिल जैसे प्रोत्साहन प्रदान करना; (स) प्रारम्भिक शिक्षा में बालिकाओं के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम और मीना मंच के तहत लड़कियों के सशक्तीकरण की पहल; और (द) लड़कियों के आवासीय विद्यालय जैसे कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय। इन रणनीतियों के परिणामस्वरूप अधिक लड़कियाँ सरकारी स्कूलों में जा रही हैं। हालाँकि, कुछ परिस्थितियों में, ये रणनीतियाँ जाति, वर्ग, क्षेत्र और सामाजिक समुदायों में लड़कियों के सभी वर्गों को समाहित करने में विफल रही हैं। परिणामस्वरूप, कई लड़कियाँ अपनी प्रगति के लिए सरकार के सक्रिय कार्यों का लाभ उठाने से वंचित रह गई हैं।

इसके अलावा, नामांकन और प्रतिधारण के सम्बन्ध में लिंग असमानताओं की दृढ़ता स्पष्ट है, भले ही राष्ट्रीय स्तर पर लड़कियों के नामांकन की वृद्धि दर लड़कों की तुलना में अधिक रही है। फिर भी, राष्ट्रीय आँकड़े इस तथ्य की ओर इशारा करते हैं कि जब देश भर में प्राथमिक शिक्षा तक पहुँचने और उसे पूरा करने की बात आती है तो लड़कियाँ अभी भी पीछे हैं।

देश भर में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण को प्राप्त करने के लिए वैकल्पिक रणनीतियों के बारे में सोचते समय, वर्तमान नीति चर्चा ने जाति, वर्ग, क्षेत्र और लिंग के बावजूद सभी बच्चों के लिए निरन्तर पहुँच के मुद्दे को सम्बोधित करने के लिए प्रभावी उपायों पर प्रकाश डाला है। इस सन्दर्भ में, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का अधिनियमन सार्थक है। अधिनियम राज्य के लिए 6-14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को मुफ्त और

अनिवार्य गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य बनाता है। हालाँकि, प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के सम्बन्ध में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के लक्ष्यों को पूरा करने में एक बड़ी बाधा है। शिक्षा तक पहुँच पर विचार करते समय गुणवत्ता आवश्यक है, लेकिन वर्तमान सन्दर्भ में निरन्तर पहुँच का मुद्दा अधिक महत्वपूर्ण है। निराशाजनक आँकड़े (शिक्षा मन्त्रालय, 2020 की रिपोर्ट) बताते हैं कि भारत में 2013-14 में प्राथमिक स्तर पर 6 करोड़ से अधिक लड़कियों का नामांकन किया गया था। छह साल बाद, 2019-20 में, लगभग इतनी ही संख्या में उच्च प्राथमिक स्तर पर नामांकित होना चाहिए था। हालाँकि, 2019-20 की रिपोर्ट में कहा गया है कि केवल 35 लाख नामांकित हैं, जिनमें से अधिकांश 6-14 वर्ष की आयु वर्ग की लड़कियाँ हैं, प्रारम्भिक चरण पूरा करने से पहले स्कूल छोड़ देती हैं। इन शाला त्यागी छात्रों में निम्न जाति और आदिवासी लड़कियों का एक उच्च अनुपात देश में स्कूल छोड़ने की दर में योगदान देता है (यूनिफाइड डिस्ट्रिक्ट इंफॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन 2019-20)।

इसलिए, भारत जैसे देश में विविध सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों के बीच, प्रासंगिक आयु वर्ग की प्रत्येक लड़की के लिए प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करना और बुनियादी शिक्षा चक्र को कई कठिनाइयों और समस्याओं के बिना पूरा करना अधिक महत्वपूर्ण है (दास, 2011)। भले ही लड़कियों का नामांकन बढ़ रहा है, लेकिन यह सामाजिक रूप से प्रतिगामी माहौल में हो रहा है, यानी, लड़कियों को अपनी रूढ़ीवादी सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना के कारण स्कूली शिक्षा बन्द करने या शैक्षिक प्रणाली छोड़ने की सम्भावना है।

यह देखा जा सकता है कि प्राथमिक स्तर पर स्कूल जाने वाली भारतीय लड़कियों की एक बड़ी आबादी को चुपचाप बाहर रखा गया है और उन्हें 'शैक्षिक संकट वाले बच्चों' की श्रेणी में धकेल दिया गया है। नीतिगत स्तर पर, इस बात पर विचार करना कि इन बच्चों के लिए शुरू किये गये कई नवीन प्रोत्साहनों और योजनाओं के बावजूद बच्चे प्रारम्भिक चक्र पूरा क्यों नहीं कर रहे हैं, इस पर कम ध्यान दिया गया है। हम इस बात से अनभिज्ञ हैं कि प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में शाला त्यागियों की दर बहुत अधिक है, जिसमें देश के ग्रामीण हिस्सों के अधिकांश सरकारी स्कूलों में शाला छोड़ने वाली अधिकांश लड़कियाँ भी शामिल हैं। इस सन्दर्भ में, कई सवाल उठाए जा सकते हैं, जैसे किसी विशेष क्षेत्र में लड़कियों को स्कूल छोड़ने के खतरे का सामना क्यों और किस हद तक करना पड़ता है? हालाँकि इसका कोई सीधा उत्तर नहीं है, कोई इसका उत्तर निकाल सकता है या कह सकता है कि ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बच्चे की स्कूल की सफलता या विफलता घर और स्कूल के अधिकार क्षेत्र की गतिशील परस्पर क्रिया के बीच होती है। भारत में स्कूल छोड़ने वालों पर अधिकांश साहित्य में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि लड़कियों का स्कूल छोड़ना पारिवारिक बाधाओं या संरचनात्मक कारकों से जुड़ा है (कार्लेकर, 1988)। हालाँकि, मौजूदा साहित्य समस्या के 'कैसे' का कोई स्पष्ट विवरण प्रदान नहीं करता है, अर्थात् किसी विशेष सन्दर्भ में लड़कियों की पढ़ाई कैसे छूट रही है। दूसरे शब्दों में, भारतीय उपमहाद्वीप में इस क्षेत्र पर मौजूदा शोध साहित्य 'शैक्षिक संकट' की प्रक्रिया को समझाने और यह बताने में विफल

रहा है कि कैसे कुछ लड़कियों को स्कूल से बाहर कर दिया जाता है जबकि अन्य नामांकित रहती हैं और विशेष सन्दर्भों में कक्षाओं में भाग लेती हैं। इस तर्क के विपरीत, इस बात पर प्रकाश डालना जरूरी है कि ऐसी समस्याओं को सुलझाया जाना चाहिए और लड़कियों के बीच स्कूल छोड़ने की घटना को सम्बोधित करने के लिए संकट कारकों की अन्तर्निहित प्रक्रियाओं की गम्भीरता से जाँच की जानी चाहिए। इस व्यापक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, पारम्परिक रूप से शैक्षिक रूप से पिछड़े दो राज्यों मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में बालिकाओं की स्थितियों के विश्लेषण के माध्यम से, जहाँ बड़े पैमाने पर प्रारम्भिक कक्षाओं में बालिकाएँ स्कूली शिक्षा के बुनियादी चक्र को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रही हैं और 'स्कूल छोड़ने के संकट क्षेत्र में' (लेविन, 2007), वर्तमान शोध पत्र का उद्देश्य भारत के दो राज्यों में स्कूली शिक्षा में लड़कियों के शाला त्यागी की घटना की सीमा और प्रक्रिया की खोज करना है।

वर्तमान शोध पत्र तीन खंडों में विभाजित है। पहला खंड प्रारम्भिक शिक्षा में 'शैक्षिक संकट में लड़कियों' के अध्ययन क्षेत्रों से सम्बन्धित विस्तृत विश्लेषण बताता है। दूसरा खंड पारिवारिक पृष्ठभूमि, स्कूली शिक्षा के अनुभवों और सामाजिक परिवेश के विशेष सन्दर्भों में संकट वाली लड़कियों के कुछ गहन मामलों के अध्ययन के विश्लेषण के आधार पर स्कूल छोड़ने की प्रक्रिया की पड़ताल करता है। अन्तिम खंड, यानी निष्कर्ष भाग, वर्तमान अध्ययन के नीतिगत निहितार्थों पर चर्चा करके भारतीय सन्दर्भ में स्कूल छोड़ने की प्रारम्भिक घटना को रोकने के विकल्पों की व्याख्या करता है।

शैक्षिक संकट कारकों की प्रकृति की सैद्धान्तिक समझ

'शैक्षिक संकट में' शब्द बहुत विवादास्पद है, और संकट में छात्रों का वर्णन करने के लिए कोई एकवचन परिभाषा नहीं है। हालाँकि, कई लोगों ने इसे छात्रों के बीच संकट कारकों की विशेषताओं को इंगित करने के लिए परिभाषित किया है। डफर्टी (1989) जैसे शोधकर्ताओं ने विस्तार से बताया कि संकट वाले छात्र वे व्यक्ति हैं जो स्कूल छोड़ चुके हैं, आत्महत्या कर रहे हैं, या तो यौन रूप से सक्रिय हैं या किशोरावस्था में गर्भवती हैं, या शराबी हैं। डफर्टी (1989) ने 'शैक्षिक संकट वाले छात्रों' को ऐसे छात्रों के रूप में परिभाषित किया है, जो विभिन्न कारणों से, स्कूल में अच्छा प्रदर्शन नहीं करते हैं और जिनके स्कूल छोड़ने की सम्भावना है। हालाँकि, ब्राउन (1986) के शोध निष्कर्ष इस बात पर जोर देते हैं कि शैक्षिक संकट वाले छात्रों की पहचान करने में व्यवहार सम्बन्धी लक्षण महत्वपूर्ण हैं। ब्राउन के ढाँचे के अनुसार, शैक्षिक संकट वाले छात्रों को परिभाषित करने के लिए दो-तरफा आयाम हैं। पहला छात्र की पृष्ठभूमि और सामाजिक और भावनात्मक विशेषताओं पर जोर देता है। दूसरा समस्याग्रस्त व्यवहार पर आधारित है, जिसमें निम्न ग्रेड, कक्षा छोड़ना, विघटनकारी कार्य, कम उपलब्धि और शैक्षणिक प्रगति की कमी शामिल है।

अन्य शोध अध्ययनों से संकेत मिलता है कि पुनरावृत्ति, खराब प्रदर्शन और लम्बे समय तक अनुपस्थिति की घटनाएँ शाला त्याग की घटना की मुख्य प्रक्रियाएँ हैं (हंट,

2008; रामचन्द्रन एवं अन्य, 2003)। ये कारक बच्चों को 'शैक्षिक संकट वाले बच्चों' की श्रेणी में रखते हैं। उचित रूप से, संकट में बताए गए छात्र को पर्याप्त कौशल के साथ अपनी शिक्षा पूरी करने में असफल होने का खतरा है। शैक्षिक संकटकारकों में कम उपलब्धि, खराब उपस्थिति, ग्रेड में दोहराव या अवरोध, और लम्बे समय तक अनुपस्थिति शामिल है, जो उन्हें संकट में डालती है। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि दोहराव या असफलता बच्चों के दिमाग और आत्मविश्वास पर नकारात्मक प्रभाव डालती है (फिन, 1989)। इसके परिणामस्वरूप स्कूल में नापसन्दगी पैदा होती है, जो बदले में, उसे जल्दी ही स्कूल से बाहर कर देती है। लम्बे समय तक अनुपस्थिति को कई मामलों में स्कूल छोड़ने का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। शोध से संकेत मिलता है कि अनियमित उपस्थिति और अस्थायी निकासी स्कूल छोड़ने में अग्रणी हो सकते हैं (हंट, 2008) इसी तरह, यह साबित करने के लिए बहुत सारे शोध प्रमाण हैं कि खराब प्रदर्शन या कम उपलब्धि वाले बच्चों में उच्च उपलब्धि वाले बच्चों की तुलना में पढ़ाई छोड़ने की सम्भावना अधिक होती है (बॉयल एवं अन्य, 2002; हंटर और मई, 2003)। इस प्रकार, खराब शैक्षणिक उपलब्धि, बदले में, स्कूल छोड़ने की भविष्यवाणी करती है।

भारत में लड़कियों के स्कूल छोड़ने पर सम्बन्धित साहित्य का संक्षिप्त अवलोकन

आश्चर्यजनक रूप से भारतीय महाद्वीप में स्कूल छोड़ने वाली लड़कियों पर बहुत कम अध्ययन हुए हैं, और शैक्षिक संकट वाले बच्चों, विशेष रूप से संकट वाली लड़कियों, के सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों के सम्बन्ध में बमुश्किल कोई अनुभवजन्य शोध किया गया है। हालाँकि, लड़कियों के शाला त्याग पर कुछ अध्ययन हैं, जो अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों में लड़कियों के स्कूल छोड़ने के कुछ शैक्षिक संकट कारकों को उजागर करते हैं। सेनगुप्ता और गुहा (2002) ने पश्चिम बंगाल राज्य में बालिकाओं के एक अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि स्कूल में भागीदारी, नामांकन और शाला त्याग सबसे महत्वपूर्ण कारक घरेलू कारक थे जैसे माता-पिता की स्कूली शिक्षा, घरेलू आय और पिता का व्यवसाय। उन्होंने यह भी पाया कि जाति और धर्म शिक्षा के आवश्यक निर्धारक थे। इसी तरह, वैद (2004) के निष्कर्षों ने भी समर्थन किया कि कैसे जाति ने भारत में लड़कियों की शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि स्कूल की निरन्तरता के सम्बन्ध में जाति के प्रभाव के लिए केवल आंशिक और कमजोर समर्थन है। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) के एक अध्ययन में रामचन्द्रन और सैहजी (2003) ने पाया है कि माता-पिता की आय, जाति, व्यवसाय और शैक्षिक स्तर जैसी 'सामान्य घरेलू विशेषताएँ' पहुँच, उपस्थिति, पूर्णता और सीखने की उपलब्धियों को निर्धारित करती रहती हैं। चनाना (2001) ने यह भी देखा है कि लड़कियों की शिक्षा के मामले में सामाजिक और शैक्षणिक लक्ष्य एक समान होते हैं, जिससे उन्हें व्यायाम एजेंसी के लिए कोई गुंजाइश नहीं मिलती है। एजेंसी का विचार बच्चे के व्यक्तित्व की प्रकृति और सीखने की

शैली, रुचि और अखंडता में वैयक्तिकता को समायोजित करता है, इस प्रकार उसके शारीरिक, बौद्धिक और भावनात्मक पहलुओं की एकता को दर्शाता है। ये विशेषताएँ अनिवार्य रूप से बचपन से जुड़ी हैं, खासकर समकालीन दुनिया में लड़कियों के सन्दर्भ में, जो समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक नैतिकता पर आधारित है (कुमार, 2010)। इस प्रकार, हमारे समुदाय में लड़कियों का जिस प्रकार का समाजीकरण होता है, वह उनकी स्कूली शिक्षा की निरन्तरता को गम्भीर रूप से प्रभावित करता है। लिंग और जाति पर एक अध्ययन में, लीला दुबे (2001) ने भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों में लड़कियों के लिए 'बड़े होने' के अर्थ की जाँच की। दुबे के विश्लेषण से पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में और शहरी क्षेत्रों में कुछ वर्गों में, युवावस्था की उम्र में लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर में काफी वृद्धि हुई है। घरेलू निर्णय और घरेलू क्षेत्र के सांस्कृतिक मानदंड लड़कियों की शिक्षा को प्रभावित करते हैं। यह स्पष्ट है कि सांस्कृतिक मानदंड, साथ ही पारिवारिक आजीविका रणनीतियाँ, लड़कों की तुलना में लड़कियों की शिक्षा को अधिक संकट में डालती हैं। लड़कियाँ लड़कों की तुलना में नुकसान में हैं, न केवल उनके स्कूल में प्रवेश और ठहराव की सम्भावनाओं में, बल्कि घर द्वारा प्रदान किए जाने वाले शैक्षणिक वातावरण में भी। उदाहरण के लिए, लड़कों को अपनी शिक्षा में निवेश किए गए संसाधनों, घर के भीतर पढ़ाई के लिए उपलब्ध समय, शैक्षणिक सहायता (जैसे ट्यूशन या निजी कोचिंग) और बच्चों को प्रदान किए जाने वाले अन्य शैक्षणिक अनुभवों के मामले में अपनी बहनों पर बढ़त हासिल होती है (नंबिसन, 1995)। भारत के दस अलग-अलग राज्यों में किए गए झा और झिंगरन के अनुभवजन्य अध्ययन (2005) से पता चला कि लड़कियों को विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं के कारण स्कूलों के भीतर और बाहर भेदभाव का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार, स्कूल से सम्बन्धित कारक लड़कियों की पढ़ाई छोड़ने में अहम भूमिका निभाते इस प्रकार, स्कूल की भौतिक दूरी और सुरक्षा मुद्दों के अलावा, प्रभावी शिक्षक, गुणवत्तापूर्ण शिक्षण, गतिशील कक्षाएँ और लिंग-अनुकूल पाठ्यक्रम स्कूल में लड़कियों की निरन्तरता को प्रभावित करते हैं। कुछ अध्ययन लड़कियों की निरन्तर पहुँच पर स्कूल की गुणवत्ता के प्रभाव और खराब शिक्षण और सीखने की प्रथाओं और लड़कियों की स्कूल छोड़ने की बढ़ती दर के बीच एक सकारात्मक सहसम्बन्ध की स्थापना का संकेत देते हैं (रामपाल, 2000; झा और झिंगरन, 2005)।

डेटा और कार्यप्रणाली

इस खंड में, अध्ययन के अनुसन्धान डिजाइन और पद्धति का वर्णन करने का प्रयास किया गया है। केन्द्रीय अनुसन्धान प्रश्नों के आधार पर, अध्ययन का उद्देश्य लड़कियों के बीच 'स्कूल छोड़ने के संकट' की भयावहता को समझाना था और दूसरा, चयनित अध्ययन क्षेत्रों में 'शैक्षिक संकट में' की अन्तर्निहित प्रक्रिया का पता लगाना था। वर्तमान अध्ययन का डिजाइन विश्लेषणात्मक और खोजपूर्ण है।

हालाँकि, विश्लेषण के लिए, वर्तमान अध्ययन में तीन समूहों (मध्य प्रदेश के दो समूह और छत्तीसगढ़ के एक समूह) के घरेलू-स्कूल रोस्टर-मिलान तथ्यों का उपयोग किया गया है। मिलान किए गए तथ्य स्कूलों के साथ-साथ उन लड़कियों के परिवारों की जानकारी दर्शाते हैं जो चयनित सरकारी स्कूलों में कक्षा I-VIII में पढ़ती हैं।

अध्ययन के लिए छत्तीसगढ़ में राजनान्दगाँव (एक विकसित ग्रामीण क्षेत्र), रीवा (एक कम विकसित ग्रामीण क्षेत्र), और मध्य प्रदेश में डिंडोरी (एक अत्यधिक अविकसित क्षेत्र) जिलों की विकास सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर, उन्हें अध्ययन के लिए चुना गया है। अध्ययन के प्रत्येक चयनित क्षेत्र में गाँवों का एक समूह शामिल है। राजनान्दगाँव जिले के डोंगरगाँव ब्लॉक और रीवा जिले के हुजूर ब्लॉक दोनों से 11 गाँवों का एक समूह चुना गया और डिंडौरी जिले से करंजिया और बैजाग ब्लॉक से 14 गाँवों का एक समूह चुना गया। अनुसूचित जनजातियाँ मुख्य रूप से करंजिया और बैजाग में निवास करती हैं और 'बैगा चक' का हिस्सा हैं। इन ब्लॉकों में से डोंगरगाँव ब्लॉक से 21, हुजूर ब्लॉक से 31 और करंजिया और बैजाग ब्लॉक से 18 स्कूलों को वर्तमान अध्ययन के लिए चुना गया था।

नमूना आकार में तीन जिलों के 36 गाँवों में पहली से 8वीं कक्षा की श्रेणी के 1832 बच्चों में से 70 सरकारी स्कूलों को शामिल किया गया, जिनमें स्कूल जाने वाली, लम्बे समय से अनुपस्थित रहने वाली और खराब प्रदर्शन करने वाली बालिकाएँ थीं।

वर्तमान अध्ययन में गुणात्मक और मात्रात्मक डेटा का उपयोग किया गया। इस प्रकार, मात्रात्मक तथ्यों के विश्लेषण में, वर्णनात्मक आँकड़े और एक प्रतीपगमन विश्लेषण मॉडल (लॉजिस्टिक रिग्रेशन मॉडल) दोनों का उपयोग किया गया था। चयनित नमूनों का वैयक्तिक अध्ययन साक्षात्कार और क्षेत्र अवलोकन के माध्यम से किया गया था और इसमें गुणात्मक जानकारी शामिल थी जो बालिकाओं के बीच स्कूल छोड़ने की प्रक्रिया को समझने में मदद कर सकती थी। इस प्रयोजन के लिए, आठ बच्चों के एक समूह ने खुद को स्कूल छोड़ने के उच्च संकट में पाया, क्योंकि कुछ लम्बे समय तक अनुपस्थित रहे, शिक्षकों द्वारा खराब प्रदर्शन करने वालों के रूप में रैंक किए गए, या उन्हें स्कूली शिक्षा के दौरान कम से कम एक बार अपने ग्रेड दोहराने पड़े। उनकी पहचान 'चुप्पीपूर्वक बहिष्कार'/'खामोशीपूर्ण बहिष्कार' के खतरे का सामना करने वाले शिक्षार्थियों के रूप में की जाती है। चाइल्ड ट्रैकिंग कार्ड डेटा और स्कूल रोस्टर डेटा के आधार पर आठ नमूना मामलों को यादृच्छिक रूप से चुना गया था।

निष्कर्ष और चर्चा

प्राथमिक विद्यालयों में लड़कियों के बीच पुनरावृत्ति दर

बालिकाओं में पुनरावृत्ति दर का विश्लेषण पुनरावृत्ति पर एकत्र किए गए आँकड़ों पर आधारित है। पुनरावृत्ति आँकड़ों से पता चलता है कि किसी भी कक्षा में अपने जीवन के किसी भी चरण में पुनरावृत्ति का अनुभव करने वाली लड़कियों की संख्या।

पूरे समय में बालिकाओं के बीच समग्र पुनरावृत्ति दर का विश्लेषण करते हुए, परिणाम में उल्लेख किया गया कि राजनान्दगाँव में पुनरावृत्ति दर कम हुई है, लेकिन सन्तोषजनक अंक तक नहीं है। हालाँकि, अन्य दो समूहों में, सभी नमूना स्कूलों में लड़कियों के बीच समग्र पुनरावृत्ति दर में काफी वृद्धि हुई है। इन प्रतिशतों का बारीकी से विश्लेषण करने से हमें एक स्पष्ट तस्वीर मिलती है कि राजनान्दगाँव की तुलना में रीवा और डिंडोरी में लड़कियों को पुनरावृत्ति का खतरा अधिक है और इस प्रकार स्कूल छोड़ने का खतरा है।

तालिका 1 से पता चलता है कि पूरे रीवा में प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में पुनरावृत्ति दर में काफी वृद्धि हुई है। हालाँकि, डिंडोरी में प्राथमिक विद्यालयों में पुनरावृत्ति दर वृद्धि हुई है। फिर भी, प्राथमिक विद्यालयों में पुनरावृत्ति दर में वृद्धि के बावजूद दोनों समूहों में, राजनान्दगाँव समूह के प्राथमिक विद्यालयों में लड़कियों के बीच पुनरावृत्ति दर में काफी कमी आई थी। यह इंगित करता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय बहुत निराशाजनक स्थिति में हैं। इसके अलावा, रीवा और डिंडोरी समूहों में प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षणिक माहौल प्राथमिक विद्यालयों के भीतर उच्च पुनरावृत्ति दर के कारण बहुत खराब था।

तालिका 1

तीनों समूहों के सभी स्कूलों में लड़कियों की पुनरावृत्ति दर (प्रतिशत)

	राजनान्दगाँव	रीवा	डिंडोरी
I-V	2.00	21.65	19.92
VI-VIII	2.08	6.91	0.38

प्राथमिक विद्यालयों में लम्बे समय तक अनुपस्थिति

तीन समूहों में प्रारम्भिक ग्रेड वाले लगभग सभी प्राथमिक, मध्य और उच्च विद्यालयों में लम्बी अनुपस्थिति दर व्याप्त है। स्कूल के रजिस्टरों में यह पाया गया कि कुछ बच्चे एक महीने (तथ्य संग्रह के पिछले महीने) में सात दिनों से अधिक अनुपस्थित रहे। वर्तमान अध्ययन में लम्बे समय तक अनुपस्थिति (7 दिन से अधिक) की घटना इंगित करती है कि मध्य विद्यालयों की तुलना में प्राथमिक विद्यालयों में अभी भी अधिक अनुपस्थिति पाई जाती है। सबसे दिलचस्प अवलोकन यह है कि राजनान्दगाँव और डिंडौरी इन दोनों समूहों में अनुपस्थिति दर में वृद्धि और कमी के बावजूद, रीवा समूह में सभी प्राथमिक विद्यालयों (22. 84 प्रतिशत) में लम्बे समय तक अनुपस्थिति की दर अधिक है।

तालिका 2

तीन समूहों के सभी स्कूलों में लड़कियों के बीच लम्बी अनुपस्थिति की दर (प्रतिशत)

	राजनान्दगाँव	रीवा	डिंडोरी
I-V	5.53	22.84	18.72
VI-VIII	4.61	8.39	0.74

प्राथमिक विद्यालयों में खराब प्रदर्शन की घटनाएँ

तीन समूहों में खराब प्रदर्शन की घटना के बने रहने से पता चला कि कुछ लड़कियों ने शिक्षकों की रेटिंग (तथ्य संग्रह के दौरे के दिन) के अनुसार औसत से नीचे और बहुत खराब प्रदर्शन किया था; ये वे बच्चे हैं जो खराब प्रदर्शन करने वालों की श्रेणी में आते हैं और राजनान्दगाँव, रीवा और डिंडोरी जिलों के चयनित क्षेत्रों में शैक्षिक संकट या कमजोर बच्चे माने गए हैं। इन बच्चों का विस्तृत विश्लेषण इस प्रकार किया गया है।

अध्ययन क्षेत्रों में खराब प्रदर्शन की घटनाओं से तीन अलग-अलग तस्वीरें सामने आई हैं। हालाँकि, देखी गई सामान्य प्रवृत्ति से पता चलता है कि पूरे प्राथमिक और मध्य विद्यालय स्तर पर, तीन समूहों में लड़कियों के बीच खराब प्रदर्शन की घटना बनी हुई है। तालिका 3 इंगित करती है कि राजनान्दगाँव समूह में मध्य विद्यालयों (3.66 प्रतिशत) की तुलना में सभी प्राथमिक विद्यालयों (7.64 प्रतिशत) में खराब प्रदर्शन की दर अधिक है। यही प्रवृत्ति रीवा और डिंडोरी समूहों में भी पाई जाती है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राज्य सरकार के प्राथमिक विद्यालय उच्च खराब प्रदर्शन दर के कारण तीन समूहों में सबसे खराब स्थिति में हैं।

तालिका 3

तीन समूहों के सभी स्कूलों में लड़कियों के बीच खराब प्रदर्शन की दर

	राजनान्दगाँव	रीवा	डिंडोरी
I-V	7.64	11.84	18.75
VI-VIII	3.66	6.57	1.47

जिन लड़कियों को स्कूल छोड़ने का खतरा है उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

साहित्य के एक स्थापित निकाय ने स्कूल की उपलब्धि और स्कूल छोड़ने वाले व्यवहार के एक शक्तिशाली भविष्यवक्ता के रूप में सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, विशेष रूप से माता-पिता की शिक्षा और आय पर स्पष्ट रूप से जोर दिया है (झा और झिंगरन, 2005; रमबर्गर, 1995)। इन पूर्व-स्थापित निष्कर्षों के आधार पर, वर्तमान अध्ययन का विश्लेषण 'शैक्षिक संकट में लड़कियों' की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और स्कूलों में उनकी निरन्तरता और समाप्ति पर इन कारकों के प्रभाव के आधार पर किया गया है। इस प्रकार, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते समय यह पाया गया कि अधिकांश पुनरावर्तक, अनुपस्थित और खराब प्रदर्शन करने वाले तीनों समूहों में आम तौर पर सामाजिक रूप से वंचित और आर्थिक रूप से वंचित समुदायों से थे। राजनान्दगाँव में अधिकांश अन्य पिछड़ा वर्ग, और रीवा में, डिंडोरी में शैक्षिक संकट वाले बच्चों की सभी तीन श्रेणियों में अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति बच्चों का अनुपात सबसे अधिक है।

इसके अलावा, शैक्षिक संकट वाली लड़कियों की आर्थिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण से पता चला कि उनमें से ज्यादातर तीन समूहों में गरीब घरों से हैं।

इसके अलावा, रीवा और डिंडोरी के समूहों में शैक्षिक संकट वाली अधिकांश लड़कियाँ आर्थिक रूप से कमजोर घरों में पाई जाती हैं। इन बच्चों (पुनरावर्तक, लम्बे समय से अनुपस्थित और खराब प्रदर्शन करने वाले) के माता-पिता की शिक्षा का विश्लेषण मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के सभी चयनित क्षेत्रों में संकट वाली लड़कियों के माता-पिता की निम्न शैक्षिक स्थिति से दृढ़ता से सम्बन्धित है। परिणामों से पता चलता है कि माता-पिता की शैक्षिक योग्यता में वृद्धि के साथ, सभी चयनित सरकारी प्राथमिक, मध्य और उच्च विद्यालयों में प्रारम्भिक शिक्षा पढ़ रही लड़कियों के बीच लम्बे समय तक अनुपस्थिति, खराब प्रदर्शन और पुनरावृत्ति की घटनाओं में गिरावट आई है, जिनमें मध्य खंड शामिल हैं।

स्कूल सुविधाओं और स्कूल छोड़ने के शैक्षिक संकट संकेतकों के बीच सम्बन्ध

स्कूल सुविधाओं और लड़कियों के स्कूल छोड़ने के शैक्षिक संकट संकेतकों के बीच सम्बन्ध उन स्कूलों में स्कूल शैक्षणिक और भौतिक सुविधाओं की स्थिति को इंगित करता है, जिन्हें उच्च पुनरावृत्ति दर, उच्च खराब प्रदर्शन दर की निरन्तरता के लिए संकट वाले स्कूलों के रूप में उच्च दर्जा दिया गया है। लम्बे समय तक अनुपस्थिति की उच्च दर परिणामों से पता चलता है कि राजनान्दगाँव, रीवा और डिंडोरी के चयनित क्षेत्रों में उच्च पुनरावृत्ति दर की निरन्तरता के लिए छह स्कूलों को संकट वाले स्कूलों के रूप में उच्च दर्जा दिया गया है। इन छह नामित संकट वाले स्कूलों में, यह पाया गया कि केवल चार संकट वाले स्कूलों में उचित बुनियादी सुविधाएँ, जैसे कांक्रीट की इमारतें, अच्छी स्थिति और पर्याप्त कक्षाएँ थीं। इसके अलावा, केवल तीन नामित संकट वाले स्कूलों में शौचालय की सुविधा है, और तीन संकट वाले स्कूलों में नहीं है। पेयजल सुविधाओं की उपलब्धता को लेकर लगभग सभी संकट भरे स्कूलों में यह सुविधा है। यानी इनमें से अधिकांश स्कूलों में पर्याप्त भौतिक सुविधाएँ हैं। हालाँकि, तीन स्कूलों में उचित शैक्षणिक सुविधाएँ और पर्याप्त शिक्षक तथा छात्र अनुपात है। हालाँकि, अन्य स्कूलों में दिए गए स्कूल मानदंडों के अनुसार पर्याप्त शिक्षक और छात्र अनुपात नहीं है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उच्च पुनरावृत्ति दर वाले स्कूलों में पर्याप्त भौतिक सुविधाएँ हैं, लेकिन अधिकांश में पर्याप्त शिक्षक-छात्र अनुपात नहीं है। इसलिए, तीन समूहों में सबसे अधिक बार-बार होने वाले स्कूलों में शैक्षणिक सुविधाएँ अपर्याप्त हैं।

इसके अलावा, नतीजे बताते हैं कि खराब प्रदर्शन की उच्च दर वाले स्कूलों के तीनों समूहों में अपर्याप्त भौतिक और शैक्षणिक सुविधाएँ थीं। हालाँकि, लम्बे समय तक अनुपस्थित रहने के कारण संकट भरे माने जाने वाले स्कूलों में अपर्याप्त भौतिक सुविधाएँ हैं। हालाँकि, राजनान्दगाँव, रीवा और डिंडोरी जिलों के चयनित क्षेत्रों के उन स्कूलों में शैक्षणिक सुविधाएँ पर्याप्त थीं।

स्कूल छोड़ने की संवेदनशीलता पर शैक्षिक संकट कारकों का शुद्ध प्रभाव

सामान्य व्यापक धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि जो बच्चे लम्बे समय तक अनुपस्थित रहे थे वे कक्षा में बहुत खराब प्रदर्शन करेंगे। यह खराब प्रदर्शन, जिसका सीधा सम्बन्ध पाठ में दोहराव से है, अन्तत: उन्हें स्कूल से बाहर कर देगा। इस प्रकार, उन बच्चों की लम्बे समय तक अनुपस्थिति के सम्बन्ध और उनके खराब प्रदर्शन पर प्रभाव और पुनरावृत्ति पर जाँच करने के लिए तीन चयनित अध्ययन क्षेत्रों में प्रतीपगमन विश्लेषण (लॉजिस्टिक रिग्रेशन) की एक सांख्यिकीय रूप से उपयुक्त विधि को अध्ययन में नियोजित किया गया था। लॉजिस्टिक मॉडल के बुनियादी ढाँचे के साथ, स्कूल छोड़ने की संवेदनशीलता पर शैक्षिक संकट कारकों के शुद्ध प्रभावों का निम्नलिखित क्रम में विश्लेषण किया गया -

मॉडल-1

लॉगिट (आर) = $\ln$ [पी/(1-पी)] = $\beta_0+\beta_1 X_1+.....\beta_K X_K$

जहाँ $\ln$ (पी/1-पी) = 1 है, बच्चे का प्रदर्शन में खराब है और यदि अन्यथा है तो 0 है

β = स्थिर पद

X_1= लम्बी अनुपस्थिति (1=लम्बी अनुपस्थिति, 0 अन्यथा है)

मॉडल-2

लॉगिट (आर) = $\ln$ [पी/(1-पी), = $\beta_0+\beta_1 X_1+.....\beta_K X_K$

जहाँ $\ln$ (पी/1-पी) = 1 बच्चे में दोहराया गया है और 0 दोहराया नहीं गया है

β = स्थिर पद

X_1 = लम्बी अनुपस्थिति (1=लम्बी अनुपस्थिति, 0 अन्यथा है)

तालिका 4

प्रतिगमन विश्लेषण के परिणाम

स्कूल ड्रॉप-आउट		
स्वतन्त्र चर	आश्रित चर	
	खराब प्रदर्शन	पुनरावृत्ति
लम्बी अनुपस्थिति		
N	1601	1558
R^2	0.62	0.57

*0.01 सार्थकता स्तर पर।

प्रतिगमन विश्लेषण परिणाम (तालिका 4) दर्शाते हैं कि सभी तीन समूहों में तीन चर के बीच एक सकारात्मक और महत्वपूर्ण सम्बन्ध चक्रीय रूप से मौजूद है। इसका तात्पर्य यह है कि जिन बच्चों ने कक्षा में खराब प्रदर्शन किया, वे सीधे कक्षा में लम्बे समय तक

अनुपस्थित रहने का परिणाम है। इसी तरह, पुनरावृत्ति का सीधा सम्बन्ध लम्बे समय तक अनुपस्थिति से है। यह भी पाया गया है कि खराब प्रदर्शन का सीधा सम्बन्ध प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ने वाले उन बच्चों के लम्बे समय तक अनुपस्थिति से है। फिर भी, तालिका 4 से यह पता लगाया जा सकता है कि शैक्षिक संकट कारक या संकेतक चक्रीय रूप से आगे बढ़ रहे हैं। वर्तमान मामले में यह स्पष्ट है कि लम्बे समय तक अनुपस्थिति के कारण खराब प्रदर्शन हुआ और पुनरावृत्ति भी हुई। शैक्षिक संकट कारक चक्रीय रूप से बढ़ते हैं, लम्बे समय तक अनुपस्थिति से लेकर खराब प्रदर्शन और पुनरावृत्ति तक, जो अन्ततः परिणाम देता है स्कूल से शाला त्यागी या अन्तिम निष्कासन। प्रतिगमन परिणामों के आधार पर, छोड़ने की प्रक्रिया को विस्तृत करने के लिए एक वैचारिक चक्रीय मॉडल विकसित किया गया था।

चित्र 1
शाला त्यागियों की प्रक्रिया का वैचारिक चक्रीय मॉडल

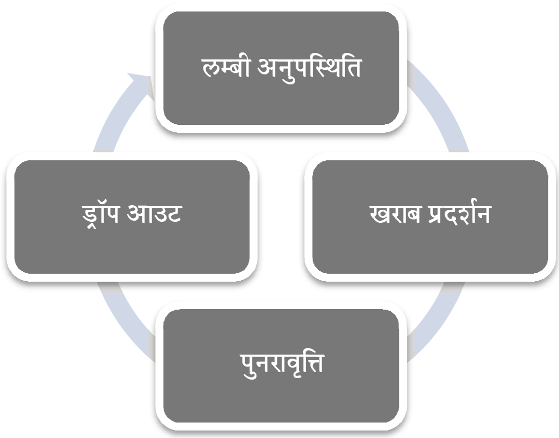

कुछ केस अध्ययनों के माध्यम से लड़कियों के स्कूल छोड़ने की प्रक्रिया की खोज

भारत में शाला त्यागी दर एक गम्भीर समस्या है। यह जटिल प्रक्रियाओं और कारकों की परस्पर क्रिया का परिणाम है। बच्चे के स्कूल में शामिल होने के बाद औपचारिक सीखने के माहौल से स्कूली बच्चों को अलग-अलग तरह से बाहर रखा जाता है। पढ़ाई छोड़ देना कोई अलग घटना नहीं है, बल्कि परस्पर सम्बन्धित घटनाओं, स्थितियों और सन्दर्भों की एक प्रक्रिया है जो इसे उत्पन्न करने के लिए मिलकर काम करती है (दास, 2010; 9)। लड़कियों के स्कूल छोड़ने की छिपी हुई प्रक्रिया का पता लगाने के लिए, घर और स्कूल से सम्बन्धित कारकों का गुणात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है जो बच्चे की स्कूल की सफलता या विफलता को प्रभावित करते हैं। इसके लिए, प्राथमिक क्षेत्र सर्वेक्षण मौन बहिष्कार के खतरे का सामना कर रहे वर्तमान में नामांकित आठ छात्रों के नमूने पर किया

गया था। खामोशी बहिष्करण एक ऐसी प्रक्रिया है जो उन छात्रों पर लागू होती है जो आम तौर पर शारीरिक रूप से उपस्थित रहते हैं लेकिन कक्षा के लेन-देन से बहुत कम संज्ञानात्मक लाभ प्राप्त करते हैं। कम उपस्थिति, खराब प्रदर्शन और दोहराव का अनुभव करने के बाद, उन्हें स्कूल छोड़ने के शैक्षिक संकट वाले लोगों की श्रेणी में डाल दिया जाता है (दास, 2011)। फिर भी, मामले के इतिहास ने न केवल उस प्रक्रिया का संकेत दिया जिसके माध्यम से बच्चे स्कूल छोड़ने से पहले गुजरते हैं, बल्कि स्कूल छोड़ने वालों की विशेषताओं और समस्याओं की स्पष्ट समझ भी प्रदान करते हैं, जो सजातीय नहीं हैं लेकिन एक मामले से दूसरे मामले और एक स्थिति से दूसरे स्थिति में काफी भिन्न होते हैं। इसलिए, लड़कियों के स्कूल छोड़ने की अन्तर्निहित प्रक्रिया को उजागर करने के लिए इन छोटे पैमाने के गहन अध्ययनों को बड़ी मात्रात्मक तस्वीर से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

उनके विशेष सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भों में 'शैक्षिक संकट में बच्चों' के चयनित जीवन इतिहास से एकत्रित, दर्ज और विश्लेषण किए गए अनुभव उनके बीच समानता के विशिष्ट पैटर्न पर जोर देते हैं। 'शैक्षिक संकट में बच्चों' के कुछ मामलों में पाया गया कि घरों में साक्षर माता-पिता की अनुपस्थिति ने इन बच्चों की अध्ययन आदतों और होमवर्क उपलब्धियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। यह कहा जा सकता है कि अधिकांश शैक्षिक संकटग्रस्त लड़कियों के माता-पिता अशिक्षित हैं, और अगर वे कुछ स्तर तक साक्षर भी हैं, तो उन्हें लड़कियों को होमवर्क पूरा करने में सहायता करने का समय नहीं मिलता है। परिणामस्वरूप, शैक्षिक संकटग्रस्त लड़कियाँ अपना काम स्वतन्त्र रूप से पूरा नहीं कर पाती हैं और उन्हें घर पर भाई-बहनों या माता-पिता के समर्थन या सहायता की आवश्यकता होती है। भाई-बहनों से सहायता केवल एक मानदंड है क्योंकि अधिकांश लड़कियाँ परिवार में बड़ी होती हैं, और वे अपने माता-पिता के अलावा किसी और से होमवर्क पूरा करने में सहायता नहीं ले सकती हैं। इस प्रकार, अब यह जिम्मेदारी माता-पिता की है कि वे अपनी लड़कियों को उनका होमवर्क पूरा करने में सहायता करें। बड़ी संख्या में 'शैक्षिक संकट में लड़कियों' के माता-पिता अशिक्षित होने के कारण, सहायता बहुत दूर लगती है। हालाँकि, भले ही माता-पिता में से कोई एक साक्षर हो, उनके होमवर्क पूरा करने में दी गई सहायता अपर्याप्त है। ज्यादातर मामलों के इतिहास में, यह पता चला है कि कक्षाओं से चुपचाप बाहर निकलने का मुख्य कारण भाई-बहनों की देखभाल और घरेलू काम-काज और घर पर शैक्षणिक सहायता प्रदान करने के लिए माता-पिता या परिवार के समर्थन की कमी थी। मौजूदा अनुभवजन्य शोध निष्कर्षों से यह भी पता चला है कि बच्चे की शैक्षणिक सफलता में माता-पिता की भागीदारी और समर्थन को अत्यधिक मान्यता प्राप्त है (एएसईआर-प्रथम, 2014; झा और झिंगरन, 2005)। भले ही माता-पिता की भागीदारी और बच्चे के साथ उनका व्यवहार विकासात्मक वर्षों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, फिर भी यह पाया गया कि शैक्षिक संकट वाले बच्चों के अधिकांश चयनित मामलों के अध्ययन में, माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति उदासीन थे। वे निस्सन्देह अपने बच्चों की शिक्षा को महत्व देते थे, लेकिन

उनके शैक्षणिक रिकॉर्ड और उपलब्धियों पर नजर रखने के लिए दौरे के बारे में कम चिन्तित थे।

फील्ड डेटा के विश्लेषण से पता चलता है कि पुनरावर्तकों और खराब प्रदर्शन करने वालों को निम्न आय समूहों और सामाजिक रूप से पिछड़े समूहों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इसके अलावा, 'शैक्षिक संकट वाले बच्चों' की श्रेणी में पुनरावर्तक और निम्न प्रदर्शन करने वाले भी समान सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि प्रदर्शित करते हैं। स्कूल के रिकॉर्ड के अनुसार, गैर-पुनरावर्तक और उच्च उपलब्धि हासिल करने वाले छात्रों के माता-पिता बार-बार स्कूल पालक शिक्षक संघ की बैठकों में आते थे या उनमें शामिल होते थे, न कि पुनरावर्तक और कम मानकों वाले छात्रों की तुलना में। भारतीय सन्दर्भ में हाल ही में बड़े पैमाने पर किए गए अध्ययन ने माता-पिता की पृष्ठभूमि की खराब सामाजिक-आर्थिक स्थिति और बच्चे के स्कूल छोड़ने के व्यवहार (झा और झिंगरन, 2005) के बीच सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। शैक्षिक और कमाई की स्थिति प्राप्त करने में एक बच्चे के माता-पिता की पृष्ठभूमि की सामाजिक आर्थिक स्थिति एक बच्चे की स्कूल से जल्दी वापसी का शक्तिशाली संकेतक हो सकती है जब स्कूल में ही इसके लिए परिस्थितियाँ तैयार होती हैं। कई अध्ययनों से पता चला है कि पारिवारिक पृष्ठभूमि, मुख्य रूप से सामाजिक आर्थिक स्थिति, बच्चों, विशेषकर लड़कियों की पढ़ाई छोड़ने को प्रभावित करती है (झा और झिंगरन, 2005; सिकदर एँड मुखर्जी, 2012)।

एकल माता-पिता वाले परिवार से स्कूल जाने वाली तेरह वर्षीय बच्ची के मामले का इतिहास बताता है कि उसे स्कूल छोड़ने का खतरा है। क्षेत्र अवलोकन की एक घटना में, उसने बताया कि उसकी माँ (जो मर चुकी थी) की अनुपस्थिति में, वह खाना बनाती है और घर के अन्य काम करती है, इसलिए उसे नियमित रूप से स्कूल जाने का समय नहीं मिलता है। स्कूल में उसका शैक्षणिक रिकॉर्ड खराब है, मुख्य रूप से अनियमित है, और उसके परिवार के भावनात्मक और शैक्षणिक समर्थन की कमी के कारण उसे पढ़ाई में अरुचि हो गई है और अन्तत: उसे अगली कक्षा में जाने से पहले जल्द से जल्द स्कूल छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। घरेलू सामाजिक आर्थिक स्थिति सम्भावित रूप से स्कूल की उपलब्धि और स्कूल छोड़ने वाले व्यवहार की भविष्यवाणी करती है (झा और झिंगरन, 2005; सिकंदर और मुखर्जी, 2012)। बच्चों, विशेषकर लड़कियों की खराब आर्थिक घरेलू स्थिति ने स्कूल से बाहर किए जाने की उनकी असुरक्षा के बोझ को दोगुना कर दिया है। भारत के ग्रामीण इलाकों से प्राप्त घटनाओं और टिप्पणियों ने जमीनी हकीकत को उजागर किया है कि कम आय वाले परिवारों का अस्तित्व बच्चों, विशेषकर लड़कियों और महिलाओं के श्रम पर बहुत अधिक निर्भर है। ऐसे सन्दर्भ में तीव्र गरीबी की व्यापकता में, लड़कियों को शिक्षित करना और उन्हें स्कूल भेजना परिवारों के लिए एक व्यवहार्य विकल्प माना जाता है क्योंकि इससे बेहतर रोजगार के अवसरों तक निश्चित पहुँच नहीं मिलेगी। उतना ही, लड़कियों के लिए घरेलू कामों में शामिल होना और पूरे साल सभी प्रकार की शारीरिक श्रम गतिविधियों में परिवार की

सहायता करना अधिक महत्वपूर्ण है। घरेलू काम और पारिवारिक कर्तव्य, जिसमें परिवार के सदस्यों को खाना खिलाना और छोटे भाई-बहनों की देखभाल करना शामिल है, लड़कियों की स्कूल उपलब्धि और स्कूल छोड़ने वाले व्यवहार के प्रबल भविष्यवक्ता हैं (झा और झिंगरन, 2005)। 'शैक्षिक संकट में बच्चों' के कुछ मामलों के जीवन इतिहास के विश्लेषण से एक स्पष्ट तस्वीर सामने आई, जो नियमित रूप से स्कूल नहीं जाते थे और घर के काम करने और घर में भाई-बहनों की देखभाल करने के कारण उनका प्रदर्शन खराब था। घरों के निजी अधिकार क्षेत्र में लैंगिक समाजीकरण लड़कियों और लड़कों के लिए शिक्षा तक पहुँचने और उसे पूरा करने के अवसरों को प्रभावित करता है।

इसके अलावा, श्रम के लिंग आधारित विभाजन से घर के भीतर लिंग आधारित प्रथाएँ मजबूत होती हैं। घरों के भीतर इन लैंगिक प्रथाओं में अक्सर लड़कियों को घरेलू और बच्चों की देखभाल के कर्तव्यों में शामिल किया जाता है, जो उन्हें स्कूल से बाहर ले जाता है (हंट, 2008)। इस प्रकार, घरेलू और घरेलू कर्तव्यों के रूप में बाल श्रम अक्सर स्कूल छोड़ने को प्रभावित करता है। 'शैक्षिक संकट में बच्चों' के चयनित मामले के इतिहास में पाया गया कि ज्यादातर कहानियों में, ग्रेड पुनरावृत्ति उन्हें स्कूल छोड़ने के संकट में धकेलने के सबसे महत्वपूर्ण पूर्ववृत्तों में से एक है। अधिकांश मामलों में उनके स्कूली जीवन में एक या अधिक बार ग्रेड दोहराए गए थे। इसी प्रकार, उनके हालिया स्कूली शिक्षा के अनुभवों से यह भी पता चला कि उनमें से कुछ ने लम्बे समय तक अनुपस्थिति का व्यवहार प्रदर्शित किया था। आखिरकार, दोहराव और ग्रेड डिटेंशन ने मजबूत पूर्ववृत्त के रूप में काम किया, जिससे उनमें पढ़ाई में रुचि की कमी हो गई, जिससे अनुपस्थिति या खराब प्रदर्शन जैसे समस्याग्रस्त व्यवहार बढ़ गए। फिर भी, चयनित मामलों के विश्लेषण में पारिवारिक पृष्ठभूमि और स्कूली शिक्षा के अनुभवों के संयुक्त प्रभाव ने उनके जीवन को संकट में डाल दिया है। हालाँकि इन बच्चों में कुछ समानताएँ हैं, जैसे बहिष्करण के खतरे का सामना करना और दोबारा दोहराए जाना, फिर भी वे अक्सर अनुपस्थित रहते हैं। उनके शिक्षक उन्हें खराब प्रदर्शन करने वाला मानते हैं। इसी तरह, उनके पास कुछ अनूठी विशेषताएँ और अनुभव हैं, जो इंगित करते हैं कि स्कूल छोड़ने को रोकने या स्कूल छोड़ने के शैक्षिक संकट वाले बच्चों से सम्बन्धित मुद्दों के समाधान में मदद करने के लिए कोई भी समान रणनीति काम नहीं करेगी।

समापन टिप्पणी

अध्ययन के महत्वपूर्ण निष्कर्षों से पता चलता है कि भारत के दो राज्यों के ग्रामीण इलाकों के कुछ हिस्सों में प्राथमिक विद्यालयों में अधिकांश महिला छात्रों अधिक असुरक्षित हैं या 'स्कूल छोड़ने का खतरा है'। दिए गए नमूना स्कूलों और अध्ययन क्षेत्र में बड़े पैमाने पर दोहराव की निरन्तरता, लम्बे समय तक अनुपस्थिति और खराब प्रदर्शन निन्दनीय स्तर पर है। इसके अलावा, यह इन दोनों राज्यों में स्कूल की दयनीय स्थिति को भी दर्शाता है। 'शैक्षिक संकट में बच्चों' की स्कूली शिक्षा स्थितियों से निपटने और सम्बोधित करने के लिए, सरकार

ने 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009' को अधिनियमित और कार्यान्वित करके एक समान नीतिगत निर्णय लिया। हालाँकि, वर्तमान अध्ययन के निष्कर्ष अधिनियम के लोकाचार, सिद्धान्तों और कार्यप्रणाली को चुनौती देते हैं। दिए गए क्षेत्रों में चयनित केस अध्ययनों के विश्लेषण से प्राप्त परिणाम, जो एक ही समस्या की बड़ी तस्वीर दर्शाते हैं या उससे सम्बन्धित हैं, सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक प्रतीत होते हैं। केस अध्ययन पढ़ाई छोड़ने की विशेषताओं और समस्याओं की स्पष्ट समझ प्रदान करते हैं, जो सजातीय नहीं हैं लेकिन एक मामले से दूसरे मामले में, एक स्थिति से दूसरी स्थिति में काफी भिन्न होती हैं। हालाँकि इनमें से प्रत्येक बालिका में कुछ समानताएँ हैं, फिर भी उन्हें बहिष्करण के संकट का सामना करना पड़ता है क्योंकि वे दोहराव वाली हैं, अक्सर अनुपस्थित रहती हैं और खराब प्रदर्शन करती हैं। हालाँकि, उनमें कुछ अनूठी विशेषताएँ भी हैं, जो दर्शाती हैं कि चुप्पी पूर्वक बहिष्कार के मुद्दे को सम्बोधित करने के लिए कोई भी समान रणनीति काम नहीं करेगी।

इस प्रकार, भारत में प्रारम्भिक शिक्षा में लड़कियों के बीच चुप्पीपूर्वक बहिष्कार की निरन्तरता का मुकाबला करने के लिए एक अधिक प्रभावी रणनीति विकसित करना और तैयार करना सरकार का सर्वोपरि कार्य होना चाहिए। व्यावहारिक रणनीतिक दृष्टिकोण में प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ाई छोड़ने के संकट से निपटने के लिए नए और अलग-अलग दृष्टिकोणों का उपयोग करने की आवश्यकता शामिल है। इसके अलावा, जैसा कि पहले चर्चा की गई है, समय-समय पर तीन समूहों के सभी नमूना स्कूलों में संकट कारक लगातार उच्च पाए गए हैं। इसलिए, इन इलाकों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थितियों में सुधार करने के लिए सरकार का तत्काल और शीघ्र हस्तक्षेप है ताकि शैक्षिक संकट कारकों की उच्च दर की जाँच की जा सके जो आने वाले दिनों में बड़ी संख्या में बच्चों के बहिष्कार का कारण बन सकते हैं। इसी प्रकार, निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले बच्चों के लिए विशेष प्रावधान की आवश्यकता होनी चाहिए क्योंकि सामाजिक रूप से वंचित और आर्थिक रूप से गरीब समुदायों से 'शैक्षिक संकट में बालिकाएँ' का महत्वपूर्ण अनुपात पाया गया है। हालाँकि विभिन्न प्रोत्साहन योजनाएँ शुरू की गई हैं, ऐसे प्रोत्साहनों के प्रभाव का आकलन करने की आवश्यकता है, और स्कूल छोड़ने के शैक्षिक संकट वाले बच्चों को बनाए रखने के लिए राज्य सरकार द्वारा उचित उपाय किए जाने की आवश्यकता है।

इस अध्ययन के निष्कर्षों के साथ-साथ, पिछले अध्ययनों (एएसईआर, 2014; रेड्डी, 2004) ने भी सिद्ध किया है कि जो बच्चे लम्बे समय तक स्कूल नहीं जाते, वे ग्रेड दोहराते हैं और खराब प्रदर्शन करते हैं। पर्याप्त रूप से संज्ञानात्मक लाभ नहीं मिलेगा और बाहर निकलने का संकट होने की सम्भावना है। इसलिए, व्यक्तिगत स्कूल स्तर पर स्कूल छोड़ने की रोकथाम के लिए छात्रों का व्यवहार लक्ष्य होना चाहिए। इसके अलावा, लड़कियाँ, जो मुख्य रूप से अनियमित, खराब प्रदर्शन करने वाली और बार-बार दोहराने वाली होती हैं, उन्हें कक्षा में शिक्षकों से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, इन बच्चों पर अधिक ध्यान देने के लिए तत्काल परामर्श और त्वरण कार्यक्रम की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

बॉयल, एस., ब्रोक मैस, जे. एंड सिबन्स, एम. (2002). 'रिचिंग द पुअर : द 'कास्ट्स' ऑफ सेंडिंग चिल्ड्रन टू स्कूल', सिन्थेसिस रिपोर्ट. लन्दन : डीएफआईडी.

ब्राउन,आर.सी. (1986). स्टेट रिस्पांसिबिलिटी फॉर एट रिस्क यूथ. मेट्रोपोलिटन एजुकेशन (2) : 5-12.

चनाना, के. (2001). 'हिन्दूइज्म एंड फीमेल सेक्सुएलिटी : सोशल कंट्रोल एंड एजुकेशन ऑफ गर्ल्स इन इंडिया', *सोशियोलॉजिकल बुलेटिन,* 50(1): 37- 63.

दास, पी. (2010). 'प्रोसेस ऑफ गर्ल्स ड्रॉपआउट इन स्कूल एजुकेशन : एनेलिसिस ऑफ सिलेक्टेड केसेस इन इंडिया', इन जेंडरिंग एम्पावरमेंटरू एजुकेशन एंड इक्वलिटी ई-कॉन्फ्रेंस, 12 अप्रैल 14 मई यूनाइटेड नेशंस गर्ल्स एजुकेशन इन इनीशिएटिव : न्यू यॉर्क.

दास, पी. (2011). *पोटेंशियल ड्रॉपआउट इन एलिमेंट्री एजुकेशन,* न्यू दिल्ली : सोनाली पब्लिकेशंस.

दुबे, एल. (2001). *एन्थ्रोपोलॉजिकल एक्सप्लोरेशन इन जेंडर : इंटरसेक्टिंग फील्ड्स,* न्यू दिल्ली : सेज पब्लिकेशन.

डफर्टी, वी. (1989). 'यूथ एट रिस्क : द नीड फॉर इनफॉरमेशन', इन जे.एम. लेकब्रिंक (सम्पा.), *चिल्ड्रन एट रिस्क,* स्प्रिंगफील्ड आईएल : चार्ल्स सी. थॉमस.

फिन, जे.डी. (1989). 'विथड्राइंग फ्रॉम स्कूल', *रिव्यू ऑफ एज्युकेशनल रिसर्च,* 59: 117-142.

गवर्मेन्ट ऑफ इण्डिया (2009). राइट्स ऑफ चिल्ड्रन टू फ्री कम्पल्सरी एजुकेशन एक्ट. 27 अगस्त 2009, द गजेट ऑफ इण्डिया, मिनिस्ट्री ऑफ लॉ एण्ड जस्टिस (लेजिस्लेटिव डिपार्टमेन्ट), न्यू दिल्ली: इण्डिया।

हंट, फ्रान्सीस (2008). 'ड्रॉपिंग आउट ऑफ स्कूल : ए क्रास कन्ट्री रिविव ऑफ लिटरेचर, क्रिएट पाथवेस टू एक्सेस', रिसर्च मोनोग्राफ नम्बर 16, फॉल्मर: क्रीएट, यूके ।

हंटर, एन. एंड मे, जे. (2003). 'पॉवर्टी, सॉक्स एंड स्कूल डिसरप्शन एपिसोड्स अमंग एडोलसेंट्स इन साउथ अफ्रीका, सीएसडीएस वर्किंग पेपर नम्बर 35.

झा, ज्योत्सना एंड झिंगरान, धीर (2005). *एलीमेन्टरी एजुकेशन फॉर द पुअरेस्ट एण्ड अदर डिप्राइव्ड ग्रुप्स : द रिअल चैलेन्ज ऑफ युनिवर्सलाइजेशन,* न्यू दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स.

कार्लेकर, एम. (1988). 'जेंडर एंड एजुकेशन' इन करुणा चनाना (सम्पा.), *सोशलाइजेशन, एजुकेशन एंड वूमेन. एक्सप्लोरेशन इन जेंडर आईडेंटिटी,* न्यू दिल्ली: ओरिएंट लॉंगमैन, पृ. 166-192.

कुमार, के. (2010). 'कल्चर, स्टेट एंड गर्ल्स: एन एजुकेशनल प्रॉस्पेक्टिव', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* अप्रैल 24, वॉल्यूम 45, नम्बर 17.

लेविन, के.एम. (2007). इम्प्रूविंग एक्सेस, इक्विटी एंड ट्रांजेक्शन्स इन एजुकेशन : क्रिएटिंग ए रिसर्च एजेंडा', *क्रिएट पाथवेस टू एक्सेस सीरीज नम्बर 1.* ब्रिटेन: यूनिवर्सिटी ऑफ ससेक्स.

मिनिस्टरी ऑफ एजुकेशन (2020). यूनिफाइड डिस्ट्रिक्ट इंफॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन प्लस 2019-20. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, न्यू दिल्ली.

नम्बिसन, गीता बी. (1995). 'सोशल कॉन्टेक्स्ट ऑफ स्कूलिंग गर्ल चिल्ड्रन इन इंडिया', *प्रोस्पेक्टिव्स इन एजुकेशन,* 11(3-4): 197-209.

प्रथम (2014). *एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट 2013,* मुम्बई: प्रथम रिसोर्स सेन्टर।

रामचन्द्रन, व., जनध्याला, के., एंड सैहजी, ए. (2003). थ्रू द लाइफ साइकल ऑफ चिल्ड्रन: फेक्टर देट फेसिलिटेट/इम्पीड सक्सेसफुल प्राइमरी स्कूल कम्प्लीशन, *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 22 नवम्बर, पृ. 4994-5002.

रामपाल, ए. (2000). 'एजुकेशन फॉर ह्यूमन डेवलपमेंट इन साउथ एशिया', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 35(30): 2523- 2531।

रेड्डी, एस. (2004). *द सोशल कॉन्टेक्ट्स ऑफ एलिमेंट्री एजुकेशन इन रूरल इंडिया,* बैंगलोर: अजीम प्रेमजी फाउंडेशन.

रमबर्गर, आर.डब्लू. (1995). 'ड्रॉपिंग आउट ऑफ मिडिल स्कूल : ए मल्टीलेवल एनेलिसिस ऑफ स्टूडेंट एंड स्कूल्स', *अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च जर्नल,* 32(3): 583-625.

सेनगुप्ता, पी. एंड गुहा, जे. (2002). 'एनरोलमेंट, ड्रॉपआउट एंड ग्रेड कम्प्लीशन ऑफ गर्ल चिल्ड्रन इन वेस्ट बंगाल', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 37(17): 1621-1637.

सिकदर, एस. एंड मुखर्जी, ए. (2012). 'एनरोलमेंट एंड ड्रॉपआउट रेट इन स्कूल एजुकेशन', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 47(1): 27- 31.

वैद, वी. (2004). 'जेंडर्ड इनिक्वेलिटी इन एजुकेशनल ट्रांजिशन', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 34(35): 33927-33938.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 19-26)
UGC-CARE (Group-I)

उदीयमान भारत में असाधारण विधि, अन्यकरण तथा मानवाधिकार को चुनौती : सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

अभिषेक चौधरी*

इस आलेख का मुख्य विषय सुरक्षा राज्य के रूप में भारत के उदय से जुड़ा हुआ है। इस सन्दर्भ में प्रमुख मुद्दा यह है कि भारत में उत्तरोत्तर सरकारें, जाने या अनजाने में, कार्यकारिणी की शक्ति को बढ़ाते रहे हैं और सुरक्षा के नाम पर मानवाधिकारों का ह्रास करते रहे हैं। इस सन्दर्भ में इस आलेख का यह तर्क है कि सुरक्षा राज्य की दिशा में अग्रसर उदीयमान भारत द्वारा कुछ समुदायों का अन्यकरण होता है जो सीधे तौर पर मानवाधिकार को चुनौती देता है और विधि-शासन को दुर्बल करता है। उत्तर-संरचनावादी राजनीतिक सिद्धान्त की सहायता से इस अलेख में यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि एक उदीयमान राष्ट्र अपनी शक्ति को प्रतिबिंबित करने के प्रयासों द्वारा अन्यकरण के माध्यम से मानवधिकार का अधिकाधिक हनन करता है। भारत के असाधारण विधियों और विशेष अधिनियमों के उदाहरण से यह प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

---

*सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
E-mail: abhishek.chy23@gmail.com

अन्यकरण का सिद्धान्त

उत्तर-संरचनावादियों ने आधुनिकता पर आधारित उदार लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली की अलोचना की है। उनके अनुसार आधुनिकता कुछ बातों का साधारणीकरण करती है। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञान के कुछ स्वरूपों को ज्ञान के अन्य स्वरूपों से अधिक अधिमानता प्राप्त होती है। अधिमानता प्राप्त ज्ञान के स्वरूपों की चुनौतीरहित उपस्थिति के कारण एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जहाँ हाशिए पर निर्मित ज्ञान के स्वरूपों को नजरअन्दाज कर दिया जाता है। ज्ञान के अधिमानता प्राप्त स्वरूपों के द्वारा हाशिए पर निर्मित ज्ञान के स्वरूपों पर हावी होने के कारण धीरे धीरे समाज में 'अन्य' की श्रेणी का निर्माण होता है। सत्य की ऐसी शासन-प्रणाली में इन सामाजिक अन्यों का कोई स्थान नहीं रह जाता। अन्यकरण के माध्यम से हाशिए की आवाजों को दबाया जाता है और इस कारण मानवाधिकार का और अधिक हनन होता है। अन्यकरण के सिद्धान्त पर मिशेल फूको और जॉर्जियो अगम्बेन की लेखनी महत्वपूर्ण है।

मिशेल फूको और अन्यकरण का सिद्धान्त फूको (1978) का तर्क है कि जिन अवधारणाओं को हम प्राकृतिक अथवा सामान्य मानते हुए चलते हैं, वास्तव में उनको निष्पक्ष रूप से परिभाषित करना सम्भव नहीं है। इस तर्क के आधार पर यह दावा किया जा सकता है कि न्याय के सम्भाषणों को न्याय की किसी निष्पक्ष अवधारणा पर आधारित नहीं माना जा सकता। न्याय की अवधारणा मात्र उन कथनों के समूह द्वरा परिभाषित रह जाती है जिन कथनों को अन्य कथनों से अधिक अधिमानता प्राप्त होती है। फूको ने यह प्रश्न उठाया कि किस कारण कुछ कथन कुछ विशिष्ट सम्भाषणों के साथ जुड़ जाते हैं। इस प्रश्न का एक उपप्रश्न यह है कि किस कारण कुछ कथनों को पूरी तरह नजरअन्दाज कर दिया जाता है और वे कुछ विशिष्ट सम्भाषणों के साथ जुड़ नहीं पाते। फूको सत्य तथा ज्ञान को शक्ति के फलन के रूप में देखते थे। उनका मानना था कि सत्य शक्ति के बाहर नहीं हो सकता। समाजों के पास सत्य की अपनी व्यवस्था होती है। इस व्यवस्था का निर्माण उन सम्भाषणों को चयनित रूप से बाहर करते हुए होता है जिन सम्भाषणों को स्वीकार्य नहीं माना जाता (फूको 1984 क)।

अस्तित्व में लाए जाने, उन्हें कामय रखने, उनमें बदलाव करने तथा उन्हें विलुप्त करने की इन परिस्थितियों को फूको सम्भाषण के 'निर्माण के नियम' कहते हैं (फूको, 1972; 38)। निर्माण के नियम के लिए तीन बातें आवश्यक हैं - पहला, 'आरम्भिक पृथक्करण का क्षेत्र' जहाँ सम्भाषण अपने लक्ष्य को परिभाषित करता है तथा स्वयं को अन्य सम्भाषणों से पृथक् करता है। दूसरा, 'परिसीमन के प्राधिकार', जिन्हें लक्ष्यों के प्रति सत्य के कथन उवाचने का प्राधिकार दिया जाता है और जो विधिसम्मत रूप से इसका निष्पादन करते हैं। तीसरा, 'विनिर्देशन की प्रणाली', जिसके आधार पर सम्भाषण के अनेक भागों को बाँटा जाता है, उन पर विवाद होता है, उन्हें जोड़ा जाता है, पुन: संयोजित किया जाता है, तथा वर्गीकृत किया जाता है (फूको, 1972; 41-42)।

बायोपावर अथवा जैवशक्ति के उद्भव की पृष्ठभूमि से साथ फूको (1978) युद्ध तथा समाज के बीच के सम्बन्ध की विवेचना करते हैं। जैवशक्ति जीवन पर नियन्त्रण बनाने की प्रक्रिया से जुड़ी अवधारणा है। इस जैवशक्ति के कारण समाजों के बीच युद्ध की समस्या अधिक गहन हुई है और इसका प्रसार बढ़ा है (फूको 1978)। जो शासन-व्यवस्था हिंसा करती है अथवा नरसंहारी प्रवृत्ति की हो जाती है, वह आवश्यक रूप से ऐसी जैवशक्ति के उद्भव के परिणामस्वरूप ऐसा करती है (फूको 1978)। साथ ही फूको आधुनिकता के विरोधाभास की बात करते हैं। वे इस हिंसक प्रवृत्ति को आधुनिकता से साथ जोड़ते हैं। फूको का मानना है कि युद्ध के बर्बर स्वरूपों की ओर आधुनिक समाजों की प्रवृत्ति शक्ति में एक बदलाव के कारण हो रही है (फूको, 1984ख)। यह बदलाव पारम्परिक शक्ति के बजाय जीवन पर नियन्त्रण करने वाली जैवशक्ति के कारण हुई है (फूको 1978)। पारम्परिक दृष्टिकोण से युद्ध को सम्प्रभु शक्तियों में मध्य विवादों के समाधान के साधन के रूप में देखा जाता रहा था और शक्ति के स्थान पर स्पष्टता थी। इसके विपरीत, जैवराजनीतिक अथवा बायोपॉलिटिकल सन्दर्भ में शक्ति का प्रयोग 'आबादी के जीवन के स्तर पर' किया जाता है (डिल्लन, 2008; रीड, 2008)।

शक्ति के प्रयोग में हुए इस बदलाव के माध्यम से यह स्पष्ट है कि आबादी के कुछ चुनिन्दा समूहों के प्रति शक्ति के प्रयोग में अधिकाधिक निर्ममता तथा बर्बरता दृष्ट रहेगी। अतः, इस सन्दर्भ में शक्ति, ज्ञान और जैवशक्ति के मध्य सम्बन्ध को समझना आवश्यक है। अन्यकरण की नीति हाशिए पर निर्मित ज्ञान के विरुद्ध रूढ़ीवादी ज्ञान को अधिमानता प्रदान करती है। जैवशक्ति का प्रयोग तथा जैवराजनीतिक सन्दर्भ में कुछ सामाजिक समुदायों के प्रति असाधारण विधि का उपयोग इस राजनीतिक पहेली पर उत्तर-संरचनावादी प्रकाश डालते हुए सत्ता के अदृश्य पहलुओं को उजागर करती है।

जॉर्जियो अगम्बेन और अन्यकरण का सिद्धान्त

राजनीति, जीवन तथा सम्प्रभु शक्ति के मध्य सम्बन्ध के माध्यम से अगम्बेन (1998) 'बेयर लाईफ' अथवा अनावृत जीव का विचार प्रस्तुत करते हैं। इस विचार का मुख्य बिन्दु यह है कि सम्प्रभु शक्ति जीवों के कुछ स्वरूपों का चुनिन्दा अपवर्जन करता है। यह अपवर्जन इस बात पर आधारित है कि जीवों के कुछ स्वरूप जीने के लायक नहीं होते। ऐसे चुनिन्दा अपवर्जन के कारण वे जीव स्वरूप अनावृत जीव बन जाते हैं (अगम्बेन, 1998)। इस अनावृत जीव द्वारा राजनीतिक तथा वैधानिक संस्थानों में सहभागिता पर रोक रहता है। इसके अतिरिक्त अगम्बेन 'समावेशी अपवर्जन' का विचार प्रस्तुत करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अपवर्जन के कारण ही जैविक जीवन राजनीतिक जीवन का हिस्सा बन जाता है। जैविक तथा राजनीतिक जीवन के मध्य अविभेद के इसी क्षेत्र में सम्प्रभु शक्ति अनावृत जीव को उत्पन्न करने में सक्षम होता है (अगम्बेन, 1998; 7)। अगम्बेन के दृष्टिकोण में आधुनिक जीवन जैवराजनीति की ओर प्रवृत्त रहता है तथा व्यक्ति को अनावृत जीव बना देता है (अगम्बेन,

1998)। मानव पूरी तरह नियम और कानून के अधीन हो जाता है और उनका अपवर्जन होता है (अगम्बेन, 1998)।

अगम्बेन के अनुसार अपवाद की स्थिति लोकतन्त्रों में अन्तर्निहित है (अगम्बेन, 1998)। जब विधायिका मुद्दों से दूर हटते हुए कार्यपालिका को अधिक मौके देती है, अपवाद की स्थिति बढ़ने लगती है। इसका कारण यह है कि सम्प्रभु की शक्ति निर्णयन पर आधारित होती है और सम्प्रभु के पास अपवाद पर निर्णय लेने का अन्तिम अधिकार होता है। सम्प्रभु यह निर्णय ले सकता है कि किस समय विधि-शासन को स्थगित करते हुए अपवाद की स्थिति की घोषणा की जाए (अगम्बेन, 1998; हेगर्टी, 2010)। इस अपवाद में 'असीमित प्राधिकार' रहता है और पूरे मौजूदा व्यवस्था को स्थगित करने की सम्भावना भी रहती है। (जबरी 2007; वॉगन-विलियम्स 2009)। इस प्रकार के अपवाद में व्यक्ति को एक अनावृत जीव बना दिया जाता है और यह निर्णय भी कर लिया जाता है कि किसे जीवन का अधिकार मिले और किसे नहीं। इस प्रकार का अन्यकरण ही मौजूदा आधुनिक लोकतन्त्रों में सुरक्षा व्यवस्था का पर्याय बन गया है। राजनीति की यह जैवराजनीतिक प्रकृति अन्यकरण की प्रक्रिया के द्वारा निरन्तर चलती रहती है।

अन्यकरण तथा सुरक्षा राज्य का उदय

सुरक्षा राज्य का निर्माण सामाजिक नीतियों के अपराधीकरण से जुड़ा हुआ माना जा सकता है। व्यक्तियों को 'प्रबल अपराधी' का नाम देते हुए राज्य की कार्यकारिणी अधिक शक्तिशाली बन जाती है (हॉल्सवर्थ तथा ली 2011)। सामाजिक नीतियों के अपराधीकरण राज्य के स्तर पर किया जाता है। जहाँ पहले कानून व्यवस्था का कार्य सुधारवादी होता था, वह अब अधिकाधिक दंडात्मक होने लगा है। भूमंडलीकरण के सन्दर्भ में सामाजिक नीतियों का अपराधिकरण दो स्तर पर होता है। पहले स्तर पर, विकसित उदारवादी राज्य एक कल्याणकारी राज्य से सुरक्षा राज्य की ओर बढ़ता है। दूसरे स्तर पर, उदारवादी वैश्विक व्यवस्था के दबावों के कारण अन्य राज्य इस प्रवृत्ति की नकल करते हैं। हालांकि अन्य राज्यों के पास विकसित राज्यों जितने संसाधन नहीं होते, इसके बावजूद वे उन राज्यों की नीतियों का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। इस कारण हम एक ऐसे विश्व के समक्ष हैं जहाँ हर राज्य अपने कल्याणकारी दायित्व को दरकिनार करते हुए कार्यकारिणी के सशक्तीकरण में जुटा हुआ है।

सुरक्षा राज्य की ओर मौजूदा राज्यों की होड़ अतिरिक्त आबादी अथवा अधिशेष जनसंख्या के प्रबन्धन से भी जुड़ा हुआ है। उदार लोकतान्त्रिक वैश्विक व्यवस्था के सन्दर्भ में वे सभी अतिरिक्त आबादी का हिस्सा हैं जो उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था का हिस्सा नहीं हैं। भारत के सन्दर्भ में किसान, आदिवासी इत्यादि सरलता से इस श्रेणी में आते हैं। जन कल्याण के बदले अतिरिक्त आबादी का प्रबन्धन राज्यों का प्रमुख उद्देश्य बन जाता है। इसका कारण यह है कि उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के तथाकथित लाभ को जन कल्याण और न्याय इत्यादि के

मुद्दों की तुलना में बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। राज्य इस अतिरिक्त आबादी का प्रबन्धन दो तरह से कर सकते हैं। पहला, उन्हें पूँजीवादी व्यवस्था में समाहित करते हुए। दूसरा, उन्हें बहिष्कृत करते हुए। इस प्रकार अन्यकरण और अतिरिक्त आबादी का प्रबन्धन अन्योन्याश्रित मुद्दे बन जाते हैं। जो जनता हाशिए पर है और अपने अधिकारों के लिए निरन्तर आवाज उठा रहे हैं, उनको देश हित और व्यवस्था हित के नाम पर या तो नजरअन्दाज किया जाता है या फिर हाशिए के परे ढकेल दिया जाता है।

आदर्श स्थिति में न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका को अपना अधिकार-क्षेत्र प्राप्त रहता है तथा वे एक दूसरे पर नियन्त्रण और सन्तुलन बनाए रखने का कार्य करते हैं। किन्तु अतिरिक्त आबादी के प्रबन्धन के नाम पर कार्यपालिका को अधिकाधिक शक्ति मिल जाती है जिसके बाद यह आदर्श सन्तुलन कोई मायने नहीं रखता। कार्यपालिका की यह बढ़ती शक्ति जनता की लोकतान्त्रिक महत्वाकांक्षाओं के विरुद्ध खड़ी हो जाती है। कार्यपालिका और राज्य के बीच की यह अभिन्नता निश्चित रूप से सुरक्षा को ही अधिमानता देती है। न्याय तथा अधिकार की तुलना में सुरक्षा का मुद्दा सदैव अधिक महत्वपूर्ण बना रहा है। सुरक्षा के नाम पर मावाधिकारों का हनन सामान्यीकरण की स्थिति प्राप्त कर लेती है और 'अपवाद की स्थायी स्थिति' का निर्माण हो जाता है।

आम तौर पर अपवाद की स्थिति का तात्पर्य यह होना चाहिए कि एक असाधारण स्थिति मौजूद है जिसका शीघ्र समाधान होना आवश्यक है। कोई भी अधिनियम जब 'असाधारण' स्थिति की बात करते हुए लाया जाता है, तब यह माना जाता है कि मुद्दों के समाधान के उपरान्त स्थिति सामान्य हो जाएगी और अपवाद की स्थिति नहीं रहेगी। तथापि, सुरक्षा राज्य का उद्भव अपवाद की एक स्थायी स्थिति का निर्माण कर देती है जहाँ असाधारण का सामान्यीकरण हो जाता है। न्यायपालिका और विधायिका को रौंदते हुए एक सशक्त कार्यपालिका सतत भय की एक ऐसी स्थायी स्थिति उत्पन्न करती है जहाँ राज्य की पहचान उसके दंडात्मक कार्यकारिणी के अंग से ही परिभाषित होने लगती है। समस्या और अधिक बढ़ जाती है जब अपवाद की स्थिति एक नवीन सामान्य स्थिति बन जाती है और कार्यपालिका का अधिकार क्षेत्र अन्तहीन हो जाता है। इस प्रवृत्ति का साक्ष्य विश्व भर में सेना और पुलिस के पक्ष में कार्यान्वित किए जा रहे विशेष संरक्षण अधिनियमों की एक श्रृंखला में स्पष्ट दिखता है। भारत का गैर कानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) संशोधन अधिनियम और सुरक्षा बल (विशेष शक्तियाँ) अधिनियम हो, अमेरिका का पेट्रियट एक्ट हो, अथवा ब्रिटेन का इंवेस्टीगेटरी पावर्स एक्ट : मानवाधिकार को दरकिनार करते हुए सुरक्षा मुहैया कराना, इन विधियों और अधिनियमों का मुख्य लक्ष्य प्रतीत होता है।

एक सन्तुलित राज्य प्रणाली को दुर्बल करते हुए कार्यपालिका को अधिकाधिक सशक्त बनाने की प्रवृत्ति में सुरक्षा की एक विकृत परिकल्पना अन्तर्निहित है। सुरक्षा की यह परिकल्पना राज्य द्वारा अपने नागरिकों को आन्तरिक तथा बाह्य असुरक्षा से संरक्षित और सुरक्षित रखने के उद्देश्य से कार्यपालिका की शक्ति में बढ़ोतरी को जायज ठहराती है। इस

दिशा में, एक ओर अराजक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का हवाला देते हुए बाह्य खतरों से संरक्षण के नाम पर बजट का भारी अंश एक सशक्त और आधुनिकीकृत सेना के लिए आवंटित किया जाता है। दूसरी ओर आन्तरिक अशान्ति के प्रबन्धन के नाम पर बढ़ती निगरानी और चौकसी के माध्यम से विमति को रोकने और सम्भावित विमति के मामलों पर लगाम लगाने का प्रयत्न किया जाता है (हॉल्सवर्थ तथा ली, 2011; यंग, 2003)।

सुरक्षा राज्य का अस्तित्व सुरक्षा खतरों की उपस्थिति पर निर्भर है। यदि वृहत् सुरक्षा खतरे उपस्थित नहीं रहेंगे तो सुरक्षा राज्य की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। यह राज्य के अस्तित्व के लिए एक खतरा होगा। अतः, एक सशक्त कार्यकारिणी को उचित ठहराने के लिए असुरक्षा की मृगतृष्णा को बनाए रखना राज्य के हित में रहता है। विशेष रूप से भारत के सन्दर्भ में, निरन्तर बाह्य एवं आन्तरिक असुरक्षा की बात उत्तरोत्तर सत्ताधारियों द्वारा की जाती है और जनसंचार के माध्यम से इस भय को जारी रखा जाता है। समाचार चैनलों की मानें तो 'अर्बन नक्सल' और तथाकथित टुकड़े-टुकड़े गैंग प्रतिदिन देश को तोड़ने में लगे हुए हैं और पाकिस्तान केवल भारत पर हमले की तैयारी करने में ही व्यस्त है। आन्तरिक और बाह्य असुरक्षा की इस अर्धकल्पित वास्तविकता को सत्य का जामा पहनाते हुए कार्यकारिणी की सशक्तता को जायज ठहराया जाना एक आम बात हो चली है।

आन्तरिक सुरक्षा के सन्दर्भ में, विमति को न केवल खतरनाक माना जाता है बल्कि इसे अकृतज्ञ होने की निशानी के रूप में भी देखा जाता है। इस विचित्र तर्क का आधार यह है कि जो राज्य हमें सुरक्षा प्रदान करता है, उसके प्रति विमति की भावना रखने वाले अपने अधन्यवादी तथा अकृतज्ञ स्वरूप का प्रदर्शन करते हैं (यंग, 2003)। यह इस कारण खतरनाक है कि यह राज्य की स्थिरता और कथित एकता को चुनौती देता है (यंग, 2003)। जब अतिरिक्त आबादी के प्रबन्धन की बात आती है, विमति की आवाजों को एक प्रमुख चुनौती के रूप में देखा जाता है। इन आवाजों को राज्य द्वारा निर्धारित सर्वहितों के विरुद्ध मानते हुए इस प्रकार देखा जाता है मानो यह आन्तरिक सुरक्षा का सबसे बड़ा मुद्दा हो।

भारत के सन्दर्भ में अन्यकरण की राजनीति

जब भारत जैसा धर्मनिरपेक्ष देश पश्चिम द्वारा अपनाए गए न्याय की प्रणाली को अन्यकरण पर आधारित कर लागू करता है, समस्याएँ और बढ़ जाती हैं। यू.ए.पी.ए. तथा अन्य निष्ठुर कानूनों के तहत भारत सरकार ने एहतियातन माओवादी नेताओं तथा मुसलमान युवाओं को गिरफ्तार किया है (चक्रबर्ती 2012)। ऐसे अधिनियम लोकतन्त्र के आदर्शों के विपरीत प्रतीत होते हैं जहाँ सभी को विधि के समक्ष समानता का आश्वासन मिला हुआ है। समुदाय विशेष को लक्षित करते हुए सुरक्षा की नीतियाँ वास्तव में असुरक्षा के प्रसार का साधन बन चुके हैं। सिमी (स्टुडेंट इस्लामिक मूवमेंट ऑफ इंडिया) के साथ जुड़े होने की आशंका के आधार पर 17 मुसलमान युवकों को कर्नाटक पुलिस ने 2008 में गिरफ्तार किया था। सात साल बाद 2015 में साक्ष्यों की कमी के आधार पर इन युवाओं को रिहाई मिली (पी.

टी.आई. 2015)। समलेटी ब्लास्ट मामले में जेल की सजा काट रहे 6 लोगों को 23 साल के बाद निर्दोष पाए जाते हुए रिहाई मिली। 1998 से जेल में बन्द ये 6 लोग जब बाहर आए, उनकी दुनिया पूरी तरह से बदल चुकी थी।

भारत ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की नीति अपनाई है। इस प्रावधान के अन्तर्गत जनता को मतदान का अधिकार प्राप्त है तथा वे अपने प्रतिनिधि का चुनाव कर सकते हैं। समस्या तब होती है जब बारम्बार सुरक्षा के मुद्दों को सामाजिक क्षेत्र में जोड़ दिया जाता है। गैरकानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) संशोधन अधिनियम जैसे निष्ठुर कानून तथा सुरक्षा बल (विशेष शक्तियाँ) अधिनियम जैसे विशेष अधिनियम भारत के सन्दर्भ में ऐसे जुड़ाव का उदाहरण हैं। कार्यकारिणी की बढ़ती शक्ति इस बात के संकेत हैं कि भारत एक सुरक्षा राज्य बनने की दिशा में अग्रसर है। गैर कानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) संशोधन अधिनियम जैसे निष्ठुर कानून तथा सुरक्षा बल (विशेष शक्तियाँ) अधिनियम इस बात को दर्शाते हैं कि भारत संवाद के माध्यम से विमति तथा असन्तोष का सामना करने में असफल रहा है। अलगाववाद तथा आतंकवाद के विरुद्ध प्रभावी कानून व्यवस्था के नाम पर राज्य द्वारा निर्दोष नागरिकों पर अत्याचार आज की राजनिति में एक आम बात हो गई है (सेन, 2013)। सेना द्वारा भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में मौलिक मानवाधिकारों के हनन की खबरें आम बात हो गई हैं।

आफ्स्पा के कुछ प्रावधान अत्यन्त विवादास्पद हैं। आफ्स्पा के खंड 4 में प्राधिकृत अफसर के पास चेतावनी देने के बाद किसी पर भी व्यक्ति पर गोली चलाने की अनुमति दी गई है। वारंट के बिना गिरफ्तारी का प्रावधान, वारंट के बिना तलाशी लेने का प्रावधान इत्यादि इन अफसरों को विधि-शासन की सामान्य प्रक्रिया से प्रतिरक्षित कर देते हैं। इस प्रकार के अधिनियमों और विधियों में प्रमुख समस्या यह है कि इनके तहत आम जनता पर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का दबाव आ जाता है। जब न्याय की सामान्य प्रक्रिया के विरुद्ध सुरक्षा के नाम पर 'विशेष' विधि के तहत किसी को अभियुक्त बनाया जाता है, उसके मौलिक मानवाधिकार भी स्थगित हो जाते हैं।

निष्कर्ष

समुदाय विशेष का अन्यकरण तथा सुरक्षा के नाम पर असाधारण विधियों को अधिमानता देने की प्रवृत्ति आधुनिक लोकतन्त्र की एक निशानी बन गई है। उत्तर-संरचनावादी विचारकों द्वारा दिए गए अन्यकरण के सिद्धान्त को जब हम भारत जैसे उदीयमान देश पर लागू करते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि वैश्विक पटल पर अपनी विशिष्टता को दृष्ट करने के लिए भारत जाने अनजाने एक सुरक्षा राज्य बनता जा रहा है। पश्चिमी राज्यों का इतिहास देखें तो इस बात में आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि सत्ताधारियों के लिए समरूप और समजातीय आबादी होना लाभप्रद रहा है। जब भिन्नताएँ न्यूनतम रहेंगी, तब सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक नीतियों को अधिक प्रभावी रूप से लागू किया जा सकेगा। ऐसे में व्यवस्थित राजनीति को अधिक अधिमानता देते हुए न्याय के मुद्दों को हाशिए पर ले जाने की

प्रवृत्ति जाहिर है। अपने अस्तित्व को सुरक्षा से जोड़ कर देखते हुए मौजूदा उदीयमान भारत द्वारा असाधारण विधि तथा अन्यकरण की राजनीति का प्रयोग मानवाधिकार के लिए एक बड़ी चुनौती है।

सन्दर्भ

अगम्बेन, जॉर्जियो (1998) *होमो सेकर : सॉवरेन पावर एंड बेयर लाइफ* (अनुवादक : डी. हेल्लर रोअजेन), स्टैनफर्ड, कैलिफोर्निया : स्टैनफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

चक्रबर्ती, राखी (2012), 'सीपीएम डिमांड्स रिलीफ फॉर फ्रेम्ड मुस्लिम यूथ', *द टाइम्स ऑफ इंडिया,* 18 नवम्बर. http://timesofindia.indiatimes.com/india/CPM-demands-relief-for-framed-Muslim-youth/articleshow/17261722.cms

डिल्लन, एम. (2008), 'सिक्यूरिटी, रेस एंड वॉर', एम. डिल्लन तथा ए.डब्लू. नील (सं.), *फूको ऑन पॉलिटिक्स, सिक्यूरिटी एंड वॉर,* लन्दन : पैलग्रेव मैकमिलन।

फूको, मिशेल (1972), *द आर्केलॉजी ऑफ नॉलेज,* लन्दन : टैविस्टॉक पब्लिकेशन्स।

फूको, मिशेल (1978), *द हिस्ट्री ऑफ सेक्सुएलिटी, वॉल्यूम 1 : एन इन्ट्रोडक्शन* (अनुवादक : आर. हर्ले), न्यूयॉर्क : पैन्थियन बुक्स।

फूको, मिशेल (1984क), 'ट्रुथ एंड पावर', पी. रैबिनाओ (सं.), *द फूको रीडर,* न्यूयॉर्क : पैन्थियन बुक्स।

फूको, मिशेल (1984ख), 'व्हाट इज एनलाइटेनमेन्ट', पी. रैबिनाओ (सं.), *द फूको रीडर,* न्यूयॉर्क: पैन्थियन बुक्स में।

हेगर्टी, पी. (2010), 'जॉर्जियो अगम्बेन (1942-)', जे. साइमन्स (सं.), *फ्रॉम अगम्बेन टु जिजेक : कंटेम्पोररी क्रिटिकल थेयरिस्ट्स,* एडिनबरा : एडिनबरा यूनिवर्सिटी प्रेस।

हॉल्सवर्थ, साइमन तथा जॉन ली (2011), 'रीकंस्ट्रक्टिंग द लेवायथन : इमर्जिंग कॉन्टूर्स ऑफ द सिक्यूरिटी स्टेट', *थेयरेटिकल क्रिमिनोलॉजी,* 15(2) : 141-157.

जबरी, वी. (2007), *वॉर एंड द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ ग्लोबल पॉलिटिक्स,* न्यूयॉर्क : पैलग्रेव मैकमिलन।

पी.टी.आई. (2015), 'सेवेन इयर्स लेटर, 17 'सिमी मेन' एक्विटेड', *द इंडियन एक्सप्रेस,* 1 मई.

रीड, जे. (2008), 'लाइफ स्ट्रगल्स : वॉर, डिसीप्लीन एंड बायोपॉलिटिक्स इन द थॉट ऑफ मिशेल फूको', एम. डिल्लन तथा ए.डब्लू. नील (सं.), *फूको ऑन पॉलिटिक्स, सिक्यूरिटी एंड वार,* लन्दन : पैलग्रेव मैकमिलन।

सेन, मंजुला (2013), 'राइट टु रेप?', *द टेलिग्राफ,* 19 जून. http://www.telegraphindia.com/1130619/jsp/opinion/story_17023481.jsp

वॉगन-विलियम्स, एन. (2009), जॉर्जियो अगम्बेन, जे. एडकिन्स तथा एन. वॉगन-विलियम्स (सं.), *क्रिटिकल थेयरिस्ट्स एंड इंटरनैशनल रिलेशन्स* (पृष्ठ 19-30), लन्दन तथा न्यूयॉर्क : रॉलेज।

यंग, आइरिस मैरियन (2003), 'द लॉजिक ऑफ मैस्कुलिनिस्ट प्रोटेक्शन : रिफ्लेक्शन्स ऑन द करेन्ट सिक्यूरिटी स्टेट', *साइन्स,* 29(1) : 1-25.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 27-44)
UGC-CARE (Group-I)

आशा एवं निराशा के मध्य गाँधी एवं उनके विचार

निशान्त यादव*

सुधीर चन्द्र अपनी किताब 'गाँधी : एक असम्भव सम्भावना' में लिखते हैं कि हम हर साल दो बार गाँधी को रस्मन याद कर बाकी वक्त उन्हें भुलाए रखने के ऐसे आदी हो गये हैं कि उनके साथ हमारा विच्छेद कितना गहरा और पुराना है, इसकी सुध तक हमें नहीं है। एक छोटी-सी पर बड़े मार्के की बात हम भूल ही रहे हैं कि पूरे बत्तीस साल तक गाँधी अंग्रेजी राज के खिलाफ लड़ते रहे, पर अपने ही आजाद देश में वह केवल साढ़े पाँच महिने यानी की 169 दिन ही जिन्दा रह पाए। सुधीर चन्द्र की इन्हीं निराशाओं के बीच वर्ष 2019 को भारत सरकार ने गाँधी के 150वें जन्मोत्सव वर्ष के तौर पर मनाया जिसमें सम्पूर्ण भारत के राष्ट्रीय संस्थानों में गाँधी के नाम पर साल भर सेमिनार और संगोष्ठियाँ आयोजित की गयीं। वर्ष 2022 में हम अपनी आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे थे और गाँधी के 150वें जन्मोत्सव वर्ष की तरह आजादी के अमृत महोत्सव का भी सालाना जलसा बेहद उल्लास के साथ मनाया जा रहा था। आजादी के इस जलसे में भी सम्पूर्ण भारत के राष्ट्रीय संस्थानों में आजादी और इसे दिलाने वाले स्मृति पटल पर अंकित/विस्मृत स्वतन्त्रता सेनानियों के नाम पर साल भर सेमिनार और संगोष्ठियाँ आयोजित की जा रही थीं। लेकिन इसी बीच हमें यह भी याद करना है कि वर्ष 2023 में ही गाँधी की हत्या के भी 75 वर्ष पूर्ण हो गए। गाँधी के 150वें जन्मोत्सव, आजादी के

*राजनीति विज्ञान, इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (उ.प्र.)
E-mail: nishantyadav.du@gmail.com

आशा एवं निराशा के मध्य गाँधी एवं उनके विचार

अमृत महोत्सव और गाँधी हत्या के 75वें वर्ष में प्रवेश करने के दरमियान हम गाँधी को किस तरह याद रख पा रहे हैं, यह सवाल उठना लाजमी है। प्रस्तुत आलेख इन तीनों समारोहों/दिवसों के मध्य गाँधी के भारतीय राजनीति एवं भारतीय मन मस्तिष्क में उपस्थिति को देखने का प्रयास करता है। लेख यह भी जाँचने का प्रयास करता है कि क्या वर्तमान समय में गाँधी और उनके विचार अप्रासंगिक हो चुके हैं? यदि हाँ, तो फिर उन्हें याद रखने की आवश्यकता क्या है? और यदि नहीं तो फिर हम केवल दिवसों तक ही क्यों सिमट कर रह गए हैं?

बीज शब्द - गाँधी, अहिंसा, धर्मनिरपेक्षता, राजनीतिक शुचिता।

मानवता का मर्मी सुजान! आया तू भीति भगाने को,
अपदस्थ देवता को नर में फिर से अभिषिक्त कराने को।
तू चला, लोग कुछ चौंक पड़े, 'तूफान उठाया आँधी है?'
ईसा की बोली रूह, 'अरे! यह तो बेचारा गाँधी है।'
दुनिया ने चाहा प्रश्न करे, क्या कहिये इस दीवाने को?
दो बूँद सुधा लेकर निकला है जग की आग बुझाने को।
पर, तू न रुका; सीधे अपने निर्दिष्ट पन्थ पर जा निकला,
पद-चिह्नों को देखते हुए पीछे-पीछे इतिहास चला।

- रामधारी सिंह 'दिनकर'[1]

शोध प्रविधि

आलेख मुख्यत: ग्रन्थ विश्लेषण पद्धति पर आधारित है। जो मानविकी के क्षेत्र में एक ऐसी शोध पद्धति है जिसमें लोगों के जीवन और जीवन के अनुभवों को समझने और संवाद करने के तरीके के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रन्थों में मौजूद भाषा, प्रतीकों, चित्रों आदि को समझना शामिल है। दृश्य, लिखित या बोले गए सन्देश उन तरीकों का संकेत प्रदान करते हैं जिनके माध्यम से संचार, संवाद को समझा जा सकता है। अक्सर ऐसे सन्देशों को सामाजिक ढाँचे से प्रभावित और समाज के प्रतिबिम्बन के रूप में समझा जाता है। उदाहरण के लिए महात्मा बुद्ध, महात्मा गाँधी, डॉ. अम्बेडकर आदि के सन्देश ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, नैतिक आदि सन्दर्भों को प्रतिबिम्बित करते हैं। जो उन समस्याओं को चुनौती देते हैं जिसके लिए वे मौजूद हैं। इसलिए, इस शोध पद्धति में विश्लेषक को उन व्यापक सामाजिक संरचनाओं को समझना पड़ता है/चाहिए जो विश्लेषण के तहत ग्रन्थ में मौजूद सन्देशों को प्रभावित करती हैं। ग्रन्थ का अर्थ क्या है या विशेष ग्रन्थ सामान्यजन के साथ कैसे जुड़ते हैं जैसे प्रश्नों पर विचार करते समय एक शोधकर्ता एक शाब्दिक विश्लेषण करने का विकल्प चुन सकता है। मिसाल के तौर पर आलेख के शीर्षक को रख सकते हैं। गाँधी विचारों के सफलताओं-असफलताओं के सन्दर्भ में यह आलेख गाँधी को समग्रता में देखने-समझने की कोशिश करता है। इस यकीन के साथ कि यह देखना-समझना दरअसल

अपने आपको और अपने समय को भी देखना-समझना है। गाँधी के मार्फत एक ऐसा देखना-समझना जो शायद हमें और हमारे माध्यम से हमारे समय को थोड़ा बेहतर बना दे। जिस हेतु लेखक को एकदम सकारात्मक ऊर्जा से भरपूर विचारों की आवृति प्रो. गिरीश्वर मिश्र के नवीनतम ग्रन्थ 'मंगल प्रभात की प्रतीक्षा में' से होती है तो वहीं सन्देह, विषादपूर्ण और गाँधी को भूल जाने/भुला देने जैसे विषयक प्रसंगों से भेंट सुधीर चन्द्र के ग्रन्थ 'गाँधी : एक असम्भव सम्भावना' के द्वारा होती है। इन दो साहित्यों के मध्य लेखक गाँधी के स्वरचित ग्रन्थों के अतिरिक्त भीखू पारेख, लूई फिशर, रोमा रोलाँ, एन्थनी जे. परेल, जेम्स डगलस, रामचन्द्र गुहा, नलिनी नटराजन, बलराम नन्दी, मस्तराम कपूर, नन्दकिशोर आचार्य, रामधारी सिंह दिनकर आदि के गाँधी पर लिखे गए ग्रन्थों को विषयगत औचित्य के साथ विश्लेषित करने का प्रयास करता है। लेख के इस विश्लेषण में नई दिल्ली स्थित गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान के वर्ष 2005 की वार्षिक संगोष्ठी में प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल द्वारा 'मजबूती का नाम महात्मा गाँधी' शीर्षक से दिया गया विस्तृत व्याख्यान उत्प्रेरक का कार्य करता है।

रूपरेखा

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस के लिए 'गाँधी : एक परिचय' पुस्तक लिखते समय भीखू पारेख गाँधी महात्मा को कुछ इस तरह व्याख्यायित करते हैं कि, गाँधी का व्यक्तित्व अतिव्यापक है उसकी गहनता को सिर्फ अहिंसा, सत्याग्रह और खादी तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता है। इन सभी का आधार गाँधी के गहन चिन्तन में है। गाँधी के एक जीवनशैली बन जाने तक के सफर की सबसे अहम् बात यह है कि उन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गहरा चिन्तन किया। उपयुक्त लगने वाले विचार को जीवन में उतारा और तभी उसकी सार्थकता पर यकीन किया। जीवन के हर हिस्से में सत्य की तलाश पर जोर देने वाले गाँधी को समग्र तौर पर समझने के लिए यह जरूरी है कि आप सिर्फ उनके राजनीतिक जीवन तक ही खुद को सीमित न रखें, उनके निजी जीवन की कशमकश को भी देखें, धर्म और इंसानी प्रकृति पर उनकी सोच को भी समझें, परम्परा और आधुनिकता के बारे में उनके नजरिए को भी जानें। गाँधी, जीवन और राजनीति का एक अद्‌भुत समावेश हैं। जीवन को दर्शन की तरह देखने का एक नजरिया हैं।

गाँधी के जीवन को और तसल्ली से देखें तो हम पाते हैं कि गाँधी का जीवन दक्षिण अफ्रीका और भारत में अपने देशवासियों के लिए संघर्ष करने में पूरी तरह व्यस्त रहा था। उन्हें अन्य देशों की यात्रा के तमाम प्रस्ताव मिलते थे लेकिन वे सभी प्रस्तावों को ठुकरा दिया करते थे क्योंकि वे यह महसूस करते थे कि जब तक अपने ही देश में वे अपनी प्रणाली की कुशलता सिद्ध नहीं कर देते, तब तक संसार के लिए उसकी सिफारिश करना बेमानी होगा। गाँधी की इस सादगीपूर्ण सहजता को उद्‌घाटित करते हुए पॉल एफ पावर 1961 में प्रकाशित अपनी किताब 'गाँधी ऑन वर्ल्ड अफेयर्स' में इस बात का जिक्र करते हैं कि जब 1934 में क्रिश्चियन सेंचुरी ने शान्ति के लिए नोबल पुरस्कार के लिए उनका नाम प्रस्तावित किया, तो

गाँधी की टिप्पणी बड़ी विशिष्ट थी कि "क्या आप ऐसे किसी स्वप्नदृष्टा को जानते हैं, जिसने संयोगवश मिली सहायताओं से ध्यान आकर्षित किया हो।" और इस तरह उन्होंने अपने शान्ति के प्रयासों को नोबल पुरस्कार से अलग कर लिया।

रूपरेखा और निष्कर्ष को छोड़ दें तो यह आलेख चार उप-शीर्षकों में विभक्त है। पहले भाग की शुरूआत 'गाँधी की निराशा' से होती है जिसके तहत यह देखने का प्रयास किया गया है कि स्वाधीनता संग्राम के अन्तिम दिनों और स्वतन्त्रता की पहली किरणों के दरमियान गाँधी क्यों हम भारतीयों से निराश होने लगे थे? उन्हें ऐसा क्यों महसूस होने लगा कि अपने राजनीतिक शिष्यों, राजनेताओं और अन्य भारतवासियों को समझाने-बुझाने की उनकी शक्ति क्षीण हो चुकी है और इस लिहाज से भारत में या यूँ कहें कि जीने के लिए अब उनके पास कुछ शेष नहीं रह गया है। दूसरा भाग 'गाँधी : राजनीतिक शुचिता की खोई हुई बहस' के अन्तर्गत उन तथ्यों को विश्लेषित करता है जिसने गाँधी को तो प्रसिद्धि दिलाई लेकिन गाँधी के बाद अब न तो उनके साधक और न ही अन्य विद्वत्जन उन प्रयोगों और उपायों को अपनाना चाहते हैं जिसके माध्यम से गाँधी ने न केवल भारत वरन् सम्पूर्ण विश्व को राजनीतिक और सामाजिक जीवन को जीने की एक नवीन और समावेशी कला दी। तीसरा भाग जो 'गाँधी विचारों के प्रति निराशा' उप-शीर्षक से है, के तहत स्वाधीनता से लेकर वर्तमान भारतीय समाज और राजनीति में गाँधी विचारों को धरातल पर लाने में राजनेताओं, नीति नियन्ताओं और आम जनमानस जो कठिनाइयाँ महसूस करता है या यूँ कहें कि स्वयं के भीतर राजनीतिक एवं नैतिक इच्छाशक्ति की जो कमी पाता है और जिसे गाँधी की असम्भव सम्भावना के नाम पर थोप देता है, को व्याख्यायित करने की कोशिश करता है। चौथे और अन्तिम भाग 'गाँधी विचारों के प्रति आशा' के तहत भारत समेत विश्व के जो कुछ नामचीन युगदृष्टा पुरुष हैं जो आज भी गाँधी को समतामूलक मानवीय समाज के निर्माण और उसके भीतर सहचर्यपूर्ण जीवन हेतु दिशा और दशा दिखाने वाले आदिपुरुष के रूप में देखते हैं, उनकी गाँधी के प्रति आशा भरी निगाह को उल्लिखित किया गया है। अन्त निष्कर्ष से होता है जिसमें समकालीन मानवीय समाज की समस्या और उसके निदान के रूप में गाँधी विचारों की प्रासंगिकता का तथ्यपूर्ण विश्लेषण किया गया है।

गाँधी की निराशा

पहले भाग की शुरूआत सुधीर चन्द्र की किताब 'गाँधी एक असम्भव सम्भावना' से होती है। जिसमें चन्द्र लिखते हैं कि सांसारिक जीवन में 125 बरस तक बसन्त देखने की इच्छा रखने वाले गाँधी अपने जीवन के आखिरी दिनों में मौत की कामना करने लगे थे। उनकी यह कामना इतनी जल्दी पूर्ण हुई कि वह आजाद हिन्दुस्तान में एक भी बसन्त न देख सके। आजाद हिन्दुस्तान में अपने पहले और आखिरी जन्मदिवस 2 अक्टूबर 1947 की शाम को प्रार्थना सभा में बोलते हुए उन्होंने कहा कि "मेरे लिए तो आज मातम मनाने का दिन है। मैं आज तक जिन्दा पड़ा हूँ। इस पर मुझको खुद आश्चर्य होता है, शर्म लगती है, मैं वही शख्स

हूँ कि जिसकी जुबान से एक चीज निकलती थी कि ऐसा करो तो करोड़ों उसको मानते थे। पर आज तो मेरी कोई सुनता ही नहीं है। मैं कहूँ कि तुम ऐसा करो, 'नहीं, ऐसा नहीं करेंगे' ऐसा कहते हैं। ऐसी हालत में हिन्दुस्तान में मेरे लिए जगह कहाँ है और मैं उसमें जिन्दा रहकर क्या करूँगा? आज मेरे से 125 वर्ष की बात छूट गई है। 100 वर्ष की भी छूट गई है और 90 वर्ष की भी। आज मैं 79 वर्ष में तो पहुँच जाता हूँ, लेकिन वह भी मुझको चुभता है" (सुधीर चन्द्र : 2019)।

अब यहाँ सवाल उठता है कि क्या हुआ कि गाँधी दिन-रात ऊपर उठा लिए जाने की प्रार्थना करने लगे? कौन-सी बेचारगी ने उन्हें घेर लिया? क्यों 32 साल के अपने किए-धरे सार्वजनिक क्रियाकलापों पर उन्हें पानी फिरता नजर आने लगा? विश्व के विभिन्न देशों से बुलावा पाने वाले गाँधी क्यों निपट अकेले पड़ गए? उत्तर की तलाश करें तो बलराम नन्दा अपनी किताब 'गाँधी और उनके आलोचक' की भूमिका में ही यह बताते हैं कि "ऐसा नहीं है कि इससे पूर्व में गाँधी का जीवन कभी भी शुद्ध विजय यात्रा का रहा हो जिस वजह से वो 125 साल जीने की चाह रख रहे थे। दक्षिण अफ्रीका के नेटाल में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध नस्ल विरोधी राजनीति में कूदने के दिन से लेकर 55 साल अपनी हत्या के दिन तक वे हमेशा किसी न किसी तूफान के केन्द्र में रहे। दक्षिण अफ्रीका में यूरोपीय प्रेस उनकी निन्दा करता रहा और औपनिवेशिक सरकार उन्हें जेल में डालती रही। 1897 में डरबन की सड़कों पर गोरों की एक भीड़ ने उन्हें पीट-पीटकर लगभग मार ही डाला था" (नन्दा : 2000)।

नन्दा के साथ ही सुधीर चन्द्र और जेम्स डगलस भी अपने हालिया प्रकाशित ग्रन्थों में बताते हैं कि सुदूर दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के बाद गाँधी भारत में भी निरन्तर अंग्रेज अधिकारियों की शंकाओं और नफरतों के पात्र बने रहे। नन्दा इस तथ्य को दर्शाते हैं कि गाँधी के भारत आगमन से पूर्व ही गाँधी के खिलाफ नफरतों का सिलसिला उनके अपने ही देश में शुरू हो चुका था। जिसकी बानगी के तौर पर 1903 में ही वायसराय लॉर्ड विलिंगटन ने लिखा था, "जरूरत इसकी है कि मिस्टर गाँधी को बराबर वैसा देखा जाए जैसे वे हैं, न कि जैसा वे होने का दिखावा करते हैं।" गाँधी के खिलाफ अंग्रेजी नफरतों का यह सिलसिला निरन्तर चलता या यूँ कहें की बढ़ता ही रहा। मिसाल के तौर पर सन् 1948 में लॉर्ड वेवेल ने अपने रोजनामचे में लिखा था कि "गाँधी बहुत ही चालाक, अक्खड़, दो मुँहे और मकसद को समर्पित राजनीतिज्ञ हैं।" इस लिहाज से हम देखें तो भारत के अंग्रेज हुक्मरान उन्हें ब्रिटिशराज का घोर दुश्मन समझते थे और गाँधी के प्रति नफरती सिलसिले में वे उनके कहे हर शब्द को शब्दजाल और उनके हर कर्म को एक छलावा समझते थे।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य इस तथ्य पर गौर करने के लिए विवश करता है कि भारत में गाँधी का सामना सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्य के संरक्षकों से ही नहीं था। सुधीर चन्द्र, बलराम नन्दा और नन्दकिशोर आचार्य तीनों विद्वान अपने ग्रन्थों में स्वीकार करते हैं कि अपने देश ही नहीं बल्कि अपनी पार्टी में भी गाँधी के दुश्मनों की कमी नहीं थी। रूढ़िवादी हिन्दुओं के लिए तो वे निन्दा के पात्र थे ही जो उनकी जातिगत अलगाव और छुआछूत की निन्दा से और धर्मनिरपेक्ष

राजनीति की पैरवी से कुपित थे। अपनी हरिजन-यात्रा के दौरान पूना में 1934 में वे बम के एक हमले में बाल-बाल बचे। चौदह साल बाद वे पूना के ही एक ब्राह्मण की गोली के शिकार हुए जो उन्हें हिन्दू धर्म का द्रोही समझता था। अजीब बात यह है कि बरसों तक गाँधी को पाकिस्तान के तरफदार 'इस्लाम का दुश्मन नम्बर एक' करार देते रहे। कांग्रेस पार्टी के भीतर भी गाँधी को लगातार असन्तोष का सामना करना पड़ा। कांग्रेस के पुराने नेतृत्व ने 1919 में उनकी निन्दा की। 1920 और 1930 के दशकों में कांग्रेस के गरमपन्थी युवक जैसे जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस और जय प्रकाश नारायण उनके अंकुश पर कुलबुला रहे थे। वे महात्मा के धैर्यपूर्ण और शान्तिपूर्ण तौर-तरीकों पर उबल रहे थे। हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टों ने उन्हें करिश्माई मगर चालाक नेता कहा जो जानता था कि जनता को उभारा कैसे जाए मगर जान-बूझकर उसकी क्रान्तिकारी ऊर्जा को बाँधे रहता है या दूसरी दिशाओं में मोड़ देता था ताकि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों और भारतीय पूंजीपतियों के हितों पर आँच न आए।

सत्य और अहिंसा के पुजारी गाँधी ने ताउम्र अपनी इन आलोचनाओं का अति धैर्य के साथ सामना किया। आलोचनाओं का सामना करने के क्रम में गाँधी कबीरदास की पंक्ति "निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय। बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।" से प्रभावित दिखते हैं। क्योंकि वह अपने आलोचकों से कभी सम्बन्ध विच्छेद नहीं करते हैं बल्कि अपने साप्ताहिक पत्रों और अपने इन आलोचकों और अन्य परिचितों के नाम अनगिनत पत्रों के द्वारा उन्होंने उन सबसे निरन्तर संवाद बनाए रखा। गाँधी का यहाँ मानना था कि जब भी मेरा कोई सुझाव आपके दिलो-दिमाग को प्रभावित न करे तो हमेशा मेरा विरोध कीजिए। उस विरोध के कारण आपके प्रति मेरा प्रेम कुछ कम न होगा। गाँधी ने अपने आलोचकों को विरोध व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया ताकि वे उन्हें कायल कर सकें या दूसरी सूरत में खुद अपना रवैया बदल सकें। निन्दा, आलोचना, तिरस्कार, अपमान की उपर्युक्त दशाओं के बावजूद गाँधी ने सतत जीवन की चाह बनाए रखी उन्होंने इन विपरीत परिस्थितियों में भी कभी मरने की इच्छा नहीं प्रगट की बल्कि सतत निर्विकार भाव से जीवन जीते गए। लेकिन कैबिनेट मिशन प्रस्ताव के बाद जैसे ही मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच हिन्दुस्तान के बँटवारे की नींव पड़नी शुरू हुई और इस नींव को मजबूत करने के लिए नेताओं ने जब साम्प्रदायिक दंगों का सहारा लेना शुरू किया तभी से गाँधी असहाय से होने लगे।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान अहिंसा का परित्याग करके हिंसा में बढ़ती आसक्ति, देश का धर्म के नाम पर विभाजन और उसके फलस्वरूप फूट पड़ी अमानवीय साम्प्रदायिक हिंसा, स्वतन्त्रत भारत में सत्ता पूरी तरह से भारतीय हाथ में आयी भी नहीं कि उसके दुरुपयोग का प्रारम्भ। मिसाल के तौर पर बंगाल में 1937 में प्रान्तीय स्वायत्तता के बाद कृषक प्रजा पार्टी और मुस्लिम लीग के नेतृत्व में नव निर्वाचित स्थानीय यानी देशज सरकार के रहते 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' के दौरान हुई साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने में दिखाई गई अति ढिलाई को देख सकते हैं। हिन्द स्वराज में समतामूलक राज्य के लिए सुझाए गए विकल्पों को नकार कर उसी असमानता को जन्म देने वाली आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के अनुसार राज्य संचालन

का निर्णय लेना जिस प्रणाली को गाँधी ने शैतानी सभ्यता घोषित कर मानव के लिए आत्मघाती बताया था, यह दर्शाता है कि गाँधी अब भारतीय राजनीति में त्याज्य हो चुके थे।

गाँधी : राजनीतिक शुचिता की खोई हुई बहस

इस भाग की शुरूआत अरविन्द मोहन की किताब '150 बा-बापू' से करते हैं जिसमें लेखक लिखते हैं कि जब कथन तथ्यों पर भारी पड़ने लगता है जिस वजह से सत्य को हम जानबूझकर अपनी नजरों से ओझल कर देते हैं तब गाँधी को याद करना और समीचीन हो जाता है। मसलन आज जब गोरक्षा को समाज सुधार का पैमाना बना दिया गया है, तब गाँधी हमारे सामने गोसेवा का प्रतिबिम्ब बनकर उभरते हैं। जब एक बछड़ा असह्य पीड़ा में था, तब उसको जहर का इंजेक्शन देकर मृत्यु की गोद में सुलाने का फैसला गाँधी ही कर सकते थे। अखलाख की हत्या और मॉब लिंचिंग के आज इस जमाने में अगर गाँधी जीवित होते तो उनके इस कृत्य के लिए उनके साथ कैसा व्यवहार होता यह विचारणीय प्रश्न हो सकता है? अभी तक के विमर्श के आधार पर सत्ता का त्याग जैसे विषय गाँधी और गाँधीवादी लोकाचार के साथ अच्छी तरह से फिट बैठता है। लेकिन महात्मा ने न केवल कांग्रेस से इस्तीफा देकर प्रत्यक्ष राजनीति या राजनीतिक प्रक्रिया में अपनी सहभागिता को पूरी तरफ से समाप्त कर दिया था बल्कि वह सत्ता का त्याग से कहीं अधिक त्यागी पुरुष थे जिन्होंने अपने औपचारिक कपड़े त्यागे, यहाँ तक कि सुसंगति और अधिकार भी आसानी से छोड़ दिए। वह बदलाव, सार्वजनिक माफी, बहस हारने और हार को स्वीकार करने के लिए जाने जाते थे, संक्षेप में गाँधी 'समझ में नहीं आने की अपनी क्षमता पर भी खुश रहते हैं'। जे. डेनियल एलम सुझाव देते हैं कि ये नुकसान, विफलताएँ, विसंगतियाँ और माफी गाँधीवादी उपनिवेशवाद विरोध को समझने के लिए एकमात्र प्रवेश द्वार हैं जो अनिवार्य रूप से सत्ता विरोधी थे।

गाँधी वर्तमान के सीने पर खड़े अतीत का वह लौह स्तम्भ हैं जिस पर खड़े होकर हम अपना भविष्य निहार सकते हैं। जब हम यह मानकर चलते हैं कि सत्ता ही समाज, राष्ट्र और सभ्यता को बचाने का एकमात्र विकल्प है तब इस विकल्प की गलतफहमी को गाँधी तोड़ते हैं। सन्तत्व के पहलुओं से अलग गाँधी का एक पहलू नितान्त राजनीतिज्ञ का है। गाँधी जब गुलाम हिन्दुस्तान का प्रतिनिधि बनकर ब्रिटिश साम्राज्य के सम्राट् से मिलते हैं तब वह शाही प्रोटोकाल का उल्लंघन करते हुए अपनी चिर-परिचित वेश-भूषा अर्थात् घुटने भर धोती में ही उनसे मिलने पहुँचते हैं और सम्राट् के पूछने पर कि ऐसे कपड़े में क्यों आए हैं, तो गाँधी निडर होकर कहते हैं कि मेरे हिस्से का भी तो कपड़ा सम्राट् ने ही पहन रखा है। गाँधी यहाँ केवल निडरता का परिचय और औपनिवेशिक शासन पर तंज नहीं कसते बल्कि वह हिन्दुस्तान में राजे-रजवाड़ों की विलासिता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाते हैं और आम आदमी के हितों का हामी बनने के लिए प्रेरित करते हैं। गाँधी हिन्दू-मुसलमान के बीच मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और राजनीतिक विभेद को पाटने में अपनी जिन्दगी लगा देते हैं और उसकी कीमत के रूप में उनका 78 साल का बूढ़ा सीना प्रार्थना के लिए जाते समय तीन गोलियाँ झेलता है।

30 जनवरी शाम की वह घटना इस देश को युगों-युगों के लिए प्रायश्चित्त की आग में जलने को छोड़ देती है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि अहिंसा की प्रतिमूर्ति गाँधी प्रायश्चित्त में बहुधा विश्वास रखते थे लेकिन उनका प्रायश्चित्त क्षमायाचनाओं से पूर्ण होने वाला प्रायश्चित्त होता था। मिसाल के तौर पर देखें तो एलम अपनी किताब में 1939 में गाँधी द्वारा माँगी गई तीन क्षमा याचनाओं पर फिर से विचार करते हैं, क्योंकि ये स्वयं सत्याग्रह की विफलता के लिए स्वीकार किए गए थे; सत्याग्रही के एक ऐसे सत्य से ग्रस्त होने की सम्भावना जो गलत हो सकती है। एलम गाँधी की बहसों में उग्र समतावाद की राजनीति को देखते हैं, जो इस तरह के बयानों में समाप्त होती है - "मुझे मूर्ख के रूप में छोड़ दो" या "मुझे इस बहस को खोने की अनुमति दें" या "मुझे गलत होने की अनुमति दें"। ये कथन अनिवार्य रूप से दोहरे त्याग की प्रक्रिया का संकेत देते हैं क्योंकि इन क्षणों में गाँधी न केवल अपने सत्य या विश्वास को बल्कि स्वयं को भी त्याग देते हैं। गाँधी त्याग करने की अपनी क्षमता का त्याग करते हैं, और इसलिए दूसरों को उनके लिए ऐसा करने के लिए कहते हैं। इस प्रक्रिया में गाँधी और दूसरा दोनों त्यागी हो जाते हैं। यह अधीनता नहीं समर्पण है क्योंकि यह दो समान त्यागी पैदा करता है (एलम : 2021)।

जन्म नियन्त्रण पर अमेरिकी प्रजनन अधिकार कार्यकर्ता मार्गरेट सेंगर के साथ गाँधी की बहस गाँधी की मौन मुस्कान पर समाप्त हुई। वह एक अनुभवी या प्राधिकारी के रूप में देखे जाने से अधिक अनुभवहीन होने के इच्छुक हैं क्योंकि इसके लिए विशेषज्ञता या अधिकार बाहर/ऊपर से इकट्ठा किया जाता है। इसके बजाय गाँधी यह दावा करते हैं कि उन्होंने अपनी 'परिष्कृत बहनों' के साथ मिलकर इसकी समझ हासिल कर ली है। लेकिन जब गाँधी वह मौन मुस्कान देते हैं तो वह प्रतिक्रिया देने की अपनी क्षमता को छोड़ देते हैं, और ऐसा करके, माँग करते हैं कि सेंगर उन्हें छोड़ दें। यहाँ उल्लेखनीय है कि हेमन्त कुकरेती अपनी किताब 'गाँधी-दर्शन आलोचनात्मक अध्ययन' में लिखते हैं कि गाँधी स्त्री की भूमिका केवल घर-परिवार तक सीमित नहीं मानते थे। आश्चर्य की बात है कि उन्होंने स्त्रियों की भूमिका समाज और देश के सन्दर्भ में ही नहीं; वैश्विक मोर्चे पर उस समय पहचान ली थी जब भारतीय राजनीति का ठीक से जन्म भी नहीं हुआ था (एलम : 2021)।

एलम की व्याख्या में हिन्द स्वराज की भूमिका उलट जाती है : गाँधी, जिन्हें आम तौर पर सम्पादक के रूप में देखा जाता है, इस पुस्तक के पाठक बन जाते हैं। एलम के लिए, पाठक अपनी सारी उलझन के साथ गाँधी की तरह लगता है। वास्तव में, एलम हिन्द स्वराज को सत्ता छोड़ने के इर्द-गिर्द केन्द्रित उपनिवेशवाद विरोधी सौन्दर्य प्रथाओं के एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि राजनीति की काजल वाली कोठरी में अगर गाँधी का श्वेत वस्त्र बिल्कुल बेदाग रहा तो इसके पीछे गाँधी की सामाजिक क्रान्ति और निजी जिन्दगी की शुचिता ने अहम् भूमिका निभाई। इस सिलसिले में अरविन्द मोहन लिखते हैं कि गाँधी से बड़ा हिन्दू इस ब्रह्मांड में कौन हुआ होगा? लेकिन हिन्दू धर्म की कुरीतियों के खिलाफ, जात-पात, छुआछूत के खिलाफ उन्होंने आवाज उठाई तो बनारस के पंडों ने उनकी

तस्वीर में आग लगाई, देवघर में काला झंडा दिखाया। पुणे में बम फेंका, कराची में कुल्हाड़ी से वार किया। गाँधी इस देश में ब्राह्मणवाद के विरुद्ध सबसे बड़े हस्ताक्षर थे। ऐसे ही उन लोगों ने गाँधी की हत्या नहीं कर दी थी, जो ब्राह्मणवाद के पोषक थे और आड़ हिन्दुत्व की लेते थे।

गाँधी के प्रति दुराग्रह की यह स्थिति तब है जब सत्य का आग्रह गाँधी के सम्पूर्ण चिन्तन और कर्म की केन्द्रीय विषयवस्तु है और यह सत्य कोई जटिल दार्शनिक अवधारणा नहीं है। क्योंकि गाँधी शास्त्रीय दार्शनिक पद्धतियों की अधिक चिन्ता नहीं करते थे। बल्कि वह एक सीधी-सादी व्यावहारिक बात है। जब गाँधी 'ईश्वर सत्य है' की बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' कहते हैं तब भी वह किसी दार्शनिक बहस में उलझने की बजाय एक आध्यात्मिक ईश्वरानुभूति के व्यावहारिक रूप पर ही, उसके कर्म पक्ष पर जोर देना चाहते हैं क्योंकि उनके लिए कर्म या व्यवहार ही चिन्तन और अनुभूति का उत्स भी है और कसौटी या परख भी। इसी कारण जब महात्मा गाँधी अपने जीवन को 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' कहते हैं, तब वह प्रकारान्तर से ईश्वर-प्राप्ति के लिए उनकी अनवरत साधना हो जाती है। दार्शनिक जटिलता की बजाय ईश्वरत्व की अवधारणा अर्थात् सत्य की संकल्पना के व्यावहारिक पहलू पर आग्रह की ही वजह से गाँधी कहते हैं कि मेरे लिए ईश्वर सत्य और प्रेम है, ईश्वर नीति और नैतिकता है, ईश्वर निर्भयता है, ईश्वर जीवन और आलोक का स्रोत है, ईश्वर अन्तरात्मा है। और इस ईश्वर को पाने का एक ही उपाय है कि 'उसे उसकी सृष्टि में देखा और उसके साथ एकाकार हुआ जाए '।

सत्य की राह पर चलने वाले अकेले हो जाने को मानो अभिशप्त होते हैं। अकेलेपन से उपजी यह निराशा शायद गाँधी की स्वाभाविक नियति है। यह विडम्बनापूर्ण है कि हिन्दुत्ववादी उनसे इसलिए नाराज थे कि वे दलितों और मुसलमानों की उन्नति और सुरक्षा की बात करते थे। मुसलमानों का एक बड़ा वर्ग उन से नाराज था कि वे पाकिस्तान की अवधारणा के विरोधी थे। और अब दलित उनसे इसलिए नाराज हैं कि उन की राय में वे सवर्णवादी हैं। धर्मनिरपेक्षतावादी नाराज हैं क्योंकि वह धर्म की भाषा में बात करते हैं। धर्मवादी नाराज हैं क्योंकि वह राज्य को धर्मनिरपेक्ष रखना चाहते हैं। दरअसल गाँधी तब भी अकेले थे और आज भी अकेले हैं। ऐसा व्यक्ति सदैव अकेला ही रहेगा जिसे दूसरे केवल अपने लिए इस्तेमाल नहीं कर सकें। वह जिस हद तक हमारे लिए सुविधाजनक हैं, उस हद तक आदरणीय हैं। लेकिन जब उसके विचार या व्यक्तित्व हमारे लिए असुविधाजनक होने लगें तब उसे अकेला छोड़ देने में ही सुरक्षा है। यदि मिटाया न जा सके, अकेला छोड़ देना भी प्रकारान्तर से मिटाना ही है। प्रसाद ने कहीं लिखा भी है कि उपेक्षा घोर शत्रुता है (आचार्य : 2010)।

तीसरे उप-शीर्षक की तरफ बढ़ने से पहले यह बताना आवश्यक है कि गाँधी कितने भी अकेले क्यों न पड़ गए हों, वर्षों/दशकों उनके साथ और उनके नेतृत्व में रहने वाले भी उनकी नीतियों को क्यों न ठुकरा चुके हों - मसलन कांग्रेस के नेता, यथा - नेहरु, पटेल, मौलाना आजाद आदि, परन्तु गाँधी किसी के प्रति कभी कटु नहीं हुए, सब लोगों से पहले जैसे ही मधुर सम्बन्ध बनाए रखे। आज का समाज ऐसे मधुर सम्बन्धों के लिए अभिशप्त हो

गया। सामान्य जन से परे विधायिका में अब सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच सम्बन्ध मधुर तो छोड़िए, संवाद तक का नहीं रहा। वहाँ तो कुर्सीफेंक संवाद होने लगा है। राजनीतिक/चुनावी मंचों पर विपक्षियों की तुलना जानवरों से की जाने लगी है। अब राजनेता एक दूसरे के व्यक्तिगत जीवन पर कीचड़ उछालकर संवाद करते हैं। 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' 'जैसे को तैसा' वाली दशा में गाँधी पुन: स्मरणीय हो जाते हैं और यह याद दिलाते हैं कि यदि व्यक्तिगत जीवन में शुचिता न रही तो सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन में शुचिता की कल्पना करना दिवास्वप्न के समान होगा।

गाँधी विचारों के प्रति निराशा

वागर्थ पत्रिका के एक गाँधी विशेषांक में हिमांशु बाजपेयी बताते हैं कि राजनीतिक सिद्धान्त या सामाजिक समस्याओं के निदान के तौर पर किसी भी आन्दोलन या विचारधारा की सफलता या असफलता सौ फीसदी नहीं होती और इस दृष्टिकोण में गाँधी सम्पूर्ण भारतीय मानस या राजनीतिक व्यवस्था को पूरी तरह से बदलने में कामयाब हो सके, यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन भारतीय मानस और उसमें समाहित राजनेताओं, नीति नियन्ताओं पर उनका प्रभाव बहुत निर्णयात्मक है, यह कहने में गुरेज नहीं हो सकता। गाँधी के बाद के भारत में अहिंसा का प्रकटीकरण विवादों और मतभेदों के निपटारे के लोकतान्त्रिक तौर-तरीकों से समझा जाना चाहिए। तीसरी दुनिया के अन्य देशों में जहाँ लोकतान्त्रिक राजनीतिक संस्कृति की जड़ें बहुत कमजोर हैं, भारत में बहुत गहरी जमी हैं। भारतीय महाद्वीप में ही गौर करें तो भारत को छोड़कर अन्यत्र कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ एकाध बार लोकतान्त्रिक व्यवस्था में फेरबदल न हुआ हो। कहीं सैन्य तख्ता पलट होता है तो कहीं शासक अधिनायक बन जाता है। भारत इन राजनीतिक भूचालों से सदैव सुरक्षित रहा है। गाँधी के बारे में बताते हुए बाजपेयी लिखते हैं कि "रही बात अहिंसा के सिद्धान्त की व्यावहारिकता की तो उसके लिए गाँधी स्वयं बहुत कठोर शर्तें रखते थे। 27 फरवरी 1930 के 'यंग इंडिया' में उनकी शर्तों को देखा जा सकता है, जब वे कहते हैं कि एक सत्याग्रही में क्रोध नहीं होना चाहिए। बल्कि उसमें विरोधी के क्रोध को सहन करने की क्षमता होनी चाहिए। गाँधी इसीलिए सत्याग्रह और दुराग्रह में फर्क करते थे। कोई कह सकता है कि इन अर्थों में अहिंसा के पालन के लिए तो खुद गाँधी की निगरानी का होना जरूरी है" (बाजपेयी : 2019)।

सुधीर चन्द्र गाँधी अध्ययन के एक गम्भीर अध्येता रहे हैं। उन्होंने महात्मा गाँधी के साथ एक नितान्त निजी और तटस्थ रिश्ता कायम कर लिया है। सुधीर गाँधी के नेतृत्व में चले स्वतन्त्रता संग्राम की अहिंसा को 'अवसरवाद की अहिंसा' मानते हैं। जिसके साथ ही वह यह भी लिखते हैं कि वास्तव में गाँधी हिन्द स्वराज के अकेले और आखिरी वारिस थे। 'हिन्द स्वराज' और गाँधी की प्रासंगिकता का कितना भी जयगान हो, उन्हें सच्चे अर्थों में कभी माना ही नहीं गया। न उनके जीते जी, न उनकी हत्या के बाद। सुधीर जोर देकर कहते हैं कि सवाल गाँधी की प्रासंगिकता का नहीं, उनकी 'सम्भवता' का है। सुधीर कहते हैं कि "मैं गाँधी को

एक असम्भव सम्भावना इसीलिए कहता हूँ क्योंकि गाँधी ने एक बार इस सम्भावना को सम्भव बनाकर दिखा दिया। लेकिन क्या हम पुनः इसे फिर से सम्भव बना पाएँगे? या यूँ कहें की क्या हम अपना विनाश रोक पाएँगे? या बस एक 'काश' के साथ याद करते रहेंगे उनका कहा : मैं तो कहते-कहते चला जाऊँगा, लेकिन किसी दिन मैं याद आऊँगा कि एक मिस्कीन आदमी जो कहता था, वही ठीक था" (चन्द्र : 2019)।

गाँधी विचारों के प्रति निराशा को और गहनता से देखें तो हम पाते हैं कि अन्यान्य वजहों से गाँधी के लिए भारतीय समाज में बुत पूजा और अकीदत का तो माहौल पैदा हुआ लेकिन यदि कुछ अपवादों को छोड़ दें तो उनके विचारों और कार्यक्रमों को लेकर उत्साह की जगह उदासीनता के भाव ही अधिक रहे। वर्तमान राजनीतिक सन्दर्भो में गाँधी विचारों की बात करें तो प्रो. लाल बहादुर वर्मा का मानना है कि "गाँधी एक नाकामयाब दूरदर्शी कहे जा सकते हैं, क्योंकि भारतीय समाज ही नहीं गाँधी के अधिकांश अनुयायियों ने भी गाँधी के विचारों को कार्यान्वित करने में विशेष दिलचस्पी नहीं ली। पर गाँधी ने भारत की राजनीति में चमत्कारी ढंग से प्रवेश किया था और वे अपने अफ्रीकी आन्दोलन की प्रतिष्ठा के साथ भारत आए थे। उस समय किसी दूसरे के द्वारा भारतीय राजनीति में गुणात्मक परिवर्तन की गुंजाइश नहीं बन पा रही थी, इन्हीं सबके फलस्वरूप गाँधी स्वीकार हुए। 1942 तक कांग्रेस की राजनीति में वे अनिवार्य बने रहे। उसके बाद वह दरकिनार किए जाते रहे और अन्तिम दिनों में तो वे परित्यक्त हो गए थे" (वर्मा : 2019)।

मशहूर कवि अदम गोंडवी गाँधी के विचारों के नाम पर गाँधीवाद जैसी विचारधारा का ढिंढोरा पीटने एवं उसी से उपजे समाजवाद के नाम पर होने वाली भारतीय राजनीति में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक विषमता को दर्शाते हुए अपनी किताब समय से मुठभेड़ में लिखते हैं -

तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है,
मगर ये आंकड़े झूठे हैं ये दावा किताबी है।
उधर जम्हूरियत का ढोल पीटे जा रहे हैं वो,
इधर परदे के पीछे बर्बरीयत है, नवाबी है।।
लगी है होड़-सी देखो अमीरी औ गरीबी में,
ये गाँधीवाद के ढाँचे की बुनियादी खराबी है।
तुम्हारी मेज चाँदी की तुम्हारे जाम सोने के,
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है।।

गाँधी की इस परम्परा को याद करते हुए गिरीश्वर मिश्र लिखते हैं कि गाँधी के सन्दर्भ में लिखी गई उपर्युक्त बातें आज न केवल भारत के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि दूसरे देशों के लिए भी उपयोगी हैं। परन्तु भारत में यह दुर्भाग्य रहा है कि लोग लगभग सभी महापुरुषों को भगवान बना देते हैं। और भगवान बनने के बाद उस राजनीतिक/सामाजिक चिन्तक के विचार/अवधारणाओं के सम्मुख आने वाली समस्याओं का जिक्र करते हुए मिश्र

उद्धृत करते हैं कि "एक बार कोई महापुरुष भगवान बन गया तो वह अनुकरण के योग्य नहीं रह जाता है। गाँधी को भी ऐसे दुर्भाग्य का शिकार होना पड़ा। लोग उनका आदर-सम्मान शहरों, सड़कों और संस्थानों में उनका पुतला खड़ा करके करते हैं। परन्तु उनके विचारों को अपनाते नहीं हैं। जबकि आवश्यकता उनके विचारों पर अनुकरण करने की है। और जिस दिन भारतीय समाज और नीति-निर्माता उनको अपना लेंगे उसी दिन भारत अपनी तमाम समस्याओं के मुक्ति पथ पर अपने आप अग्रसर हो जाएगा" (मिश्र : 2022)।

रणधीर सिंह अपनी पुस्तक 'आज की भारतीय राजनीति' में बताते हैं कि स्वतन्त्र भारत के नवनिर्वाचित शासकों ने पूरे इस दावे के साथ भारतीय समाज की शोषणपरक वर्ग संरचना में सापेक्ष परिवर्तन के साथ कार्य करना आरम्भ किया कि इससे भारत में आर्थिक विकास की बयार बहेगी। इस संरचना के तहत जिसमें नयी और पुरानी शासन व्यवस्था एक-दूसरे से ठीक-ठाक समन्वय स्थापित करते हैं, से जिस व्यवस्था का निर्माण हुआ वह थी 'भारत विशिष्ट राज्य-समर्थित पूंजीवाद'। इस व्यवस्था में सामाजिक जीवन के हर पहलू - राजनीति, संस्कृति, नैतिकता, हर चीज में और हर जगह पूंजीवाद के चिह्न दिखाई देते हैं। यद्यपि इन मामलों में कहीं-कहीं और कभी-कभार राजनीतिक नेताओं, शासकों या उनके राजनीतिक प्रतिनिधियों की व्यक्तिगत चिन्ताएँ मायने रखती हैं लेकिन बहुत ही मामूली ढंग से। क्रान्तिकारी राजनीति जो समाज के वस्तुनिष्ठ, आर्थिक संरचनात्मक आधार में बदलाव लाती है, की अनुपस्थिति में इस आर्थिक संरचनात्मक आधार का तर्क अर्थव्यवस्था में खुद को व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों, राजनीति, नैतिकता, संस्कृति, विचारधारा आदि में होने वाले तमाम परिवर्तनों को भी निर्णायक ढंग से प्रभावित करता है। ये परिवर्तन अन्यथा चाहे कितने भी महत्वपूर्ण क्यों न हों, फिर भी अनिवार्यत: अधिसंरचनात्मक होते हैं। उदाहरण के लिए - "गाँधी के मन में भारतीयों के लिए प्रेम और चिन्ताओं के बारे में हम सभी जानते हैं। भारत के निर्धन किसान, 'आधे पेट खाकर गुजारा करने वाले धीरे-धीरे निर्जीवता में डूबते जा रहे जनसामान्य', जैसा कि उन्होंने उनके बारे में खुद एक बार कहा था, उनके लिए बहुत मायने रखते हैं। उनका प्रेम (यद्यपि पितृ सुलभ प्रकृति का था और सुमार्ग से लोगों के भटकने के दर से हमेशा भयभीत रहता था) और उनकी चिन्ता गाँधी के सामाजिक दर्शन की शायद सबसे बड़ी खासियत थी। गाँधी चाहते थे कि इस देश की विरासत गरीब किसान को मिले। लेकिन 1947 में गाँधी का गरीब किसान नहीं एक बिड़ला भारत का उत्तराधिकारी बना। साथ ही साम्प्रदायिक दंगे, विभाजन और ऐसी कई अन्य बातें हुईं जो गाँधी नहीं चाहते थे। सबसे अहम् यह तथ्य है कि अन्य सीमाओं के अलावा गाँधी के राजनीतिक सिद्धान्त और आचरण (अहिंसा, न्यासिता, सत्याग्रह आदि) में न तो किसी वास्तविक आर्थिक संरचनात्मक परिवर्तन, न मूलभूत भूमि सुधार के लिए कोई जगह थी" (सिंह : 2010)।

'भारत विशिष्ट राज्य-समर्थित पूंजीवाद' की जगह उपर्युक्त गाँधी विचारों के अपनाए जाने के सन्दर्भ में रणधीर सिंह के अलावा रजनी पाम दत्त और ए.आर. देसाई का भी मानना है

कि यद्यपि विशाल भारतीय गरीब किसान वर्ग के जीवन में सुधार के लिए यह जरूरी है परन्तु यह पूरी तरह से पर्याप्त नहीं है। इन दोनों विद्वानों का मानना है कि गाँधी यहाँ यानी किसानों के मामले में और अन्यत्र भी अपने अधिकांश घोषित उद्देश्यों में असफल रहे। 'राजा और रंक को समान अधिकार' सुनिश्चित करने की चाह में गाँधीवाद ने दरअसल भारतीय ऐतिहासिक प्रक्रिया में बड़े बुर्जुआ वर्ग की सेवा में केवल क्षुद्र बुर्जुआ विचारधारा का ही काम किया। रणधीर सिंह लिखते हैं कि "गाँधी अपनी तमाम कमियों, कमजोरियों और विचित्रताओं के बावजूद सचमुच एक महान शख्सियत थे। यह उनकी महानता थी कि अपने अनुयायियों के अवसरवाद और तुच्छता के विपरीत उन्होंने अन्ततः सामने आने पर अपनी विफलता को माना और स्वीकार किया कि, 'मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि हमारे देश में ये भयानक घटनाएँ कैसे हो रही हैं; हमने क्या गलतियाँ कीं क्योंकि हमने गलतियाँ अवश्य की हैं? अन्यथा ये सभी घटनाएँ कैसे हो सकती हैं? वह आम लोगों के लिए जैसे संघर्ष करते हुए जीवित रहे थे, उसी तरह मरे भी। एक सन्तुष्ट लेकिन निराश मोहमुक्त व्यक्ति के रूप में" (सिंह : 2010)।

इस तरह हम देखें तो भारत में गाँधी विचारों के प्रति सच्चाई तो बहुत निराशाजनक है। बस हम मानने को तैयार नहीं हैं कि हम गाँधी से बहुत दूर होते जा रहे हैं। गाँधी जैसे युगपुरुष की हत्या किसी व्यक्ति की हत्या नहीं होती, और न ही उनका हत्यारा कोई एक व्यक्ति होता है। उनकी हत्या होती है उनके विचारों और आदर्शों के ठुकराये जाने पर। किसी युग-पुरुष का होना उसके पार्थिव अस्तित्व से नहीं होता, उसके विचारों और आदर्शों में लोगों के विश्वास से और उन विचारों और आदर्शों को व्यवहार में उतारे जाने से होता है। नाथूराम को दोषी ठहराते हुए हमने उनकी मृत्यु की इच्छा तो पूरी कर दी। लेकिन यहाँ उल्लेखनीय होगा कि यदि गोडसे की गोलियों से पहले ही अगर गाँधी ऊपर उठा लिए जाने की प्रार्थना करने लगे तो उनका अन्त तो 30 जनवरी से पहले ही हो चुका था। अन्त के उन दिनों में गाँधी बार-बार अपने दुःखों की गाथा कहने लगे थे। वह जानते थे कि उनके दुःख केवल उनके दुःख नहीं हैं, देश के दुःख हैं, मानव मात्र के दुःख हैं। यह बात दीगर है कि देश और दुनिया को नहीं लगा कि गाँधी के दुःख उनके दुःख हैं। यही कारण है कि लोग उन्हें तो भगवान् बना बैठे लेकिन उनके विचारों को न अपना सके।

गाँधी विचारों के प्रति आशा

बलराम नन्दा लिखते हैं कि इतिहास के हर महत्वपूर्ण व्यक्तित्व को फिर वह चाहे क्रामवेल हो या फिर नेपोलियन बोनापर्ट या फिर बिस्मार्क, समय-समय पर सबको मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन का विषय बनना पड़ता है। यह वह खेल है जिसे इतिहासकार और जीवनीकार खेलते हैं और हर पीढ़ी के अभिजात पाठक जिसे देखते हैं। क्रामवेल की आयरिश नीति को या बिस्मार्क की कूटनीति को विकृत करके पेश करने से चारों ओर की दुनिया को कोई क्षति नहीं पहुँचती। लेकिन गाँधी के सन्दर्भ में स्थिति भिन्न है। उनका जीवन, उनके विचार और उनके तरीके एक समसामयिक महत्व रखते हैं और उनकी उपेक्षा हम स्वयं को

संकट में डालकर ही कर सकते हैं। इसलिए अत्यावश्यक है कि बात को साफ समझा जाए, न सिर्फ उस असाधारण व्यक्तित्व की स्मृति के प्रति न्याय करने के लिए बल्कि यह देखने के लिए भी कि वे आज की चारों ओर से घिरी मानवता को कोई अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। गिरिराज किशोर अपनी हालिया प्रकाशित किताब 'गाँधी और समाज' में गाँधी की प्रासंगिकता को व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं कि जब हिंसा, शोषण और प्रभुता के बल पर हिटलर और मुसोलिनी का वर्चस्व दुनिया भर में छाया हुआ था, उस वक्त महात्मा गाँधी मानव सम्बन्धों में भ्रातृत्व की भावना पैदा कर शोषित वर्ग के सबसे बड़े पक्षधर के रूप में खड़े थे। आज भी मानवीय संसार में शोषित वर्ग के समर्थक के रूप में गाँधी से बड़ा कोई दूसरा नाम नहीं है। यहाँ तक कि दुनिया के सबसे शक्तिशाली देश अमेरिकी के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन तक को मजबूती से अपनी बात रखने के लिए गाँधी के नाम का सहारा लेना पड़ता है। लेकिन यह बेहद निराशाजनक परिस्थिति है कि हम भारत में ही उनको खोते जा रहे हैं।

1985 में दिल्ली में सम्पन्न एशियाई नेताओं के सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए विख्यात नोबेल पुरस्कार विजेता प्रोफेसर गुन्नार मिर्डल ने साफ शब्दों में कहा कि "भारत आज सभी विकासशील राष्ट्रों के लिए नमूना बना हुआ है। लेकिन वह अनेकानेक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का अड्डा भी बना हुआ है। इसका मुख्य कारण यही है कि भारत ने गाँधी को भुला दिया है। भारत में आज बड़े पैमाने पर गरीबी, बेकारी, हिंसा, फूट और नैतिक गिरावट है और इसके समाधान की खोज निरन्तर जारी है। संसार आज की इन समस्याओं का समाधान चाहता है। सिकुड़ते हुए संसार का भविष्य माँग करता दिखाई देता है कि 'बहुसंख्यक लोगों का अधिकाधिक वाला' जैसे नारे की माला जपते रहना आज काफी नहीं है। मनुष्य की समझ में आने लगा है कि समाज ऐसा नवगठित होना चाहिए कि 'सबका हर तरह का भला हो' और यही कारण है कि 'सर्वोदय' शब्द सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में नयी विचारधारा का प्रतीक बन गया है।"[2]

शम्भू जोशी और मिथिलेश अपनी किताब 'गाँधी-दृष्टि के विविध आयाम' में बताते हैं कि सत्य और अहिंसा ही महात्मा गाँधी के सम्पूर्ण चिन्तन एवं कर्म का केन्द्रबिन्दु है। 'ईश्वर सत्य है' से 'सत्य ईश्वर है' की उनकी यात्रा दार्शनिक आधार लिए हुए है। लेकिन सत्य की कोई एक निश्चित और एकायामी धारणा स्वीकार नहीं की जा सकती है क्योंकि विभिन्न धर्मों एवं दर्शनों में सत्य को जानने, उसकी प्रक्रिया, अभिव्यक्ति में कई भिन्नताएँ हैं। गाँधी इसी विचार को स्पष्ट करते हुए सत्य के अनन्त रूपों को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि निरपेक्ष सत्य को जानना मनुष्य के वश की बात नहीं है। गाँधी के सत्य-चिन्तन का व्यावहारिक पहलू इसीलिए अहिंसा के रूप में अभिव्यक्त हो पाता है क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि के साथ अहिंसात्मक मनोवृत्ति और आचरण ही हमें उसके साथ अर्थात् ईश्वर के साथ एक करता है। वह स्वयं कहते हैं कि जब आप सत्य को ईश्वर रूप में पाना चाहते हैं तो एकमात्र अनिवार्य साधन प्रेम, अर्थात् अहिंसा है। और क्योंकि मैं मानता हूँ कि साधन और साध्य पर्यायवाची हैं, अत: मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि ईश्वर प्रेम है। गाँधी की ये

दार्शनिक प्रस्थापनाएँ ही उनके सामाजिक चिन्तन का विन्यास करती हैं। सत्य अहिंसा के रूप में अभिव्यंजित होता है, अत: एक आदर्श समाज-व्यवस्था और उसके प्रत्येक व्यक्ति सदस्य के आचरण की कसौटी भी अहिंसा ही हो सकती है, स्थूल और नकारात्मक अर्थों में नहीं बल्कि सूक्ष्म और सकारात्मक अर्थों में।

इसीलिए गाँधी किसी भी प्रकार की पराधीनता को चाहे उसका राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या मनोवैज्ञानिक अर्थ कुछ भी हो अनुचित और अन्यायपूर्ण मानते हैं क्योंकि वह किसी-न-किसी प्रकार की हिंसा पर टिकी होती है और हिंसक मनोवृत्ति को बढ़ावा देती है। किसी भी प्रकार का राजनीतिक दमन, सामाजिक उत्पीड़न और आर्थिक शोषण चाहे वह मनुष्य का हो या प्रकृति का, गाँधी के अनुसार हिंसा के ही विभिन्न रूप हैं और इसीलिए वह उनके खिलाफ सत्याग्रह अर्थात् अहिंसा का आग्रह करते हैं। इसी कारण एक ओर गाँधी केन्द्रीकृत आर्थिक व्यवस्था और आधुनिक प्रौद्योगिकी को हिंसक मानकर त्यागने का आग्रह करते हैं क्योंकि वह अनिवार्यतया मनुष्य और प्रकृति के अन्यायपूर्ण दोहन पर आधारित है तो दूसरी ओर केन्द्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था को भी हिंसक मानते हैं क्योंकि वह अनिवार्यतया नागरिक को राजतन्त्र के सम्मुख असहाय बनाती और उसकी स्वतन्त्रता का दमन करती है (गाँधी : 1965)।

सुधीर चन्द्र इन्हीं आशाओं और निराशाओं के बीच गाँधी और गाँधी के आदर्शों को अपनी नैतिक पूंजी के रूप में देखते हैं। एक ऐसी अनमोल और अनोखी पूंजी जो समस्त विश्व में किसी और के पास नहीं है। हम गाँधी के रहते ही उनको तज बैठे थे। इतना कि अपने आखिरी दिनों में अपार दु:ख से गाँधी कहने लगे थे कि हमारे देश में कुछ ऐसा हो गया है कि नाम लो राम का और काम करो राक्षस का। जैसा नाम आज लिया जा रहा है राम का वैसा तो कभी गाँधी के समय में नहीं लिया गया था और जितना ज्यादा हम नाम ले रहे हैं राम का उसी अनुपात में खरी हो रही है गाँधी की हमारे राक्षसी आचरण की बात। संसार पर छाए संकट जैसे-जैसे गहरा रहे हैं और नये रूप ले रहे हैं - जैसे कि इस समय चल रही वैश्विक महामारी वैसे-वैसे गाँधी की प्रासंगिकता जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों में उजागर हो रही है। किन्तु विडम्बना-त्रासदी यह है कि संसार को गाँधी के जीते जी जितनी उन की जरूरत थी उस से कहीं ज्यादा आज है, लेकिन उन को व्यवहार में लाना आज उस से भी ज्यादा कठिन है जितना उनके जीते जी था। सुधीर चन्द्र का मानना है कि दुनिया भर में जगह-जगह गाँधी की जरूरत इस जमाने के लिए महसूस की जा रही है। जो तबाही, अशान्ति और असुरक्षा चल रही है, आज सारे जगत में, उसमें स्वाभाविक है कि गाँधी की याद आए लोगों को। पर केवल उस याद से, जरूरत के अहसास से नहीं बन जाती गाँधी की जगह। जगह बनेगी गहराई में जाकर सोचने से, सोचने के उस तौर को बदलने से जो सम्भव को, व्यावहारिक को, संकुचित वर्तमान की गिरफ्त से मुक्त कर ही नहीं पाता। ऐसी मजबूत है - रही है - यह गिरफ्त कि आने वाले कल के लिए कुछ बिलकुल नये की कल्पना करना तो दूर, वह उस सम्भावना को भी भुला देती है जो बीते कल तक यथार्थ थी।

निष्कर्ष

ऐसे समय में जब देश भावनाओं के असह्य ज्वार में घिरा है, गाँधी को पढ़ना एक नयी दृष्टि खोलने लायक होगा। गाँधी को सम्पूर्णता में पढ़ना आसान नहीं है क्योंकि दुनिया में नेपोलियन बोनापार्ट के बाद अगर किसी व्यक्तित्व पर सबसे ज्यादा साहित्य लिखा गया है तो वे महात्मा गाँधी हैं। अपने विद्यार्थी जीवन से लेकर आज तक हमने जिस व्यक्तित्व के बारे में सबसे ज्यादा पढ़ा और गुना है वे महात्मा गाँधी ही हैं लेकिन ऐसा लगता है कि उस गाँधी के बारे में हमारी समझ शून्य है। बस गाँधी का व्यक्तित्व ऐसा है कि वो उस शून्य के पीछे खड़े होकर हमारे हौसले को दस गुना कर देते हैं। गाँधी की वैचारिक प्रासंगिकता की बात करें तो जनप्रतिनिधि शासन की वर्तमान भारतीय अवधारणा को देखते हुए वी.के.आर.वी. राव कहते हैं कि यह भारतीय समाज के एक छोटे से वर्ग के हित में एक प्रकार की पूंजीवादी व्यवस्था बन गई। जिसमें देश के बड़े जनमानस के हितों को चन्द लोगों के हितों के सम्मुख न्यौछावर कर दिया जाता है। मिसाल के तौर पर हम भारत में बढ़ती गरीबी और साथ-ही-साथ बढ़ते अरबपतियों की संख्या को देख सकते हैं। एक तरफ जहाँ गौतम अडानी विश्व के तीसरे सबसे अमीर व्यक्ति और मुकेश अम्बानी सातवें अमीर व्यक्तियों की सूची में शामिल होते हैं तो वहीं 2022 के वैश्विक भुखमरी सूचकांक में भी भारत 111वें नम्बर पर स्थान पाता है और पूरे दक्षिण एशिया में अफगनिस्तान जहाँ की कोई सुव्यवस्थित सरकार नहीं है, को छोड़कर सारे देश बेहतर स्थिति में रहते हैं।

बेजहॉट का मानना है कि लोकतन्त्र जहाँ आम लोगों को सत्ता का सबसे बड़ा भ्रम देता है, वहीं यह उन्हें हकीकत में सबसे कम अधिकार प्रदान करता है और यह समाज में सत्तारूढ़ वर्ग के प्रभुत्व को वैध बनाता है। स्वयं 'लोकतान्त्रिक राजनीति' जो कभी 'अविभाजित हिन्दू परिवार' के समान चलाई जाती थी, आर्थिक समस्याओं के उभरते ही धीरे-धीरे राज्य में सत्ता का खेल बन गई। यह इसके लाभभोगियों के बीच पूरी तरह विवेकहीन, अन्तहीन, अन्तर्कलह में तब्दील हो गई, जहाँ वे खुद ही खेल के नियमों का उल्लंघन कर रहे थे। इसलिए यहाँ साध्य-साधन को या यों कहें किसी भी साधन को उचित ठहरा रहा था।[3] रणधीर सिंह लिखते हैं कि फ्रांस की क्रान्ति की एडमंड बर्क की आलोचना के थामस पेन के रूपकात्मक जवाब से उद्धृत करते हुए कहा जा सकता है कि "भारत के राष्ट्रीय विकास के पंख अभी भी एक मरणासन्न पक्षी के ही थे। हमारे राष्ट्र के गरीब और दमित लोग जब नीचे से दुनिया को देखते हैं तो उन्हें यह बहुत अलग ही दिखती है।"

उपर्युक्त दशाओं में गाँधी विचार के अलावा कोई और विकल्प इतना सहज दिखाई नहीं देता है जो भारत में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं का निराकरण प्रस्तुत कर सके। गाँधी एक ऐसी समाज-व्यवस्था की कल्पना करते हैं जिसमें सत्ता के किसी भी रूप का केन्द्रीकरण न हो क्योंकि केन्द्रीकरण अनिवार्यत: हिंसा की मनोवृत्ति को बढ़ाता है। इसीलिए गाँधी की समाज-व्यवस्था की आदर्श इकाई आत्मनिर्भर गाँव है। इसी को राजनीति और अर्थशास्त्र की भाषा में राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण कहा जाता है।

आत्मनिर्भर या स्वावलम्बी गाँव ही एक आत्मनिर्भर और अहिंसक राष्ट्र का आधार हो सकता है क्योंकि हिंसा की जरूरत भी तभी पड़ती है जब किसी अन्य पर अनिवार्यतया आश्रित हों। लेकिन जाहिर है कि एक अहिंसक समाज और आत्मनिर्भर गाँव के लिए हमें अहिंसक आचरण वाले आत्मनिर्भर स्वावलम्बी व्यक्ति की आवश्यकता होगी। यहाँ प्रेमचन्द का यह कथन उल्लेखनीय हो जाता है कि जहाँ एक बार प्रेम ने वास किया हो वहाँ उदासीनता और विराग चाहे पैदा हो जाए हिंसा का भाव पैदा नहीं हो सकता। अन्त में अदम गोंडवी की निम्नलिखित पंक्तियों से ही आलेख को समाप्त करते हैं जब वे तमाम विचार पद्धतियों को समझने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अन्ततः गाँधी के विचार ही भारत को उन्नत राष्ट्र के पथ पर अग्रसर कर सकते हैं और जिसके अपनाने या न अपनाने की जिम्मेदारी वह नयी पीढ़ी पर छोड़ देते हैं -

सौ में सत्तर आदमी फिलहाल जब नाशाद है,
दिल पे रख के हाथ कहिए देश क्या आजाद है।
कोठियों से मुल्क के मेआर को मत आंकिए,
असली हिन्दुस्तान तो फुटपाथ पे आबाद है।।
जिस शहर में मुन्तजिम अन्धे हों जल्वागाह के,
उस शहर में रोशनी की बात बेबुनियाद है।
ये नयी पीढ़ी पे बनी है वहीं जजमेंट दे,
फल्सफा गाँधी का मौजूं है कि नक्सलवाद है।।

टिप्पणियाँ

1. राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' द्वारा चौदह खंडों में विभक्त 'बापू' नामक इस लम्बी कविता की रचना जनवरी 1948 में गाँधी की हत्या से कुछ दिनों पूर्व ही तब की गई थी जब, गाँधी स्वतन्त्र भारत में विभाजन पश्चात् देश के विभिन्न हिस्सों में हो रहे साम्प्रदायिक दंगों से निपटने के लिए देशव्यापी दौरे पर थे और जिसके दरमियान बंगाल के दंगा प्रभावित इलाके नोआखाली में शान्ति और मानव अस्मिता के लिए लोगों से भावनात्मक अपील कर रहे थे।
2. डेटलैफ कोंटोवस्की द्वारा सन् 1984 में 'एन अदर सर्वोदय' नाम से एक किताब लिखी गई जिसमें एस.एन. सुब्बाराव द्वारा आमुख लिखा गया था, उसी आमुख के द्वितीय पृष्ठ से।
3. यह फ्रांस के प्रख्यात लेखक और राजनीतिज्ञ मेलरोक्स के शब्दों में 'राजनीतिज्ञों की निकृष्टतम राजनीति' थी।

सन्दर्भ

आचार्य, नन्द किशोर (2010). *सत्याग्रह की संस्कृति.* बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन

एलाम, जे. डेनियल (2021). *इम्पॉसिबल एंड नेसेसरी : एंटीकॉलोनीअलिस्म, रीडिंग एंड क्रिटिके,* नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान

बाजपेयी, सौरभ (2019). 'गाँधी के सपनों के बिखरने की बात करें', *वागर्थ,* अंक 282

चन्द्र, सुधीर (2019). *गाँधी एक असम्भव सम्भावना.* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन

डगलस, जेम्स डब्ल्यू (2021). *गाँधी और अकथनीय : सत्य के साथ उनका अन्तिम प्रयोग.* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन

फिशर, लुई (2017). *गाँधी की कहानी.* नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

गाँधी, मोहनदास करमचन्द (1965). *हिन्द स्वराज.* हैदराबाद : नवजीवन प्रकाशन

गाँधी, मोहनदास करमचन्द (1967). *सत्य के साथ मेरे प्रयोग.* हैदराबाद : नवजीवन प्रकाशन

कोंटोवस्की, डेटलैफ (1984). *एक और सर्वोदय.* नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय

मिश्र, गिरीश्वर (2022). *मंगल प्रभात की प्रतीक्षा में.* सर्वभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली

नन्दा, बलराम (2000). *गाँधी और उनके आलोचक.* नई दिल्ली : सारांश प्रकाशन

पारेख, भिखू (2019). *गाँधी : एक परिचय.* नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

रोलां, रोमा (2016). *महात्मा गाँधी : जीवन और दर्शन.* नई दिल्ली : लोक भारती

सिंह, रणधीर (2011). *आज की भारतीय राजनीति.* नई दिल्ली : आकार प्रकाशन

वर्मा, लाल बहादुर (2019). 'गाँधी नैतिक राजनीति की वकालत करते थे', *वागर्थ,* अंक 282

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 45-60)
UGC-CARE (Group-I)

शासन से सुशासन तक : सामाजिक दृष्टिकोण से एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

नवीन* एवं राजेन्द्र शर्मा†

शासन एवं समाज एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। समाजशास्त्र में अनेक विद्वानों ने शासन के बारे में अपने विचार प्रकट किये हैं। सुशासन भी इसी दिशा में एक अग्रिम खोज है। सुशासन के अनेक पहलुओं में से सबसे महत्वपूर्ण पहलू ई-शासन है क्योंकि यह सुशासन की अनेक विशेषताओं का समावेश है। भारत में ई-शासन पर वर्ष 1980 के दशक से काफी जोर दिया जा रहा है। समय-समय पर विभिन्न सरकारों ने अनेक योजनाओं को लाकर समाज के विकास में योगदान दिया है। यद्यपि इन कदमों से सुशासन में काफी सुधार हुआ है लेकिन इसके विपरीत सुशासन में अनेक चुनौतियाँ भी हैं। इस शोध पत्र में सुशासन का सामाजिक दृष्टिकोण से एक विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है।

बीज शब्द - शासन, सुशासन, समाज, समाजशास्त्र।

*शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
E-mail: Naveen19992@gmail.com
†विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

राज्य और शासन की समाजशास्त्रीय स्थिति

'गवर्नेंस' शब्द की उत्पत्ति लैटिन और प्राचीन ग्रीक से हुई है और इसका अर्थ नियन्त्रण और मार्गदर्शन है। सार्वजनिक मामलों के सम्बन्ध में राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था को दर्शाने के लिए इसका अर्थ 'सरकार' शब्द के साथ मिला दिया गया है। पश्चिमी राजनीतिक वैज्ञानिकों और अर्थशास्त्रियों ने 1990 के दशक में 'शासन' शब्द को एक नयी पहचान दी। तब से इसका उपयोग सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से किया जाने लगा है। जब 1989 में अफ्रीका में संकट था, तो विश्व बैंक ने उस समय की राजनीतिक स्थिति को सन्दर्भित करने के लिए 'शासन में संकट' शब्द का उपयोग किया था। तब से, राजनीतिक विकास विषय के अध्ययनों में 'शासन' शब्द का उपयोग अधिक व्यापक रूप से किया जाने लगा है। वैश्विक शासन आयोग ने 1995 में 'अवर ग्लोबल नेबरहुड' शीर्षक से प्रकाशित एक शोध में शासन को इस प्रकार परिभाषित किया है (कमिशन आन गलोबल गवर्नेन्स, 1995)।

"शासन उन कई तरीकों का योग है जिनसे व्यक्ति और संस्थान, सार्वजनिक और निजी, अपने सामान्य मामलों का प्रबन्धन करते हैं। यह एक सतत प्रक्रिया है जिसके माध्यम से परस्पर विरोधी या विविध हितों को समायोजित किया जा सकता है और सहयोगात्मक कार्यवाही की जा सकती है। इसमें अनुपालन करवाने के लिए सशक्त औपचारिक संस्थान और व्यवस्थाएँ शामिल हैं, साथ ही अनौपचारिक व्यवस्थाएँ भी शामिल हैं जिन पर लोग और संस्थान या तो सहमत हैं या मानते हैं कि यह उनके हित में है।"

शासन की चार प्रमुख विशेषताएँ हैं -

1. शासन नियमों का समूह या गतिविधि नहीं है, बल्कि एक प्रक्रिया है;
2. शासन की प्रक्रिया नियन्त्रण पर नहीं, बल्कि समन्वय पर आधारित है;
3. इसमें सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्र शामिल हैं;
4. यह कोई औपचारिक संस्था नहीं है, बल्कि सतत परस्पर क्रिया है।

हालाँकि परम्परागत रूप से यह मुद्दा मुख्य रूप से समकालीन राजनीतिक वैज्ञानिकों के क्षेत्र में आता है परन्तु समाजशास्त्रियों और सामाजिक मनोविज्ञानियों ने भी इसके अध्ययन में गहरी रुचि विकसित की है और इस नयी रुचि का मुख्य जोर शासन की प्रक्रिया की समाजशास्त्रीय गतिशीलता की खोज में निहित है। राज्य और शासन के अध्ययन के प्रति समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण में बदलाव आया है। पिछले कुछ दशकों से काफी हद तक समाजशास्त्र और सामाजिक मानवविज्ञान के अनुसन्धान का उद्देश्य काफी बदल रहा है। समाजशास्त्री और सामाजिक मनोविज्ञानी पहले सूक्ष्म रूप से समाज के अध्ययन में लगे हुए थे। लेकिन बीते कुछ वर्षों से उन्होंने स्थानीय प्रक्रिया का अध्ययन करना शुरू कर दिया है। अब अध्ययन 'समुदाय' से 'राज्य' की ओर भी बदलाव हुआ है।

यदि हम समाजशास्त्र को समझने का प्रयास करें तो इसका एक लक्ष्य शासन को समझना है चाहे वह औपचारिक रूप हो या फिर अनौपचारिक रूप।

समाजशास्त्र में मैक्स वेबर का योगदान, समाजशास्त्र के लिए ठोस स्तम्भ है। 'इकोनॉमी एंड सोसाइटी : एन आउटलाइन ऑफ इंटरप्रिटेटिव सोश्योलॉजी' नामक पुस्तक में, वेबर ने समाजशास्त्रीय अन्तर्दृष्टि के साथ कई मुद्दों को रेखांकित किया है। सामाजिक वैज्ञानिकों ने वेबर के इस साहित्य को 'सोश्योलॉजी ऑफ डॉमिनेशन' कहा है। मार्क्स, दुर्खीम और वेबर का समाजशास्त्र का साहित्य, आधुनिक समाज की उपज है। उनके लगभग सभी विषय पूर्व आधुनिक और उत्तर आधुनिक के सामाजिक बदलाव पर केन्द्रित हैं। वेबर के योगदान को देखते हुए उन्हें शासन के समाजशास्त्र के संस्थापक पिता के रूप में समझा जाता है क्योंकि उनका काम तर्कसंगतता, नौकरशाही, आर्थिक कार्यवाही, कानून का समाजशास्त्र, राजनीतिक समुदाय, आधुनिक शासन प्रणाली का विश्लेषण करने के लिए उपर्युक्त हैं। अपने अधिकांश लेखों में, विशेषकर 'इकोनॉमी एंड सोसाइटी' में वेबर ने दिखाया है कि समाज कैसे पारम्परिक से आधुनिक रूप में बदल गया है। वेबर का तर्क है, आधुनिक समाजों में लोग वैज्ञानिक, नौकरशाही, तर्कसंगतता में विश्वास रखते हैं जबकि पारम्परिक समाज जादू और मिथक आदि में विश्वास करता था।

इनसाइक्लोपीडिया ऑन गवर्नेन्स सुझाव देता है कि वेबर का सिद्धान्त आधुनिक शासन को समझने के लिए मार्क्स और दुर्खीम की तुलना में अधिक अवसर प्रदान करता है। लेकिन मार्क्स और दुर्खीम अभी भी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से शासन को समझने के लिए काफी मदद करते हैं। दुर्खीम का नैतिकता का विचार और सामाजिक नियन्त्रण आज भी काफी उपयोगी प्रतीत होता है। इसी प्रकार मार्क्स का वर्ग विभाजन का विश्लेषण, पूंजीवादी समाज और उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण के विचारों का भी, शासन के सन्दर्भ में, विश्लेषण किया जा सकता है। इन महान सामाजिक विचारकों के अलावा रॉबर्ट पुटनेम, पियरे बॉर्डियू, मिशेल फूको, जेम्स सी. स्कॉट, और मार्क ग्रैनोवेटर आदि ने भी समाजशास्त्रीय दृष्टि से शासन को समझने में भी योगदान दिया है।

वेबर द्वारा विकसित प्रमुख विषय - युक्तिकरण, नौकरशाही, वैधता और अधिकार - समकालीन शासन की कई चर्चाओं में मूलभूत अवधारणाएँ बने हुए हैं। वेबर के इन विषयों को आधार मानते हुए अनेक समाजशास्त्रियों ने अपनी रचनाओं में इन्हें आगे बढ़ाया है।

फॉक्स और वार्ड ने समाजशास्त्र के भीतर तीन ऐसे व्यापक दृष्टिकोणों की रूपरेखा तैयार की है जिन्होंने शासन के मुद्दे को सम्बोधित किया है। एक, वे समूह जो अपने हितो से सम्बन्ध रखते हैं, और उसी हिसाब से शासन के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। दूसरे हैं, मूल्य-आधारित दृष्टिकोण, जो मूल्यांकन करते हैं कि शासन व्यवस्थाएँ किस प्रकार संस्थागत मूल्यों और सांस्कृतिक सन्दर्भों को प्रतिबिम्बित करती हैं। यह दृष्टिकोण, राजनीति और राज्य विनियमन के 'वृहत्' स्तर पर ध्यान केन्द्रित करता हैं। तीसरा है, सरकारी दृष्टिकोण जो फूको की शासन की प्रौद्योगिकी की धारणा से प्राप्त है। यह लोगों पर शासन करने की सरकारी रणनीति और शासित आबादी पर शासन के प्रभाव को देखता है। फॉक्स और वार्ड का तर्क है कि समाजशास्त्र हमें विश्लेषण करके यह बताने में मदद कर सकता है कि शासन, सामाजिक

संगठन को आकार देने में, कैसे व्यक्तियों और संस्थानों को प्रभावित करता है (फाक्स, 2008)।

ब्लैटर का तर्क है कि राज्य और समाज के बीच सम्बन्धों के दृष्टिकोण को समझने के लिए, हमें और अधिक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है। ब्लैटर का कहना है - "राज्य अब केवल सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक साधन नहीं है; बल्कि राज्य और समाज परस्पर एक साथ सह-निर्माता के रूप में काम करते हैं समाज को आत्म-आश्वासन और पहचान देने के लिए, स्व-नियामक क्षमताएँ जुटाने और सामाजिक एकीकरण की गारंटी देने के लिए" (ब्लैटर, 2012)।

समकालीन विशेषज्ञों द्वारा यह महसूस किया गया है कि शासन सरकार से भिन्न है क्योंकि शासन में गैर-सरकारी संगठन भी सम्मिलित होते है। समुदाय, नागरिक समाज, बाजार सभी शासन तन्त्र के भाग हैं। समाजशास्त्र हमें समाज के इस ढाँचे को समझने में सुविधा प्रदान करता है और हमें विभिन्न दृष्टिकोण प्रदान करता है। इसलिए अब समाजशास्त्र में कई उप-विषयों का विकास हुआ है। कुछ सालों तक शासन सम्बन्धी व्यवस्थाएँ लोक प्रशासन, लोक प्रबन्धन के क्षेत्र के तहत राजनीतिक वैज्ञानिकों द्वारा पढ़ी जाती थीं। धीरे-धीरे विभिन्न कारकों ने समाजशास्त्रियों को इसके लिए बाध्य किया कि वे समाज के सम्बन्ध में शासन के मुद्दे का विश्लेषण करें, लेकिन इसे अभी तक समाजशास्त्र के पूर्णत: विकसित उप-विषय जैसे धर्म का समाजशास्त्र, राजनीतिक समाजशास्त्र, आर्थिक समाजशास्त्र इत्यादि की तरह स्थापित नहीं किया जा सका है (दास, 2014)।

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ गवर्नेन्स 'शासन का समाजशास्त्र' पर कहता है - "यदि समाजशास्त्र समाज का अध्ययन है, और शासन मानवीय मामलों का प्रबन्धन या शासन करने की गतिविधि है तो शासन का समाजशास्त्र अध्ययन है मानवीय मामलों के प्रबन्धन के सामाजिक आयाम। 'शासन का समाजशास्त्र' नाम का कोई स्थापित उपक्षेत्र समाजशास्त्र के अनुशासन के भीतर मौजूद नहीं है।"

यह प्रविष्टि तर्क देती है कि समकालीन समाजशास्त्र के सिद्धान्त और व्यवहार के बारे में अभी बहुत कुछ कहना बाकी है (एंसेल, 2007)।

समाजशास्त्री आन्द्रे बेतेई का सुझाव है कि समाजशास्त्री का कार्य समाज का कामकाज और शासन के कामकाज को समझना है। समाजशास्त्र कोई नीति विज्ञान नहीं है, यह एक चिन्तनशील अनुशासन है, इसे समाज की कार्यप्रणाली को गम्भीरता से समझना चाहिए। आन्द्रे नीति विश्लेषण और नीति निर्धारण के बीच अन्तर पर जोर देते हैं। वे कहते हैं कि सर्वोत्तम तरीके से तैयार की गई नीतियों के भी अनपेक्षित परिणाम हो सकते हैं। उनका मानना है कि समाजशास्त्र अपने सर्वोत्तम स्तर पर होते है जब यह नीति के अनपेक्षित परिणामों की जाँच करता है। इसके लिए 'शासन का समाजशास्त्र' विषय को नीति निर्धारण के बजाय नीति विश्लेषण पर ध्यान देना चाहिए। एंसेल इसी सन्दर्भ में तर्क देते हैं कि कि समाजशास्त्री

समाज में शक्ति के स्रोतों को समझना चाहते हैं और शक्ति का वांछनीय और अवांछनीय दोनों प्रकार के परिणाम उत्पन्न करने के लिए कैसे उपयोग किया जाता है (एंसेल, 2007)।

सामाजिक वैज्ञानिकों का तर्क है कि शैक्षणिक और राजनीतिक क्षेत्र में शासन पर चर्चा बहुत तीव्र हो गई है। ऐसा लगता है कि विकास की चर्चा को शासन पर चर्चा द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। लेकिन कुछ विचारक इसे सुशासन की चर्चा समझकर खुश हैं क्योंकि सुशासन में नियन्त्रण या प्रभुत्व की बहुत ज्यादा भूमिका नहीं है बल्कि यह स्वयं को समाज में समायोजित करने की प्रक्रिया के एक हिस्से के बारे में है।

सुशासन

शासन किसी राज्य और बाजार की कुछ कमियों की भरपाई करने की सम्भावना रखता है, लेकिन यह कभी भी रामबाण साबित नहीं हुआ है। राज्य और बाजार सामाजिक संसाधन आवंटन में विफल हो सकते हैं, तो शासन भी हो सकता है। इसलिए, विद्वानों के सामने एक स्वाभाविक चुनौती यह है कि इसकी विफलता को कैसे दूर किया जाए और इसे और अधिक प्रभावी कैसे बनाया जाए। शासन की कमियों और चुनौतियों का समाधान करने के लिए, दुनिया भर में कई विद्वानों, सामाजिक वैज्ञानिकों, राजनीतिक दार्शनिकों ने एक नयी इकाई खोजने की कोशिश की। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी अपने प्रयासों पर जोर दे रहे थे। इसके लिए अन्य शब्दों के अलावा प्रभावी शासन, कुशल शासन, मेटा शासन, सुदृढ़ शासन और सुशासन जैसे विभिन्न शब्दों की पहचान की गई। इनमें समय के साथ सबसे लोकप्रिय शब्द था 'सुशासन'।

1990 के दशक से चीनी और अंग्रेजी राजनीति विज्ञान साहित्य में इस अवधारणा के लोकप्रिय उपयोग के साथ इस शब्द को कई तरीकों से विस्तृत और समझाया गया है। सामाजिक विज्ञान विषयों में सुशासन के अर्थ, परिभाषा, अवधारणा, तत्वों, कारकों और उपयोग के सम्बन्ध में बहस अभी भी जारी है।

सुशासन का झुकाव सरकार के प्रकार, यानी निरंकुशता, धनतन्त्र, लोकतन्त्र या सरकार के किसी अन्य रूप की ओर कम होता है, बल्कि इसका ध्यान इस बात पर अधिक होता है कि शासन कैसे चलाया जाता है ताकि लोगों को सर्वश्रेष्ठ प्रशासन मिल सके। यह सम्भव हो सकता है कि कौटिल्य का आदर्श राजा अपने नागरिकों की सर्वोत्तम प्रशासन की इच्छा पूरी कर सके और दूसरी ओर; यह भी सम्भव है कि लॉक का लोकतन्त्र लोगों को अपने अधिकार के लिए लड़ने के लिए मजबूर कर दे। यहाँ, कोई अरस्तु के इलिट वर्ग के बारे में भी सोच सकता है जिसे उनके शिष्यों की नजर में सरकार का सर्वोत्तम रूप कहा गया है। लोगों को सर्वोत्तम प्रशासन प्रदान करने के लिए, गाँधी ने वर्गहीन, राज्यविहीन प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का विचार दिया, जबकि दूसरी तरफ अन्य दार्शनिक विचार भी हैं जिसमें चीन में एक दल लोकतन्त्र प्रणाली और ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका में दो दल लोकतान्त्रिक प्रणाली को अच्छी प्रणाली के रूप में पाया है। हालाँकि 'प्रशासन' शब्द को अक्सर नौकरशाही

व्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में समझा जाता है, लेकिन यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि यह सरकार द्वारा पेश किए जाने वाले शासन से अधिक जुड़ा हुआ है।

एस्मेरोम, बोर्गमेन और होप्पे ने 'उपनिवेशोत्तर राज्य में सुशासन, विकेन्द्रीकरण और लोकतन्त्रीकरण' शीर्षक से अपने शोध में परिभाषित किया है कि सुशासन लोकतान्त्रिक ढाँचे में कुशल और प्रभावी प्रशासन से जुड़ा है।

यदि हम सरसरी तौर से देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जब शासन दक्षता और प्रभावशीलता के सिद्धान्तों से सुसज्जित होता है, और इसमें लोगों को सर्वोत्तम प्रशासन प्रदान करने की क्षमता होती है तो हमें परिणामस्वरूप फल सुशासन के रूप में प्राप्त होता है। लोगों को गुणात्मक तरीके से और अनुशासित समय सीमा में अधिकार और सेवाएँ प्रदान करके, नागरिक सन्तुष्टि के स्तर की ऊँचाई देखी जा सकती है। प्राचीन दार्शनिक कौटिल्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में सुशासन के 10 महत्वपूर्ण संकेत दिये हैं, जो इस प्रकार हैं (सिहाग, 2007) -

1. राजा द्वारा अपने व्यक्तित्व को कर्तव्यों के साथ व्यक्त करना चाहिए।
2. उचित रूप से निर्देशित प्रशासन।
3. राजा और मन्त्रियों के लिए आचार संहिता के साथ अनुशासित जीवन।
4. राजा और लोक सेवकों को निश्चित वेतन और भत्ता।
5. कानून और व्यवस्था राजा का मुख्य कर्तव्य है और चोरी से होने वाली हानि की पूर्ति राजा के वेतन से की जानी चाहिए।
6. लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अति से बचना चाहिए।
7. भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध निवारक एवं दंडात्मक उपाय करना।
8. सर्वोत्तम प्रशासनिक गुणों से सुसज्जित होना।
9. सभी धर्मों के प्रति सम्मान।
10. अस्थिरता में भी सुशासन कायम रखना।

सुशासन का सार लोगों की अधिकतम भलाई सुनिश्चित करना है। सुशासन में अन्य महत्वपूर्ण चीजों के अलावा राजनीतिक जवाबदेही, संघ की स्वतन्त्रता, सूचना और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, सुदृढ़ प्रशासन प्रणाली, सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा, राजनीतिक शक्तियों के प्रयोग में वैधता शामिल है। सुशासन की व्यवस्था में, अवैध शक्तियों, गैर-जिम्मेदार विवेकाधीन शक्तियों, अक्षमता, अप्रभाविता आदि को वहाँ रहने के लिए जगह नहीं मिलती है। सुशासन कोई नया विचार नहीं है। 'शासन' का अर्थ है, "निर्णय लेने की प्रक्रिया और वह प्रक्रिया जिसके द्वारा निर्णय लागू किए जाते हैं (या लागू नहीं किए जाते)"। कॉर्पोरेट प्रशासन, अन्तर्राष्ट्रीय शासन, राष्ट्रीय शासन और स्थानीय शासन ऐसे कुछ प्रकार हैं जिनमें 'शासन' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। शासन के विश्लेषण में निर्णय लेने और निर्णयों को लागू करने में शामिल औपचारिक और अनौपचारिक दोनों अभिनेताओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए। शासन के अभिनेताओं में से एक सरकार है। शासन में विभिन्न अन्य कलाकार

भी शामिल होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य अभिनेता शक्तिशाली जमींदार, किसान संघ, सहकारी समितियाँ, गैर सरकारी संगठन, अनुसन्धान संस्थान, धार्मिक हस्तियाँ, वित्तीय संस्थान, राजनीतिक दल, सेना आदि हो सकते हैं। औपचारिक और थोड़ी अधिक भागीदारी के कारण शहरी क्षेत्रों में कहीं अधिक जटिल स्थितियाँ हैं। अनौपचारिक अभिनेता, मीडिया, लॉबिस्ट, विदेशी योगदानकर्ता, बहुराष्ट्रीय निगम और अन्य लोग राष्ट्रीय स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग ले सकते हैं या प्रभावित कर सकते हैं। 'सिविल सोसाइटी' शब्द का प्रयोग आम तौर पर सरकार और सशस्त्र बलों के अलावा सभी प्रतिभागियों को सन्दर्भित करने के लिए किया जाता है। संगठित अपराध सिंडिकेट कुछ देशों में नागरिक समाज के अलावा, विशेषकर शहरी क्षेत्रों और राष्ट्रीय स्तर पर निर्णयों पर प्रभाव डाल सकते हैं। निर्णय लेने और कार्यान्वित करने के लिए उपयोग की जाने वाली विधियाँ औपचारिक सरकारी प्रणालियों के समान हैं। राष्ट्रीय स्तर पर अनौपचारिक निर्णय लेने वाले संगठन भी हो सकते हैं, जैसे 'रसोई कैबिनेट' या अनौपचारिक सलाहकार। सुशासन इसी प्रकार के शासन का नवीनतम संस्करण है जो 1990 के दशक में लोकप्रिय हुआ। उदाहरण के लिए, हरारे राष्ट्रमंडल घोषणा 1991 ने अपने सदस्य देशों को जाति, रंग, पन्थ या विश्वास की परवाह किए बिना सभी के लिए कानून के शासन, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता, मौलिक मानवाधिकार, समान अधिकार और अवसरों को प्रतिबिम्बित करने वाली लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के लिए प्रतिबद्ध किया। 1992 में, विश्व बैंक ने 'शासन और विकास' नामक एक उत्कृष्ट दस्तावेज प्रकाशित किया जो सुशासन की अवधारणा के विकास में एक कदम आगे था। इसने सुशासन को परिभाषित किया, 'सुशासन एक ऐसा तरीका है जिससे सत्ता का प्रयोग किसी देश के आर्थिक उन्नति के लिए और सामाजिक संसाधनों के विकास के लिए किया जाता है।' 1997 से 2006 के दौरान संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव कोफी अन्नान ने सुशासन की अवधारणा में योगदान दिया है और उन्होंने प्रसिद्ध रूप से कहा था कि सुशासन मानवाधिकारों और कानून के शासन के लिए सम्मान सुनिश्चित करता है, यह लोकतन्त्र को मजबूत करता है, जनता में पारदर्शिता और क्षमता को बढ़ावा देता है। इसके अलावा उन्होंने कहा कि गरीबी उन्मूलन और विकास को बढ़ावा देने में सुशासन शायद सबसे महत्वपूर्ण कारक रहा है (इब्राहिम)।

भारत में, सुशासन की विशेषताएँ तब सुर्खियों में आती हैं जब भारतीय सरकार को 1990 के दशक में राजनीतिक अस्थिरता के कारण उभरे आर्थिक संकटों से निपटने के लिए वित्तीय मदद के लिए विश्व बैंक और आईएमएफ (अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) जैसी संस्थाओं की ओर देखना पड़ा। भारत को वित्तीय लाभ के लिए इन शीर्ष निकायों के नियम और शर्तों को स्वीकार करना पड़ा ताकि भारत सरकार पर पड़े आर्थिक संकट को कम किया जा सके। इसके बाद समय-समय पर शासन-प्रशासन में सुधार के लिए नीतियाँ बनती रहीं और लागू होती रही।

आधुनिक सन्दर्भ में सुशासन का सार विश्व बैंक द्वारा इस प्रकार निर्धारित किया गया है (मिनोचा, 1998) -

1. राजनीतिक जवाबदेही, लोगों द्वारा सरकारी सस्थाओं पर विश्वास और राजनीतिक प्राधिकार के उपयोग को मान्य करने के लिए समय पर चुनाव शामिल हैं।
2. विभिन्न धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पेशेवर समूहों के लिए राजनीतिक प्रक्रिया में स्वतन्त्र रूप से जुड़ने और भाग लेने की क्षमता।
3. सामाजिक निष्पक्षता को बनाए रखने, मानवाधिकारों की रक्षा करने और अधिकार के दुरुपयोग को रोकने के लिए कानून के शासन और न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर आधारित एक अच्छी तरह से स्थापित कानूनी प्रणाली।
4. ग्राहक सन्तुष्टि और विवेकाधीन प्राधिकार के दुरुपयोग के सन्दर्भ में सरकारी एजेंसियों और कर्मचारियों के प्रदर्शन को प्रबन्धित करने के लिए एक प्रणाली स्थापित करके नौकरशाही की जवाबदेही तय करना। सरकार में पारदर्शिता से काम करना।
5. सूचना और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सार्वजनिक नीतियों को निर्धारित करने और निर्णय लेने के साथ-साथ यह देखने और मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है कि सरकारें कितनी अच्छी तरह काम करती हैं।
6. एक विश्वसनीय प्रशासनिक संरचना जो प्रभावशीलता और दक्षता को बढ़ावा देती है।
7. सरकार और नागरिक समाज के संगठनों के बीच सहयोग।

सुशासन के कारक

एशिया और प्रशान्त महाद्वीप के विकास के लिए बना संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक आयोग (यूएन ईएससीएपी) दस्तावेज हमें सूचित करता है कि सुशासन में आठ प्रमुख विशेषताएँ शामिल हैं। यह सहभागी, सर्वसम्मति उन्मुख, जवाबदेह, पारदर्शी, उत्तरदायी, प्रभावी और कुशल, न्यायसंगत और समावेशी है और कानून के शासन का पालन करता है (शेंग किओइ)।

1. पारदर्शिता

सुशासन का पहला महत्वपूर्ण कारक पारदर्शिता है। यह उस चरण को सन्दर्भित करता है जब सरकार और नौकरशाही व्यवस्था इस तरह से काम करती है जो बड़े पैमाने पर लोगों के लिए काँच की तरह पारदर्शी होती है। यदि ऐसा होता है, तो लोगों को विभिन्न नीतियों या विनियमों के सम्बन्ध में सरकार द्वारा की जाने वाली प्रक्रिया और कार्यवाही पर सन्देह नहीं होगा। यहाँ यह प्रसिद्ध कहावत प्रासंगिक है कि न्याय न केवल होना चाहिए, बल्कि न्याय होते हुए दिखना भी चाहिए। एक पारदर्शी प्रणाली जनता के विश्वास को प्रोत्साहित करती है। दूसरी ओर, पारदर्शी व्यवस्था होने पर जनता से बहुत कम शिकायतें प्राप्त

होंगी। भारत सरकार द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 इस दिशा में एक प्रमुख कदम है। पारदर्शिता के कार्यान्वयन से सुशासन का स्तर बढ़ता है।

2. सहभागिता

भागीदारी लोकतन्त्र का दूसरा पर्याय है। नागरिकों पर कार्यान्वयन के लिए विभिन्न नीतियों, नियमों या अध्यादेशों को विकसित करते समय इलेक्ट्रॉनिक माध्यम या भौतिक माध्यम से भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है। भागीदारी के साथ, सभी नागरिक एक ही उद्देश्य के लिए एकत्रित होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बेहतर परिणाम मिलते हैं। इसके अलावा, लोग आगामी नीतियों या दिशानिर्देशों की ओर उन्मुख हो जाते हैं और इस बात की सम्भावना कम से कम हो जाती है कि लोग बाद में ऐसी नीतियों का विरोध करेंगे। उदाहरण के लिए, अधिनियमों के अधिनियमन पर विचार करते समय, भारतीय संसदीय समितियाँ आम जनता से सुझाव आमन्त्रित करती हैं, जो शासन की भागीदारी प्रकृति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। भागीदारी सरकार में विश्वास पैदा करती है। ऐसी व्यवस्था जो सुशासन के पैमाने को बढ़ाती है।

3. जवाबदेही

जवाबदेही और जिम्मेदारी बारीकी से जुड़े हुए शब्द हैं। इनमें मामूली अन्तर है। यह कहा जा सकता है कि लोकतान्त्रिक ढाँचे में जवाबदेही सुशासन का एक अहम् स्तम्भ है। जवाबदेही से तात्पर्य इस तथ्य से है कि यदि कोई सरकार जिम्मेदारी से कुछ करती है, लेकिन लोगों को वह पसन्द नहीं आता है, तो सरकार को वो कार्य करने से पीछे हटना पड़ेगा क्योंकि सरकार आम जनता के प्रति जवाबदेह है। उदाहरण के लिए भारतीय संसद ने 2020 में तीन विवादास्पद किसान कानून पारित किए, जिनके नाम हैं किसान उत्पादन व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सुविधा) अधिनियम, किसान (सशक्तीकरण और संरक्षण) मूल्य आश्वासन और कृषि सेवा समझौता अधिनियम, और आवश्यक वस्तु (संशोधन) कार्यवाही करना। लेकिन, कृषक समुदाय ने इन कानूनों को नापसन्द किया और इसके लिए करीब एक वर्ष तक आन्दोलन किया। तदनुसार, सरकार को इन कानूनों को वापस लेने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह सरकार की जवाबदेही को व्यक्त करता है। आम लोगों के प्रति जवाबदेही न केवल लोकतन्त्र की बल्कि सुशासन की भी आवश्यक विशेषता है।

4. सर्वसम्मति

अच्छे प्रशासन के लिए सर्वसम्मति आवश्यक उपकरण है। हालाँकि, लोकतन्त्र शब्द किसी भी नीति या दिशानिर्देश या नियमों के लिए किसी भी मंच पर निर्णय लेते समय संख्या और बहुमत की बात करता है, फिर भी, यह बहुत जरूरी है कि अल्पसंख्यक वर्ग की भी बात सुनी जाए। कुछ विद्वान आम सहमति की विशेषता को लेकर लोकतन्त्र और सुशासन के बीच

टकराव की बात करते हैं। सर्वसम्मति सुशासन में भागीदारी के मूल्य को रेखांकित करती है और इसलिए, सुशासन मशीनरी के लिए सर्वसम्मति बहुत आवश्यक उपकरण है।

5. कानून के शासन का पालन

ब्रिटेन के अलिखित संविधान में कानून के शासन की उत्पत्ति बताई गई है। यह सुनिश्चित करता है कि किसी के साथ दूसरे से अलग व्यवहार नहीं किया जाए और कानून की नजर में सभी समान हैं। यह स्थापित किया जाना जरूरी है कि कोई भी मन्त्री या अधिकारी किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध में कोई भी निर्णय लेते समय कानून का पालन करने के लिए बाध्य हो। इससे न केवल आम जनता में आत्मविश्वास बढ़ता है बल्कि उन्हें यह भी स्पष्ट रूप से समझ आता है कि देश में कोई भी असमान नहीं है। कुछ देशों में कानून अलिखित होते हैं और कुछ देशों में लिखित कानून मौजूद होते हैं। लोकतन्त्र में कानून के शासन का पालन करना अन्तर्निहित विशेषता है। प्राचीन राज्यों में, राजा के आदेश को ही कानून मान लिया जाता था और कानून व्यक्ति दर व्यक्ति अलग-अलग होता था, जिसे सुशासन की कसौटी पर खरा नहीं उतारा जा सकता। सुशासन की भावना फैलाने के लिए कानून के शासन का पालन आवश्यक हो गया है।

6. उत्तरदायिता

जिम्मेदारीपूर्वक कार्य करना, सुशासन की विशेषताओं में से एक है। जवाबदेही यह सुनिश्चित करती है कि सरकार बड़े पैमाने पर लोगों के प्रति कोई भी नीति बनाते समय दो बार सोचे। यह सरकार और नौकरशाही का नैतिक कर्तव्य है कि वे जिम्मेदारी से कार्य करें अन्यथा, जनता उनके साथ अच्छे शासकों वाला व्यवहार नहीं करेगी। उत्तरदायित्व जवाबदेही के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में पहला कदम है और यदि दोनों विशेषताओं का ध्यान रखा जाए तो सुशासन की मंजिल तक पहुँचना आसान हो जाता है।

7. न्यायसंगत और समावेशी

समानता और समावेशिता सुशासन के अभिन्न अंग के रूप में कार्य करती है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी संस्थान की नीतियों या नियमों में सभी शामिल होते हैं, चाहे वह अमीर हो या गरीब, समाज का निचला या ऊपरी तबका आदि। कहने का मतलब यह है कि सुशासन में नीतियाँ जाति, पन्थ, लिंग या कोई अन्य सामाजिक स्थिति भेदभाव को नजरअन्दाज करके सभी के लिए एक समान होनी चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुपालन से स्वयं सरकारी पदाधिकारियों के लिए अपनी नीतियों को अक्षरश: क्रियान्वित कराना आसान हो जाता है। इसके अलावा, जनता की ओर से किसी भी प्रतिरोध की सम्भावना कम से कम हो जाती है। इसलिए, यह सरकारी अधिकारियों और किसी भी सेवा के लाभार्थियों के लिए एक

जीत लेने वाली स्थिति है। इस प्रकार, समानता और समावेशिता सुशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

8. प्रभावी और कुशल

कभी-कभी, प्रभावी और कुशल शब्द का प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है, हालाँकि दोनों के अलग-अलग अर्थ होते हैं। प्रभावशीलता का मतलब काम की गुणवत्ता है जबकि कुशलता यानी दक्षता का मतलब अनुशासित या समय पर चीजों का क्रियान्यवन है। यह सम्भव हो सकता है कि लोगों को सही समय पर सरकार से सेवाएँ मिलें। लेकिन यदि वह गुणात्मक रूप से सही नहीं पायी जाती हैं तो यह कुशल लेकिन अप्रभावी कार्य का मामला होगा। आम लोगों तक सेवाएँ पहुँचाते समय दोनों उपकरणों यानी प्रभावी और कुशल को सन्तुलित करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, नागरिक चार्टर को अपनाने से यह सुनिश्चित होता है कि सेवाएँ नियत समय पर वितरित की जाती हैं। हालाँकि, अक्सर यह पाया जाता है कि गति के नाम पर सेवाओं की आपूर्ति गलत कर दी जाती है या फिर उनमें गुणवत्ता का अभाव होता है। इसलिए, दक्षता और प्रभावशीलता दोनों को सुशासन की महत्वपूर्ण विशेषताएँ माना जाता है।

सुशासन एक महान अवधारणा है यदि इसे उचित शोध के साथ लागू किया गया है और यह उन लोगों तक पहुँचने में सक्षम है जिनके लिए इसका उद्देश्य है। लेकिन कभी-कभी, यह सम्बन्धित लोगों तक नहीं पहुँच पाती है या लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए काम का प्रबन्धन ठीक से नहीं हो पाता है। सार्वजनिक विभागों में सार्वजनिक कार्यों के लिए तैनात धन के उच्च स्तर का भ्रष्टाचार और कुप्रबन्धन सुशासन के कार्यान्वयन के लिए किए गए कार्यों में बाधा डालता है। कुप्रबन्धन एवं भ्रष्टाचार को काबू में लाने के लिए ई-शासन एक महत्वपूर्ण पहलू है।

ई-गवर्नेंस सुशासन की रीढ़ के रूप में कार्य करता है और जनता के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त करता है। यह डिजिटल युग है और दुनिया भर की सरकारें पेपरलेस गवर्नेंस की बात कर रही हैं। पेपरलेस गवर्नेंस और कुछ नहीं बल्कि ई-गवर्नेंस है यानी दिन-प्रतिदिन सरकारी कामकाज के लिए डिजिटल संसाधनों का उपयोग। इंटरनेट ने 1990 के दशक में सरकारों द्वारा आईटी का उपयोग करने के तरीके में महत्वपूर्ण बदलाव लाए, जिससे सरकार और जनता के बीच बातचीत के लिए एक स्पष्ट मंच प्रदान किया गया और सुशासन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उम्मीदें बढ़ गईं। सरकारों को अचानक यह महसूस होने लगा कि अत्यधिक जागरूक नागरिकों की बढ़ती अपेक्षाओं के जवाब में बेहतर प्रभावकारिता, खुलापन, जवाबदेही और आईटी सक्षम शासन को जन-उन्मुखी अपनाना सार्वजनिक सरकार के लिए नया आधार हो सकता है। इन नयी प्रौद्योगिकियों द्वारा प्रदान की गई क्षमता का उपयोग करके, विश्व स्तर पर सामाजिक और आर्थिक उन्नति के नए पहलू तैयार किए जा रहे हैं। सरकारों को चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो राष्ट्रीय सूचना

बुनियादी ढाँचे को संचालित करने के लिए मानव संसाधन को प्रोत्साहित करने, आवश्यक राष्ट्रीय सूचना बुनियादी ढाँचे को तैनात करके डिजिटल अन्तर को पाटने और मानव और बुनियादी ढाँचे दोनों आवश्यकताओं को लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन प्रदान करने से सम्बन्धित है।

ई-शासन की दिशा में आगे बढ़ाने के लिए भारत सरकार ने 1970 में इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग की स्थापना की। भारत में ई-गवर्नेंस पहली बार 1970 के दशक में पेश किया गया था जब सरकार ने 1977 में राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र (एनआईसी) की स्थापना की और ई-गवर्नेंस के उचित कार्यान्वयन के लिए विभागों को जोड़ने की प्रक्रिया शुरू की। 1980 और 1990 के दशक में जब सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) को दैनिक कार्यों में एकीकृत करने की बात आई, तो सरकार थोड़ी ढ़ीली पड़ गई और ई-शासन के लिए आईसीटी को अपनाने में प्राइवेट सेक्टर से काफी पिछड़ गयी। इन प्रयासों को 1987 में राष्ट्रीय उपग्रह आधारित कंप्यूटर नेटवर्क (निकनेट) की स्थापना द्वारा बल प्रदान किया गया था। आईसीटी को पहले पुरानी मैन्युअल प्रक्रिया के साथ सरकार द्वारा केवल आंशिक रूप से प्रयोग में लाया गया था, और सरकार के संचालन के तरीके पर इसका बहुत कम सकारात्मक प्रभाव पड़ा। फिर भी, विभिन्न सरकारी कार्यों के लिए आईसीटी का उपयोग ईमेल, इंटरनेट और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के उपयोग तक ही सीमित है। ई-गवर्नेंस बुनियादी ढाँचे के उचित प्रयोग के कारण सरकार अब काफी हद तक प्रभावी और कुशलता से कार्य करती है।

हाल ही में, हम यह भी देख रहे हैं कि कैसे भारत का माननीय सर्वोच्च न्यायालय ई-गवर्नेंस को लागू करने की दिशा में जोर दे रहा है और भारत की सभी छोटी और बड़ी अदालतों को कागज रहित अदालतों में परिवर्तित करने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं। दूसरी तरफ भारत की नयी संसद और अनेक राज्यों में विधान सभा पेपरलेस होती जा रही है।

ई-गवर्नेंस और पेपरलेस के कारण सरकारें और विभिन्न संगठन सुशासन की ओर तेजी से प्रगति कर रहे हैं जिसमें पारदर्शिता, जवाबदेही, सहभागिता, उत्तरदायिता काफी स्तर पर बढ़ गयी है। भारतीय समाज भी सुशासन की इन विशेषताओं से अछूता नहीं है। लेकिन इन सब प्रयासों के बावजूद सुशासन के क्रियान्यवन में अनेक चुनौतियाँ चट्टान की तरह आगे आकर खड़ी हो जाती हैं जो सामाजिक उत्थान में बाधाएँ बनकर सामने आती हैं।

सुशासन सम्बन्धी चुनौतियाँ

शासन की अनेक समस्याओं के समाधान के लिए सुशासन की अवधारणा में काफी सुझाव निहित हैं। समय-समय पर देश सामाजिक माहौल को भाँपकर सुशासन सम्बन्धी व्यवस्था लागू करने के लिए विशेष कदम उठाते हैं। भारत में भी सुशासन को लागू करने के लिए विभिन्न कानून, योजनाएँ और आयोग बनाये गये हैं। इन पहलों के बावजूद, संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित ई-गवर्नमेंट डेवलपमेंट इंडेक्स (ईजीडीआई) में भारत की रैंकिंग अभी भी 193

देशों में से 100 के आसपास ही रहती है (डिपार्टमेंट ऑफ इकोनॉमिक एवं सोशल अफेयर्स, 2024)। इसका कारण भारत में अनेक चुनौतियाँ हैं -

1. ***वित्त और बुनियादी ढाँचा :*** तकनीकी विकास के लिए, मिशन को बढ़ावा देने के लिए वित्तीय सहायता की सख्त आवश्यकता है। कोविड-19 दौरान यह देखा गया है कि ई-क्रान्ति के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वित्तीय और बुनियादी ढाँचे के विकास में काफी हद तक कमी है।
2. ***निश्चितता :*** भारत में चुनाव मौसम की तरह होते हैं। एक नयी सरकार स्थापित होने के बाद, मौजूदा नीतियों और कार्यक्रमों में बदलाव करती है, जिसके परिणामस्वरूप उसका मूल उद्देश्य पूरा नहीं होता है जो उसे शुरू करते समय सोचा गया था। उदाहरण के लिए, भारत में, एनईजीपी 1.0 को 2006 में लॉन्च किया गया था, फिर ई-क्रान्ति को 2014 में लॉन्च किया गया था और अन्तत: इसे नया रूप दिया गया और 2015 में डिजिटल इंडिया प्रोग्राम में विलय कर दिया गया। उन सभी का उद्देश्य लगभग समान था यानी प्रदान की गई सेवाओं को विस्तरित एवं अच्छे ढंग से वितरित करना। लोगों को सस्ती, सुलभ, सुविधाजनक और आसानी से उपलब्ध तरीके से सरकार प्रदान करना। इस प्रकार, नीतियों में निश्चितता की सख्त आवश्यकता है ताकि लोग और समाज इन कार्यक्रमों पर विश्वास बना सकें।
3. ***प्रशिक्षण :*** अक्सर यह पाया जाता है कि लोकतान्त्रिक देश में लोगों को आकर्षित करने के लिए कार्यक्रम बहुत तेज गति से शुरू किए जाते हैं। लेकिन, इसे लॉन्च करने से पहले, यह बेहद महत्वपूर्ण है कि उस प्लेटफॉर्म या मोबाइल आधारित एप्लीकेशन से निपटने वाले कर्मचारी उचित रूप से प्रशिक्षित और अच्छी तरह से संसाधनों से सुसज्जित हों।
4. ***डिजिटल साक्षरता :*** भारत में डिजिटल साक्षरता के मानक इस तथ्य से समझे जा सकते हैं कि केवल 67 प्रतिशत शहरी आबादी और 31 प्रतिशत ग्रामीण आबादी डिजिटल रूप से साक्षर है।
5. ***साइबर सुरक्षा :*** हाल ही में, द हिन्दू ने बताया कि एक रैन्समवेयर 'अकीरा' मोबाइल फोन से महत्वपूर्ण जानकारी चुरा रहा है और लोगों से पैसे वसूल रहा है। यह भी खबरों में था कि भारत में 50 प्रतिशत से अधिक मोबाइल फोन साइबर हमलों की चपेट में हैं। ये घटनाएँ सरकार द्वारा डिजिटल पहल के लिए किये जा रहे प्रयासों को पीछे धकेल रही हैं।
6. ***डेटा संरक्षण :*** भारत में वर्षों से डेटा संरक्षण के लिए विधायी उपायों का अभाव है। हाल ही में इस सम्बन्ध में एक विधेयक संसद द्वारा पारित किया गया है, जिसकी प्रभावशीलता अभी देखी जानी बाकी है।
7. ***जागरूकता कार्यक्रमों का अभाव :*** लोग अभी भी बड़े स्तर पर जागरूकता कार्यक्रमों की प्रतीक्षा में हैं। यह अक्सर देखा गया है कि किसी विशेष कार्यक्रम के

लिए आवंटित बजट इस कारण से समाप्त हो जाता है कि इसका उपयोग लाभार्थियों द्वारा नहीं किया जाता है। बात यह नहीं है कि लाभार्थियों की संख्या कम है बल्कि सच्चाई यह है कि जागरूकता के प्रसार में कमी है जिस पर तुरन्त ध्यान देने की जरूरत है।

सुशासन सम्बन्धी सामाजिक उपाय

भारत सरकार द्वारा सूचना का अधिनियम 2005 एवं विभिन्न राज्यों के द्वारा सेवा का अधिकार आयोग सुशासन की दिशा में अहम् कदम है। इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए भारत सरकार ने हर वर्ष 25 दिसम्बर को सुशासन दिवस मनाने का फैसला किया है। सुशासन में राज्य सरकारों द्वारा कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए सुशासन सूचकांक को लागू किया गया है जिसमें राज्यों को उनके प्रयासों को देखते हुए विभिन्न श्रेणी में रखकर भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत भी किया जाता है। सुशासन से सामाजिक आयाम को अधिक से अधिक लाभान्वित करने के लिए निम्न महत्वपूर्ण कदमों को उठाना जरूरी है -

- ***समाजिक विश्वास :*** किसी भी कानून, नियम और योजना को तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक उस समाज के लोगों में प्रावधान के प्रति विश्वास न हो। भारत में अनेकों ऐसे कानून हैं जिन्हें लागू तो बहुत सालों से किया जा चुका है लेकिन समाज उनको तवज्जो नहीं देता। शासन से ई-शासन और फिर सुशासन के परिवर्तनकाल में समाज को साथ लेकर चलने की अत्यन्त आश्वयकता है। समाज को यह विश्वास दिलाने की जरूरत है कि ई-शासन और सुशासन सम्बन्धी कदम उनकी भलाई के लिए हैं। सरकारों द्वारा दी जाने वाली अनेकों सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए हमें फीस ऑनलाइन देनी पड़ती है लेकिन बहुत लोग आज भी ऑनलाइन पेमेंट से कतराते हैं। सरकारों को उचित कदम उठाने की जरूरत है ताकि ऑनलाइन पेमेंट, ऑनलाइन बैंकिंग, ऑनलाइन शिक्षा, ऑनलाइन वोटिंग आदि से समाज के अन्दर का डर खत्म किया जा सके।
- ***डिजिटल डिवाइड :*** यह सामाजिक-आर्थिक कारकों, भौगोलिक कारकों, शैक्षिक, व्यवहार सम्बन्धी और पीढ़ीगत कारकों के कारण हो सकता है, या यह शारीरिक अक्षमताओं के कारण हो सकता है। डिजिटल डिवाइड आज की पीढ़ी में एक नयी असमानता के रूप में उभर रही है। इस समस्या से निजात पाने के लिए सरकारों को इंटरनेट कनेक्टिविटी बढ़ानी पढ़ेगी ताकि जो गाँव-देहात जैसे इलाके हैं वहाँ तक इंटरनेट की पहुँच हो सके। डिजिटल साक्षरता अभियान इस दिशा में एक ठोस कदम हो सकता है।
- ***सख्त शिकायत निवारण तन्त्र :*** किसी भी प्रक्रिया को सुचारू रूप से लागू करने के लिए एक शिकायत निवारण तन्त्र की अहम् भूमिका होती है। इससे न केवल जनता

के मन में विश्वास पैदा होता है अपितु शासन में भी समय पर काम करने की प्रतिबद्धता का विकास होता है।

- ***निवेश :*** ई-गवर्नेंस को पूरी तरह से लागू करने के लिए बुनियादी ढाँचे के विकास में महत्वपूर्ण वित्तीय निवेश किया जाना चाहिए। ऑनलाइन पोर्टल स्थापित करने से जुड़ी लागत जिसमें सभी आवश्यक प्रौद्योगिकी, सॉफ्टवेयर, कर्मचारी, डिजाइन और विकास टीमें शामिल हैं, उन पर काफी ध्यान देने की जरूरत है। हार्डवेयर के रखरखाव और समर्थन के लिए सरकार को एक महत्वपूर्ण राशि का निवेश करना होगा। सभी नागरिकों को कम्प्यूटर का कामकाजी ज्ञान नहीं है, इसलिए उन्हें यह सिखाया जाना चाहिए कि ये सुझाए गए इंटरनेट पोर्टल कैसे संचालित होते हैं।
- प्रशासनिक अधिकारी सरकारी विभागों को नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी के साथ इंटरनेट के लिए तैयार करने की पुनर्रचना की प्रक्रिया का समर्थन कम करते हैं। ई-गवर्नेंस द्वारा लाए गए प्रभावशीलता और दक्षता लाभ के बावजूद वे इन उपायों का विरोध करते हैं। ई-गवर्नेंस परियोजना को राष्ट्रीय स्तर पर अच्छी तरह से संचालित करने के लिए एक मजबूत और आसानी से उपलब्ध बुनियादी ढाँचा आवश्यक है, लेकिन भारत में इसकी कमी है। कुछ अधिकारी परियोजना की आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं और अच्छा प्रदर्शन कर सकते हैं, लेकिन सभी अधिकारियों में यह गुणवत्ता नहीं होती है। इस समस्या के समाधान के लिए समाज में इंटरनेट सम्बन्धी बौद्धिक विकास होना जरूरी है ताकि वे अपने अधिकारों के लिए शासन के सामने डट कर खड़े हो सकें।

निष्कर्ष

कुछ साल पहले तक शासन के शोध का दायरा केवल राजनीति विज्ञान या लोक प्रशासन विषयों तक ही सीमित था जो अब संकरी गलियों को छोड़कर समाजशास्त्र जैसे वृहत् दायरे में विकसित हो रहा है। भारत में भी सामाजिक उत्थान के लिए शासन से सुशासन तक का सफर चल रहा है। इस सफर में अनेक चुनौतियाँ भी हैं और अनेक सम्भावनाएँ भी हैं। भारतीय समाज की प्रगति के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाने की काफी जरूरत है। जिसमें सबसे पहले डिजिटल डिवाइड जैसी उभरती नयी असमानता का समाधान जरूरी है। लोगों का डेटा सुरक्षित रहे, इसके लिए डेटा संरक्षण कानून लागू करना जरूरी हो गया है। सामाजिक जागरूकता कार्यक्रम कुछ हद तक इन चुनौतियों से निपटने में कारगर हो सकते हैं। इन कदमों को लागू करने के लिए और समाज को सुशासन प्रदान करने के लिए, राजनीति विज्ञान के अनुशासन को समाजशास्त्र के साथ हाथ में हाथ मिलाकर काम करना चाहिए क्योंकि समाजशास्त्र सभी सामाजिक विज्ञानों की जननी है और जननी की ओर जाने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।

सन्दर्भ

एंसेल, चेरिस (2007), *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ गवर्नेंस,* सेज प्रकाशन, पृ. 901-908

एंसेल, चेरिस (2007), 'कोलेबरेटिव गवर्नेन्स इन थ्योरी एंड प्रेक्टिस', *जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिसर्च एंड थ्योरी,* पृ. 543-571

ब्लैटर, जोएचिम (2012), *पोलिटिकल गवर्नेंस : थ्योरिटिकल फाउंडेशन एंड आइडियल टाइप्स वर्किंग पेपर सिरीज,* युनिवर्सिटी आफ लुसाने

कमीशन आन ग्लोबल गवर्नेन्स (1995), *अवर ग्लोबल नेबरहुड,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 2-3

दास (2014), *सोश्योलॉजी ऑफ गवर्नेंस : ए स्टडी इन सोनितपुर (असम),* तेजपुर युनिवर्सिटी, असम

इब्राहिम, द सेकेरिट्री जर्नल एजेंडा: सस्टेनेबल डेवलपमेंट इन अफ्रीका रिक्वायर्स गुड गवर्नेंस, युनाइटेड नेशन, अमेरिका https://www.un.org/en/chronicle/article/secretary-generals-agenda-sustainable-development-africa-requires-good-governance

फॉक्स, के. एवं वार्ड, के. (2008), 'व्हाट गवर्नेन्स गवर्न्स एंड हाउ डज इट इवॉल्व, द सोश्योलॉजी ऑफ गवर्नेंस इन एक्सल', *ब्रिटिश जर्नल ऑफ सोश्योलॉजी,* लन्दन, पृ. 519-538

मिनोचा (1998), 'गुड गवर्नेन्स : न्यू पब्लिक मेनेजमेंट पर्सपेक्टिव', *इंडिया जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* पृ. 272-273

सिहाग, बलबीर (2007), *कौटिल्य ऑन इंस्टीट्यूशन, नॉलेज एंड प्रॉस्पेरिटी,* एमराल्ड ग्रुप पब्लिकेशन लिमिटिड, पृ. 5-28

शेंग किओइ, यू.न.स.इ.ए.पी, *व्हाट इज गुड गवर्नेंस,* थाईलेंड, बैंकॉक https://www.unescap.org/sites/default/files/good-governance.pdf

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 61-72)
UGC-CARE (Group-I)

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी, प्रतिनिधित्व एवं मतदान व्यवहार : उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के विशेष सन्दर्भ में

पूजा भारती* एवं रिपुसूदन सिंह†

राजनीतिक दल के माध्यम से ही राजनीतिक भागीदारी, प्रतिनिधित्व एवं अन्य लोकतान्त्रिक अधिकारों का प्रयोग करने के लिए मंच प्रदान किया जा सकता है। महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी एवं लैंगिक समानता वास्तविक लोकतन्त्र के लिए एक प्राथमिक मूल्य है। इसके माध्यम से ही सार्वजनिक निर्णय निर्माण में महिलाओं की सीधी भागीदारी को सुनिश्चित किया जाता है। राजनीति और निर्णय लेने वाले सांगठनिक पदों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व आज भी नगण्य है। राजनीतिक समानता तब तक व्यर्थ है, जब तक महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित रखा जाएगा। इस शोध पत्र के माध्यम से उत्तर प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में आधी आबादी अथवा महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं मतदान व्यवहार के साथ पार्टी कार्यकर्ताओं, चुनावी

*शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
E-mail: poojabharti314@gmail.com
†प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
E-mail: ripusudans@gmail.com

उम्मीदवारों और नीति निर्माता के रूप में उनकी भूमिका का गहनता से अध्ययन करना है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र में, सबसे अधिक महिला मतदाता है परन्तु देश एवं राज्यों के राजनीतिक परिदृश्य में महिलाओं की स्थिति चिन्ताजनक है। भारत में दलित महिलाएँ लिंग, पितृसत्ता के साथ-साथ जातिगत भेदभाव की भी शिकार होती हैं। दलित महिलाएँ समाज के पदानुक्रम में महिला एवं निम्न वर्ग से होने का दोहरा बोझ उठा रही हैं जिस कारण राजनीति में दलित महिलाओं की भी स्थिति अदृश्य है। अतः अब चुनावी मुकाबले में अधिक से अधिक महिलाओं को आगे लाना अपरिहार्य है, जिससे अधिक संख्या में महिला विधायक विधायी निकायों तक पहुँच सके तथा भारत के समावेशी लोकतन्त्र को और अधिक सार्थक बनाया जा सके।

बीज शब्द - चुनाव, नारीवाद, लैंगिक समानता, मताधिकार, राजनीतिक सहभागिता, सशक्तीकरण, नेतृत्व।

प्रस्तावना

राजनीतिक गतिविधि में लोगों की भागीदारी लोकतन्त्र का सार है। राजनीतिक भागीदारी को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया जाता है। राजनीतिक भागीदारी का तात्पर्य केवल वोट देने के अधिकार को प्राप्त करना नहीं अपितु इसमें सार्वजनिक बैठकों में उपस्थिति, आन्दोलनात्मक गतिविधियों में भाग लेना, प्रदर्शन, राजनीतिक दलों के अध्ययन मंडलों में उपस्थिति, चुनाव में मतदान करना, किसी राजनीतिक दल की सदस्यता, चुनाव अभियान में भाग लेना, निर्णय-निर्माण में सहयोग देना, पार्टी सक्रियता, नेताओं के साथ-साथ अन्य लोगों से संचार एवं सम्प्रेषण स्थापित करना, पार्टी के बड़े पदों पर बने रहना, चुनाव लड़ना, प्रतिनिधि निकायों में सदस्यता जैसी अन्य गतिविधियों की विस्तृत शृंखला शामिल है (कुमारी, 2010)। दुनिया भर में महिलाएँ आज शक्ति एवं अधिकार के असमान वितरण को चुनौती देने के लिए संघर्ष कर रहीं हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का महिलाओं के सन्दर्भ में मानना था कि "मैं समुदाय की प्रगति को महिलाओं द्वारा हासिल की गई प्रगति के स्तर से मापता हूँ। शादी करने वाली हर लड़की अपने पति के साथ-साथ खड़ी हो अपने बराबर होने का दावा करे और उनकी दासी बनने से इंकार करे, मुझे यकीन है कि यदि आप इस सलाह का पालन करते हैं तो आप सम्मान और गौरव कर लेंगे" (कल्याणी, 2024)। इस प्रकार उनके द्वारा कहा गया यह शब्द देश के विकास के लिए महिला सशक्तीकरण एवं प्रतिनिधित्व के महत्व को परिलक्षित करता है। राजनीति के क्षेत्र में भारतीय महिलाओं की भागीदारी 20वीं सदी के आरम्भ से स्वाधीनता आन्दोलन, समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलन में, सहभागिता में बने कांग्रेस मन्त्रिमंडल के विविध पदों पर सुशोभित होने के साथ ही शुरू हो गई थी। उत्तर प्रदेश ने भारत को पहली महिला प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी, पहली महिला मुख्यमन्त्री सुचेता कृपलानी, पहली दलित महिला मुख्यमन्त्री मायावती और यहाँ तक कि पहली महिला राज्यपाल भी दीं परन्तु वर्षों से महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने में विफल रहा है (सिंह, 2016)। शासन-प्रशासन के विविध महत्वपूर्ण पदों पर महिलाओं की उपस्थिति गौरव की बात

है परन्तु लोकसभा तथा विधानसभा में महिला प्रतिनिधित्व क्रमश: 4 से 13.6 प्रतिशत तथा 12 प्रतिशत (उत्तर प्रदेश विधानसभा 2022) के बीच होना दुखद संकेत है। लोक नीति विकासशील समाज अध्ययन केन्द्र (सीएसडीएस) और के.ए.एस. द्वारा हाल ही में किए गए एक अध्ययन में पाया कि हर तीन में से दो महिलाओं को राजनीतिक भागीदारी के सम्बन्ध में कोई स्वतन्त्रता नहीं है। अधिकांश महिलाओं को राजनीतिक रैलियों या अभियानों, स्थानीय उम्मीदवारों की बैठकों, विरोध प्रदर्शनों या यहाँ तक की गाँव की बैठकों में भाग लेने के लिए अपने पतियों या परिवार के वरिष्ठ सदस्यों से अनुमति लेने की आवश्यकता होती है (सी.एस.डी.एस. लोकनीति, 2019)। सामाजिक, आर्थिक वर्ग भी चुनावी गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी निर्धारित करता है। उच्च सामाजिक (जाति) और उच्च आर्थिक वर्गों से सम्बन्धित महिलाएँ सामाजिक और आर्थिक पदानुक्रम के निचले स्तर पर स्थित महिलाओं की तुलना में चुनावी राजनीति में अधिक सक्रिय पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त एक आम धारणा यह भी है कि महिला राजनीति में तभी सफल हो सकती है जब वह समाज के उच्च वर्ग, उच्च जाति और अमीरी से सम्बन्धित हो तथा उसकी पहले से ही राजनीतिक पृष्ठभूमि हो (एक्सप्रेस न्यूज सर्विस, 2019)।

प्रस्तुत शोध पत्र में भारत की वर्तमान राजनीति में महिलाओं की भागीदारी एवं प्रतिनिधित्व का अध्ययन किया गया है तथा विभिन्न आंकड़ों के माध्यम से उत्तर प्रदेश विधानसभा में महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को जानने का प्रयास किया गया है। निर्णय-निर्माण के समूहों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी भी कम है परिणामस्वरूप प्रस्तुत अध्ययन यह जानने का प्रयास करेगा कि क्या भारतीय राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व स्वतन्त्रता के बाद बेहतर हुआ है? साथ ही यह समझने का प्रयास किया गया है कि भारतीय स्वतन्त्रता के 78 साल बाद भी महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व में कमी के क्या कारण रहे हैं? भारत में आज भी विभिन्न घरों में महिलाओं को अपने राजनीतिक विचारों को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करने की आजादी नहीं होती है, अत: भारतीय राजनीति में यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।

अध्ययन के उद्देश्य

- उत्तर प्रदेश की चुनावी राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व का अध्ययन करना।
- उत्तर प्रदेश के विभिन्न विधानसभा चुनाव तथा महिलाओं के मतदान व्यवहार का अध्ययन करना।
- उत्तर प्रदेश की चुनावी राजनीति मे महिला सशक्तीकरण एवं नेतृत्व क्षमता का मूल्यांकन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर प्रदेश विधानसभा में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व का अध्ययन किया गया है। इस शोध पत्र में मुख्यत: वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है जो द्वितीय स्रोतों पर आधारित है, जिससे विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, समाचार पत्र और चुनाव आयोग की वेबसाइट, सीएसडीएस रिपोर्टस तथा समसामयिक मुद्दों की जानकारी प्राप्त करने के लिए अन्य ई-रिसोर्स का उपयोग किया गया है।

भारतीय स्वतन्त्रता के बाद संविधान में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में पुरुषों एवं महिलाओं के लिए समानता की गारंटी दी गई। संविधान का भाग-3 पुरुष-महिलाओं के मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है। राज्य नीति निदेशक तत्व पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन, कार्य की मानवीय स्थिति और मातृत्व राहत प्रदान करके आर्थिक सशक्तीकरण सुनिश्चित करता है। कोई भी भारतीय नागरिक चाहे वह महिला हो या पुरुष जो मतदाता के रूप में पंजीकृत है और 25 वर्ष से अधिक है, संसद के निचले सदन लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं के लिए चुनाव लड़ सकता है। यद्यपि संसद के ऊपरी सदन, राज्यसभा के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष है। अनुच्छेद - 325, 326 राजनीतिक समानता और वोट देने के अधिकार का प्रावधान संविधान में वर्णित हैं। साथ ही संसद एवं विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधान किया गया हैं। 1974 में भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति की रिपोर्ट ने राजनीतिक संस्थानों में महिलाओं के अधिक प्रतिनिधित्व की वकालत की और महिलाओं के लिए स्थानों के आरक्षण के मुद्दे को फिर से सामने लायी (घोष, 2022)। राजनीति में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से 20 अप्रैल 1993 की क्रान्ति का दायरा बहुत व्यापक है इस वर्ष पंचायत को संवैधानिक मान्यता दी गई। तथा उनका कार्य क्षेत्र परिभाषित किया गया उनके संसाधनों के स्रोत निश्चित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित पदों पर भी इन वर्गों की तिहाई महिलाओं को आरक्षण दिया गया। इस तरह पंचायत क्रान्ति को समाज के सभी वर्गों तक ले जाने की कोशिश हुई। पंचायत में महिलाओं की भागीदारी से उनकी स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया। पंचायत के द्वारा महिलाओं को प्राप्त राजनीतिक सहभागिता की ही देन है कि विगत वर्षों में राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीतिक संस्थानों में महिलाओं की भागीदारी से शासन की गुणवत्ता में सुधार आया है। आर्थिक तथा जीविका से जुड़े मुद्दों, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों तथा कई स्तरों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है (कुमार, 2016)।

महिला आरक्षण विधेयक 2023 का संक्षिप्त इतिहास

महिला आरक्षण विधेयक अधिनियम बनने से पूर्व का एक लम्बा इतिहास रहा है साथ ही साथ यह विभिन्न उथल-पुथल भरे रास्तों से गुजरा है। पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च

ब्यूरो की एक रिपोर्ट के अनुसार संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए सीट आरक्षित करने के लिए संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक 1996, 1998, 1999 तथा 2008 में क्रमश: प्रस्तुत किए गए थे। प्रथम तीन विधेयक अपनी-अपनी लोकसभा में भंग होने के साथ ही समाप्त हो गए, परन्तु 2008 का विधेयक राज्यसभा में पेश किया गया तथा पारित हो गया, लेकिन 15वीं लोकसभा के भंग होने के साथ ही यह भी समाप्त हो गया। पुन: 1996 के इस विधेयक की संसद की संयुक्त समिति ने जाँच की थी। यद्यपि 2008 के विधेयक की कार्मिक लोक शिकायत कानून और न्याय सम्बन्धी स्थाई समिति ने जाँच की थी। इस विधेयक को लगातार चुनौतियों का सामना करना पड़ा। महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत संसदीय स्थान आरक्षित करने के उद्देश्य से लाए गए इस विधेयक को 2014 में ओबीसी और एससी, एसटी वर्ग के लिए आरक्षण के मुद्दे का समाधान न होने के कारण यह विधेयक पुन: निरस्त हो गया।

नारी शक्ति वन्दन अधिनियम, 2023 विधेयक को लोकसभा और राज्यसभा दोनों में लगभग सर्वसम्मति से समर्थन मिला, इस विधेयक में लोकसभा, राज्य विधानसभाओं और दिल्ली निर्वाचित विधानसभा के साथ केन्द्र शासित प्रदेश में सभी सीटों में से एक तिहाई स्थानों को महिलाओं के लिए आरक्षित करने का प्रावधान है। हालांकि यह एक स्वागत योग्य कदम था परन्तु इसका यथार्थ रूप में क्रियान्वयन अनिश्चित भविष्य के लिए छोड़ दिया गया है क्योंकि यह केवल एक दशक की जनगणना और सीटों के परिसीमन के पूरा होने के बाद ही व्यावहारिकता में लाया जाएगा। देखा जाए तो परिसीमन आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने में लगभग 5 साल का समय लगाया था अधिकांश विशेषज्ञों का अनुमान है कि 2029 के लोकसभा चुनाव में भी महिलाओं के लिए कोटा लागू होने की सम्भावना पर प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है (सिंह, 2024)।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी एवं प्रतिनिधित्व की स्थिति का आकलन करने के लिए विभिन्न मुख्य पैरामीटर हैं, जैसे - कितने वोट कितनी महिलाएँ देती हैं, उनमें से कितनी चुनाव लड़ती हैं, और उनमें से कितनी राष्ट्रीय, राज्य एवं स्थानीय स्तर पर विधायी निकायों के लिए चुनी जाती हैं। चौथा पैरामीटर चुनाव से सम्बन्धित, पार्टी समर्थक तथा अन्य राजनीतिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी। राजनीतिक सशक्तीकरण आवश्यक शर्त है, जिसका अर्थ है एक न्यायपूर्ण तथा सम-समाज की स्थापना तथा लिंगात्मक समानता को सुशासन की कुंजी के रूप में देखा जाता है।

संसद और राज्य विधायिका न केवल कानून बनाती हैं बल्कि कार्यपालिका को जवाबदेह बनाती हैं तथा विभिन्न निर्वाचन क्षेत्र पहचान समूह और हित समूह का प्रतिनिधित्व करती हैं। भारत जैसे संसदीय लोकतन्त्र में मन्त्री के रूप में सरकार में भाग लेने के लिए संसद की सदस्यता एक आवश्यक शर्त है। हालांकि चुनाव में मतदाताओं के रूप में महिलाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है लेकिन लोकसभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के आंकड़े

बताते हैं कि महिला प्रतिनिधित्व का अनुपात उनके पुरुष समकक्षों की अपेक्षा कम रही है जैसा की तालिका 1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 1
भारत के लोकसभा चुनावों में महिला प्रतिनिधित्व

वर्ष	सीटों की संख्या	सफल महिलाएँ	प्रतिशत
1952	489	22	4.4
1957	494	27	5.4
1962	494	34	6.7
1967	523	31	5.9
1971	521	22	4.2
1977	544	19	3.4
1980	544	28	5.1
1984	544	44	8.1
1989	529	28	5.3
1991	509	36	7.0
1996	541	40	7.4
1998	545	44	8.0
1999	543	48	8.8
2004	543	45	8.1
2009	543	59	10.9
2014	543	61	11.2
2019	543	78	14.6
2024	543	74	13.6

स्रोत - भारत का निर्वाचन आयोग

भारत में सम्पन्न 1952 के लोकसभा चुनाव में कुल सीटों की संख्या 489 थी जिसमें से कुल 22 महिला सांसद थीं यह लगभग चार प्रतिशत थी। समय-समय पर सम्पन्न विभिन्न चुनावों में महिला मतदाताओं में क्रमिक सुधार दर्ज किया गया लेकिन उसके अनुपात में संसद में महिला सांसदों की वृद्धि नहीं हुई है। अब तक लोकसभा में चुनी गई महिला प्रतिनिधियों का उच्चतम प्रतिनिधित्व 2019 के लोकसभा चुनाव में देखा गया था। यद्यपि 2024 के लोकसभा चुनाव में गिरावट दर्ज की गई, यह संख्या जहाँ 2019 में 78 अथवा 14.6 प्रतिशत थी वहीं 2024 के लोकसभा चुनाव में 543 सीटों में से 74 पर महिला सांसद चुनी गईं जो कुल संख्या का केवल 13.6 प्रतिशत है (भारत का निर्वाचन आयोग, 1952-2019)। भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की संख्या अभी भी बहुत कम है, इस तथ्य के बावजूद कि वह कुल मतदाताओं का लगभग 50 प्रतिशत है। देश में बहुत सी महिलाएँ राजनीति में अपना कैरियर या भविष्य नहीं देखती हैं या इस पर विचार भी नहीं करती हैं। यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि भारत में राजनीति अभी भी काफी हद तक पुरुष प्रधान बनी हुई है। यद्यपि पिछले एक

दशक में भारतीय चुनावी राजनीति में होने वाला सबसे बड़ा राजनीतिक बदलाव भारतीय राजनीति में बढ़ती महिलाओं की भागीदारी है। महिलाओं की संख्या न सिर्फ संसद में अपितु राज्य विधानसभा में भी बढ़ी है।

तालिका 2
राज्यों के विधानसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 2022

राज्यों का नाम	प्रत्याशी			निर्वाचित		
	कुल	महिला (संख्या)	महिला (प्रतिशत)	कुल सीट	महिला (संख्या)	महिला (प्रतिशत)
गोवा	301	26	8.64	40	3	7.50
मणिपुर	265	17	6.42	60	5	8.33
पंजाब	1304	93	7.13	117	13	11.11
उत्तराखंड	632	63	9.97	70	8	11.43
उत्तर प्रदेश	4442	561	12.63	403	48	12

स्रोत - भारत का निर्वाचन आयोग

2022 में सम्पन्न विधानसभा चुनाव में गोवा में कुल प्रत्याशियों की संख्या 301 रही जिसमें महिला प्रत्याशी 26 थी अथवा कुल प्रत्याशियों की केवल 8.64 प्रतिशत, निर्वाचित सदस्यों की अगर बात की जाए तो गोवा में कुल सीट 40 थीं जिसमें सफल महिला विधायकों की संख्या केवल 3 रही। इसी प्रकार क्रमशः मणिपुर, पंजाब, उत्तराखंड में कुल प्रत्याशी क्रमशः 265, 1304, 632 थे, जिसमें महिलाओं की संख्या क्रमशः 17, 93, 63 रही एवं सफल महिला विधायकों की संख्या क्रमशः केवल 5, 13, 8 थी। सर्वाधिक प्रत्याशियों की संख्या उत्तर प्रदेश में 4442 थी जिसमें कुल महिला प्रत्याशी 561 थीं, जिसमें कुल सफल महिला विधायकों की संख्या केवल 48 है जो कुल विधानसभा सदस्यों की संख्या का 12 प्रतिशत है।

तालिका 3
राज्यों के विधानसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 2023

राज्य का नाम	मध्य प्रदेश		छतीसगढ़		राजस्थान		तेलंगाना		मिजोरम	
	2018	**2023**	**2018**	**2023**	**2018**	**2023**	**2018**	**2023**	**2018**	**2023**
महिला उम्मीदवार	235	253	128	155	184	183	136	221	17	16
सफल उम्मीदवार	21	27	13	19	24	20	6	10	0	3
सफल उम्मीदवार प्रतिशत	9	12	14	21	12	10	5	8	0	7.5

स्रोत - भारत निर्वाचन आयोग

राज्यों में दिसम्बर 2023 में हुए विधानसभा चुनाव की बात करें तो मध्य प्रदेश में 2018 में 235 महिला उम्मीदवार की संख्या थी। जो 2023 में 253 हो गई एवं सफल उम्मीदवार की संख्या क्रमशः 2018 में 21 एवं 2023 में 27 हो गई। राजस्थान में सम्पन्न

2018 की विधानसभा चुनाव में कुल महिला उम्मीदवारों की संख्या 2018 में 184 रही तथा 2023 में 183 रही जिसमें सफल महिलाओं की संख्या 2018 में 24 तथा 2023 में 20 हो गई। तेलंगाना विधानसभा चुनाव 2018 में महिला उम्मीदवारों की संख्या 136 रही जिसमें सफल महिला विधायक की संख्या 6 अथवा केवल 5 प्रतिशत रही। 2023 के विधानसभा चुनाव में कुल महिला उम्मीदवार की संख्या 221 रही जिसमें सफल महिला विधायकों की संख्या 10 है यह कुल उम्मीदवार का 8 प्रतिशत है। मिजोरम विधानसभा में 2018 में कुल महिला उम्मीदवार 17 रही जिसमें सफल महिलाओं की संख्या 0 रही। यदि 2023 विधानसभा की बात की जाए तो कुल महिला उम्मीदवार 16 रही जिसमें से केवल तीन सफल महिला उम्मीदवार रहीं। यह कुल सफल उम्मीदवारों का 7.5 प्रतिशत था। महिला प्रतिनिधित्व के मामले में सबसे ऊपर छत्तीसगढ़ विधानसभा रही है। छत्तीसगढ़ के निर्वाचित विधायकों में 21 प्रतिशत संख्या महिलाओं की है यद्यपि 2018 के चुनाव में यह संख्या केवल 14 प्रतिशत थी।

तालिका 4

उत्तर प्रदेश के विधानसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

वर्ष	सफल महिला विधायक प्रतिशत में
1952	3.17
1957	7
1962	4.65
1967	1.64
1969	4.47
1974	5.17
1977	2.82
1980	4.7
1985	7.3
1989	4.47
1991	2.35
1993	3.05
1996	4.94
2002	6.43
2007	5.69
2012	8.6
2017	10.9
2022	12

स्रोत - भारत निर्वाचन आयोग

उत्तर प्रदेश में महिला विधायकों की कुल संख्या पहले राज्य विधानसभा चुनाव 1952 से 1989 तक महिलाओं का औसत प्रतिनिधित्व 4.5 प्रतिशत रहा है और 0.67 अंकों की मामूली वृद्धि के साथ, यह संख्या पिछले छह विधानसभाओं में 5.17 प्रतिशत रहा है, जब

सपा, बसपा और भाजपा ने राज्य पर शासन किया था। यहाँ तक कि जब उत्तर प्रदेश सरकार का नेतृत्व महिला मुख्यमन्त्री सुश्री मायावती ने किया था, तब भी विधानसभा में महिला प्रतिनिधियों की संख्या केवल 5.69 प्रतिशत ही रही। 2017 में 4,853 उम्मीदवारों में से केवल 482 महिलाओं ने विधानसभा चुनाव और लगभग 42 विजयी हुईं। सपा संरक्षक मुलायम सिंह यादव ने राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित करने के बजाय उन्हें आरक्षण दिए जाने का समर्थन किया। इसी प्रकार 18वें विधानसभा चुनाव में 48 महिला विधायक हैं जो सदन की कुल सदस्य संख्या का लगभग 12 प्रतिशत हैं। इसमें भाजपा के 255 विधायकों में से 29 महिलाएँ, समाजवादी पार्टी के 109 विधायकों में से 14 महिलाएँ, अपना दल (सोनेलाल) के 13 विधायकों में से चार महिलाएँ तथा कांग्रेस के दो विधायकों में से एक महिला शामिल हैं। कांग्रेस द्वारा 2022 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में महिलाओं को 40 प्रतिशत टिकट देने का फैसला किया गया यद्यपि उसका यह कदम न तो महिलाओं के पक्ष में और न ही पार्टी के पक्ष में गया। राज्य विधानसभा चुनाव 2017 से 2022 में महिला विधायकों की कुल संख्या केवल 48 है, जो इस बात का साक्ष्य है कि महिलाओं को सत्ता में पर्याप्त हिस्सेदारी आज भी नहीं प्राप्त हो सकी है। उत्तर प्रदेश विधानसभा में महिलाओं का कुल औसत प्रतिनिधित्व हमेशा 5 प्रतिशत से कम रहा है। यद्यपि महिलाओं के प्रतिनिधित्व में कमी के विभिन्न कारक हैं, जैसे राज्य में महिलाओं का शैक्षणिक स्तर सन्तोषजनक नहीं है तथा उनमें राजनीतिक रूप से जागरूकता की कमी है (भारत का निर्वाचन आयोग, उत्तर प्रदेश, 1951-2022)।

तालिका 5

उत्तर प्रदेश की विधानसभा में जातिगत आधार पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व

वर्ष	कुल सीटे	प्रत्याशी की संख्या	कुल निर्वाचित	सामान्य वर्ग	दलित वर्ग
2002	403	344	26	11	15
2007	403	370	23	15	8
2012	403	583	35	22	13
2017	403	482	42	31	11
2022	403	559	48	29	19

स्रोत - भारत का निर्वाचन आयोग (2002-2022)

तालिका 5 में प्रदर्शित किए गए आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में 2002 से 2022 तक के विधानसभा चुनाव में सामान्य वर्ग की महिलाओं एवं दलित वर्ग की महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़ी है। उपर्युक्त तालिका में दर्शाया गया है कि उत्तर प्रदेश के 2002 के विधानसभा चुनाव में सदन में पहुँचने वाली दलित महिलाओं की संख्या 15 रही, वहीं 2022 में सम्पन्न विधानसभा चुनाव में यह बढ़ कर 19 हो गई, इस चुनाव में अब तक का सबसे अधिक दलित महिलाओं का प्रतिनिधित्व रहा है। इसी प्रकार

2002 के विधानसभा चुनाव में 344 प्रत्याशी की संख्या में कुल निर्वाचित महिलाओं की संख्या 26 रही जिसमें सामान्य वर्ग की कुल 11 महिलाएँ विधायक के रूप में चुनी गईं जबकि 2022 में यह संख्या 28 हो गई (अम्बेडकर, 2024)।

निष्कर्ष

आधी आबादी को सशक्त बनाए बिना देश एवं समाज का विकास अकल्पनीय है। आज लोकतन्त्र सबसे स्वीकार्य और बहस का विषय है, तो इसमें जो कमियाँ सामने आई हैं उन्हें सुधारना जरूरी है। इसकी कुलीनतन्त्रीय प्रकृति, जवाबदेही की कमी, जनता से अलगाव, महिलाओं तथा अन्य हाशिए के लोगों को निर्णय निर्माण से बाहर रखा जाना, प्रतिनिध्यात्मक लोकतन्त्र की सम्पूर्ण अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाता है। महिलाओं की समस्याओं का अनुचित उपचार और देश की मुख्य धारा से उनका अलग होना किसी भी लोकतान्त्रिक देश के लिए अच्छा संकेत नहीं है। सामाजिक, आर्थिक असमानता, जातीय वर्गीय एवं लैंगिक भेद, ऊँच-नीच की धारणा भारत को जकड़े हुए है। जहाँ महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा निम्न समझी जाती हैं तथा समाज में व्याप्त रूढ़ीवादी विचारधारा ने उन्हें उचित अवसर तथा उचित व्यवहार के अभाव में उनके विकास को बाधित किया तथा उनका दायरा परिवार तथा बच्चे पालने तक सीमित कर दिया गया। उनको शिक्षा, स्वास्थ्य मानकों की तथा सामान्य जागरूकता की पहुँच बहुत सीमित मात्रा में दी गई है, जो मुख्य रूप से उनके उपेक्षित होने के लिए जिम्मेदार है। यद्यपि वर्तमान युग आधी आबादी को निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में शामिल किये जाने के साथ-साथ शासन प्रशासन में सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए सर्वश्रेष्ठ समय है। जिससे वह अपनी समस्याओं और अपनी कठिनाईयों को दूर करने के लिए बेहतर ढंग से प्रयत्न कर सकतीं हैं। जब तक उन्हें व्यवस्था का हिस्सा नहीं बनाया जाता तब तक उनकी समस्या का समाधान मुश्किल होगा। हालांकि महिलाएँ स्थानीय निकायों से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक चुनावी गतिविधियों में अपनी सकारात्मक भूमिका दर्ज कर रही हैं लेकिन अभी भी देश और राज्य के विधायी निकायों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम है। 90 के दशक से मतदाताओं के रूप में महिलाओं की सहभागिता में वृद्धि हुई है। महिलाओं के मतदान में न सिर्फ राष्ट्रीय स्तर पर ही बल्कि राज्य विधानसभाओं में भी महिला मतदाताओं की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। जहाँ महिलाओं का मतदान प्रतिशत बढ़ा है उन राज्यों में महिलाओं एवं पुरुषों के मतदान व्यवहार में अन्तर भी देखने को मिला है, जिसका उदाहरण पश्चिम बंगाल का विधानसभा चुनाव 2021 और बिहार विधानसभा चुनाव 2020 है। महिला मतदाताओं की बढ़ती भूमिका के कारण केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा महिला केन्द्रित नीतियाँ बनाने पर विशेष बल दिया जाना शुरू किया गया है। जहाँ केन्द्र सरकार द्वारा महिलाओं के लिए कई योजनाओं का निर्माण किया गया, ताकि शहर के साथ-साथ गाँव की महिलाओं तक पहुँचा जा सके, जिसमें 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना', 'उज्ज्वला योजना', 'स्वच्छ भारत अभियान के तहत शौचालय का निर्माण' इत्यादि योजनाएँ प्रमुख हैं। इसी प्रकार राज्य सरकारों

द्वारा भी महिला मतदाताओं को ध्यान में रखकर विभिन्न योजनाओं को लागू किया गया, जैसे उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'मिशन शक्ति', केरल द्वारा 'आश्वासन निधि', दिल्ली द्वारा 'फ्री बस सेवा', पश्चिम बंगाल द्वारा 'कन्याश्री' तथा कर्नाटक द्वारा 'सन्थवाना' योजनाओं का शुभारम्भ किया गया। इसी प्रकार विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा भी महिला विंग को संगठित किया जा रहा है एवं चुनाव प्रचार में महिलाओं को महत्व दिया जा रहा है। उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव 2022 में कांग्रेस द्वारा 40 प्रतिशत महिलाओं को चुनाव में उम्मीदवार बनाने की घोषणा की गई तथा अभियान के दौरान 'पिंक मेनिफेस्टो' जारी करने के साथ साथ 'लड़की हूँ लड़ सकती हूँ' जैसे स्लोगन का प्रयोग किया गया।

सुझाव

राजनीतिक दल लोकतन्त्र के लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधन हैं और राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इसे अत्यधिक समावेशी और भागीदारीपूर्ण बनाया जाना चाहिए। राजनीतिक संगठनों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व एवं प्रवेश के लिए अधिक खुलापन होना चाहिए। यह खुलापन वैधानिक एवं कानूनी सुधार, स्वैच्छिक आन्तरिक सुधारों के माध्यम से अपने सम्बन्धित दलों में उनके समावेश को बढ़ाने के लिए कुछ सकारात्मक कदम उठा सकते हैं। वैश्विक स्तर पर विभिन्न देशों, जैसे - कम्बोडिया, ऑस्ट्रेलिया, मेक्सिको, अल-सल्वाडोर, मोरक्को इत्यादि देशों में महिलाओं के लिए आन्तरिक पार्टी कोटा प्रणाली की व्यवस्था की गई है तथा इन देशों में महिलाओं के सहभागिता पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा है (पांडे, 2023)। साथ ही, विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा ऐसे उपाय किए जाने चाहिए जिससे महिलाओं की उम्मीदवारी को नजरअन्दाज न किया जा सके। विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा महिला प्रतिनिधियों को चुनाव प्रचार तथा अन्य राजनीतिक गतिविधियों के लिए आर्थिक सहयोग दिया जाना चाहिए तथा महिला प्रतिनिधित्व वाली सीटों पर विशेष फंडिंग की व्यवस्था की जानी चाहिए। महिला प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए राजनीतिक दलों में महिलाओं के अनुकूल वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए तथा महिला उत्पीड़न से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के मामले पर तत्काल एवं सख्ती से कदम उठाए जाने चाहिए। प्रत्येक दल को एक निश्चित संख्या में महिलाओं को टिकट और विभागों का आवंटन पार्टी में उनकी स्थिति को मजबूत करेगा। राजनीतिक दलों के भीतर महिलाओं को परेशान करने वालों पर अंकुश लगाया जाए। राजनीतिक दलों द्वारा महिला नेताओं को अपने राजनीतिक समूह में अधिक से अधिक महिलाओं को जोड़ने की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। इसके लिए वे समुदाय स्तर पर महिलाओं के मुद्दों पर बातचीत कर सकती हैं, बैठकें कर सकती हैं, घर-घर जाकर महिलाओं को राजनीतिक रूप से जागरूक कर सकती हैं तथा उन्हें अपनी पार्टी के राजनीतिक एजेंट एवं उद्देश्यों को अधिक से अधिक महिलाओं तक पहुँचाने की कोशिश करनी चाहिए। वे महिलाएँ जो पहले से ही राजनीतिक पदों का आनन्द ले रही हैं, उन्हें पूरे महिला समुदाय का नेतृत्व करना चाहिए।

सन्दर्भ

अम्बेडकर, अवन्तिका एवं राज प्रतिभा (2024) 'राजनीति में दलित महिलाओं की भागीदारी : उत्तर प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' *राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा,* वर्ष 26, अंक 1, जनवरी-जून, पृ. 109-115.

एक्सप्रेस न्यूज सर्विस (2019) 'टेलिंग नम्बर्स : मोस्ट वूमेन डोन्ट सी पॉलिटिक्स एस करियर, फील मेन गेट परफ्रेंस', *दि इण्डियन एक्सप्रेस,* नवम्बर 14, जर्नलिज्म ऑफ करेज, न्यू दिल्ली.

इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, स्टैटिस्टिकल रिपोर्ट्स ऑफ जनरल इलेक्शन टू द लोक सभा 1952, 1957, 1962, 1967, 1971, 1977, 1980, 1985, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004, 2009, 2014, 2019.

इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, स्टैटिसटिकल रिपोर्ट्स आन लेजिसलेटिव असेम्बली इलेक्शंस ऑफ उत्तर प्रदेश 1951, 1957, 1962, 1967, 1974, 1977, 1980, 1985, 1989, 1991, 1993, 1996, 2002, 2007, 2012, 2017, 2022.

घोष, अम्बर कुमार (2022) 'विमेंस रिप्रेजेंटेशन इन इंडियास पार्लियामेंट : मेजरिंग प्रोग्रेस, एनालिसिस ऑब्सटेकस' *ओआरएफ, ऑकेशनल पेपर नम्बर-382,* नवम्बर, ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन.

कुमारी, अर्चना, वर्मा आर.के. (2010), *वूमेन पॉलीटिकल लीडरशिप इन इंडिया : सम इम्पॉर्टेंट डाइमेंशंस,* सीरियस पब्लिकेशंस, न्यू दिल्ली, पेज नम्बर-82-89.

कुमार, के अनिल एण्ड ज्योत्सना के यामिनी (दिसम्बर 2016), 'एम्पावरमेंट ऑफ वीमेन थ्रू पंचायती राज', *द इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस,* नम्बर-4, पेज नम्बर-437-444.

कल्याणी, के. (14 अप्रैल, 2024) 'आम्बेडकर को सिर्फ दलित प्रतीक मानना ठीक नहीं, भारतीय महिलाओं के प्रति उनके नारीवादी दृष्टिकोण को भी समझें', *दि प्रिन्ट.*

पांडे, शशिकान्त और उपाध्याय रंजना (दिसम्बर 2023), 'पॉलीटिकल पार्टीज एंड जेंडर सेंसटिविटी इन उत्तर प्रदेश', *मध्य प्रदेश जर्नल ऑफ सोशल साइंस,* वॉल्यूम-28, नम्बर-2, पेज नम्बर-15-32.

सिंह, दीपाली (नवेम्बर 2016), 'पॉलीटिकल पार्टिसिपेशन ऑफ वीमेन इन दि स्टेट ऑफ यू. पी.: एन एनालिटिकल स्टडी फॉर वूमेन स्टेटस इन पीआरआई' *वी.एस.आर.डी.आई.जे.टी-एन.टी.आर,* वॉल्यूम-75, पेज नम्बर-89-96.

सिंह, टिया (20 मार्च 2024), 'वूमेन'एस रिजर्वेशन एक्ट 2023: ए सिम्बॉलिक जेस्चर ऑर ए सिग्निफिकेंट स्ट्राइड टुवर्ड्स एम्पावरमेंट?', *इकोनामिक एंड पॉलीटिकल वीकली* (इंगेज).

सी.एस.डी.एस, लोकनीति. केएएस (2019) *वुमन एण्ड पॉलिटिक्स, चैन्जिंग ट्रेंड्स एण्ड ईमर्जिंग पेटर्न,* नई दिल्ली।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 73-86)
UGC-CARE (Group-I)

पुरुष प्रवासन और इसके बहुमुखी प्रभाव : घर पर रह गए परिवारों और प्रवासियों पर प्रभावों की एक व्यापक समीक्षा

विनय कुमार[*], संजय कुमार[†] एवं सच्चिदानन्द सिन्हा[‡]

प्रवासन एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसने सदियों से मानव इतिहास को आकार दिया है। आज तीव्रता के साथ परिवर्तित हो रहे वैश्विक परिदृश्य में, मानव प्रवास 21वीं सदी की एक प्रमुख विशेषता के रूप में उभरा है। जैसे-जैसे लोग नये अवसरों, सुरक्षा या बेहतर जीवन की तलाश में सीमाओं के पार दूसरे क्षेत्रों या देशों में जाते हैं तो प्रवास के प्रभाव प्रवासियों पर पड़ने वाले अन्य प्रभावों से कहीं अधिक आगे तक अपनी छाप छोड़ते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में विकासशील देशों में किये गये अनुसन्धान कार्यों की मदद से मुख्य रूप से रोजगार के लिए प्रवास पर गये प्रवासियों और घर पर रह गए सदस्यों पर प्रवास

[*]शोध छात्र, भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
E-mail: vinay7799@bhu.ac.in
[†]सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग (एमएमवी अनुभाग), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
E-mail: sanjaykumar@bhu.ac.in
[‡]प्रोफेसर, क्षेत्रीय विकास अध्ययन केन्द्र (सीएसआरडी), जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
E-mail: sachi57sinha@gmail.com

के प्रभावों के जटिल अन्तर्सम्बन्धों का गुणात्मक एवं विवरणात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्ष के रूप में जहाँ प्रवासियों को नये वातावरण में अनुकूलन, एकीकरण और पहचान परिवर्तन की चुनौतियों का एहसास होता है, वहीं घर पर रह गए परिवारों को आर्थिक, सामाजिक और भावनात्मक आदि परिणामों के अद्वितीय पहलुओं का सामना करना पड़ता है। प्रवासियों द्वारा घर भेजा गया धन परिवार की आजीविका के लिए पर्याप्त सहायता प्रदान करता है, लेकिन कुछ मामलों में चीजें विपरीत भी पाई जाती हैं।

बीज शब्द - प्रवासन, घर पर रह गए परिवार, प्रवासी, बाल श्रम, विकासशील देश।

भूमिका

प्रवासन शब्द लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने को सन्दर्भित करता है, जिसके अन्तर्गत अक्सर निवास स्थान में परिवर्तन को सम्मिलित किया जाता है। यह घटना मानव इतिहास का एक मौलिक पहलू रही है, जो समाजों, संस्कृतियों और अर्थव्यवस्थाओं को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रवासन के पीछे की प्रेरणाएँ विविध हैं और इसमें आर्थिक अवसर, राजनीतिक अस्थिरता, पर्यावरणीय परिवर्तन या व्यक्तिगत आकांक्षाओं जैसे अन्य कारकों को शामिल किया जाता है। प्रवास का इतिहास हजारों साल पुराना है, जिसमें मानव भोजन, आश्रय और अनुकूल जलवायुविक स्थिति की तलाश में पलायन किया करते थे। जैसे-जैसे समाज विकसित हुए, प्रवासन और अधिक संरचित हो गया, जो कि पहले सिर्फ व्यापार मार्गों, युद्धों में विजय और उपनिवेशीकरण जैसे कारकों से प्रभावित पाया जाता था। उदाहरण के लिए, सिल्क रोड ने पूर्व और पश्चिम के बीच सांस्कृतिक और आर्थिक आदान-प्रदान की सुविधा प्रदान की, जिससे अधिक दूरी पर लोगों की आवाजाही सम्भव हुई।

सम्पूर्ण विश्व इतिहास में, विभिन्न प्रकार की प्रवासन गतिविधियों का जन्म हुआ है। आन्तरिक प्रवासन में एक देश के भीतर ही प्रवास की गतिविधियों को शामिल किया जाता है, जो अक्सर आर्थिक कारकों या रोजगार के अवसरों में परिवर्तन से प्रेरित होता है। दूसरी ओर, अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन राष्ट्रीय सीमाओं को पार करने पर जोर देता है और आर्थिक सम्भावनाओं, राजनीतिक शरण या परिवार के पुनर्मिलन सहित अन्य विभिन्न कारकों से प्रेरित होता है। स्वैच्छिक प्रवास तब होता है जब व्यक्ति व्यक्तिगत कारणों से स्थानान्तरित होते हैं, जैसे कि बेहतर रोजगार या शिक्षा के उद्देश्य के लिए। श्रम प्रवासन एक सामान्य रूप है, जहाँ व्यक्ति विशिष्ट कौशल की माँग वाले क्षेत्रों या देशों में जाते हैं। यह वैश्वीकरण का एक महत्वपूर्ण चालक रहा है, जो विभिन्न देशों के समाजों एवं अर्थव्यवस्थाओं के परस्पर सम्बन्ध में योगदान देता है। शहरीकरण में भी आन्तरिक प्रवास का बहुत बड़ा योगदान पाया जाता है क्योंकि लोगों द्वारा बड़ी संख्या में बेहतर जीवन स्तर और रोजगार के अवसरों की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों के लिए प्रवास किया जाता है (भगत, आर.बी., 2018)।

प्रवासन की प्रक्रिया का मूल और गन्तव्य दोनों क्षेत्रों के साथ-साथ प्रवासियों पर बहुमुखी प्रभाव पड़ता है। आर्थिक रूप से, प्रवासन उद्योगों के लिए श्रम की आपूर्ति कर के

और कौशल अन्तराल को भरकर गन्तव्य क्षेत्रों के विकास में योगदान देता है। प्रवासियों द्वारा अपने गृह देशों में भेजा गया धन अक्सर आय के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में काम करता है और स्थानीय अर्थव्यवस्था के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सांस्कृतिक रूप से, प्रवासन विविध दृष्टिकोणों, परम्पराओं और भाषाओं को एक साथ लाकर समाजों को समृद्ध करता है। हालांकि, यह सांस्कृतिक तनाव और चुनौतियों को भी जन्म दे सकता है क्योंकि विभिन्न सामाजिक समूह कभी-कभी लोगों को अपने में एकीकृत करने की भावना रखते हैं (अब्राहम, आई., 2020)। सामाजिक रूप से, प्रवासन परिवारों और समुदायों को प्रभावित करता है एवं सामाजिक प्रक्रिया के प्राकृतिक विकास में व्यवधान भी पैदा करता है और सामाजिक संरचनाओं को बदल देता है (अब्राहम, आई., 2020)। व्यक्तिगत स्तर पर, प्रवासन व्यावसायिक विकास के अवसर प्रदान करता है एवं व्यक्तियों को नये अनुभवों और विचारों से रूबरू करवाता है।

प्रवासन गहराई से समाज को आकार देने का काम करता है और लाभ एवं चुनौतियों दोनों को जन्म देता है। प्रवासी आर्थिक रूप से कार्य बल विविधता में योगदान करते हैं, श्रम अन्तराल को भरते हैं, और नवाचार को प्रोत्साहित करते हैं (अश्विनी, डी. और शिवशंकर, भट, 2022)। गन्तव्य क्षेत्रों में सामाजिक सेवाओं, बुनियादी ढाँचे और आवास की समस्या एक आम चुनौती है। एक सकारात्मक विचार में, प्रवासन वैश्विक स्तर पर परस्पर सम्बन्ध को बढ़ावा देता है एवं ऐसे नेटवर्क विकसित करता है, जो व्यापार, ज्ञान विनिमय और सांस्कृतिक समझ को बढ़ाते हैं (फॉसेट, जे.टी., 1989)।

विकासशील देशों में, प्रवासन सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य को आकार देने वाली एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में कार्य करता है, जिसका ग्रामीण विकास और परिवार कल्याण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आन्तरिक प्रवासन अक्सर ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर घटित होता है, जो शहरीकरण में योगदान देता है और ग्रामीण आबादी को कम करता है। यह जन सांख्यिकीय परिवर्तन कृषि प्रथाओं और सामुदायिक संरचनाओं को प्रभावित करने का काम करता है (कियान, डब्ल्यू. एवं अन्य, 2016)। अन्तरराष्ट्रीय मोर्चे पर, विकासशील देशों से प्रवासन में ज्यादातर आर्थिक अवसरों, शिक्षा या विदेशों में शरण माँगने वाले व्यक्ति शामिल होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम की कमी कृषि उत्पादकता को प्रभावित करती है, जिससे कई विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की रीढ़ प्रभावित हो सकती है। लिंगानुपात की स्थिति बदल सकती है और परिवार के पुरुष सदस्यों की अनुपस्थिति में महिलाओं को बढ़ी हुई जिम्मेदारियाँ लेनी पड़ती हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य पीछे छूट गए परिवारों और प्रवासियों दोनों पर प्रवास के बहुमुखी प्रभावों की व्यापक रूप से जाँच करना है। अध्ययन के उद्देश्यों में प्रवासन के कारण परिवारों पर आर्थिक, सामाजिक और भावनात्मक प्रभावों का आंकलन करना एवं प्रवासियों

द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों और अवसरों को समझना और सफल एकीकरण को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान करना शामिल है।

आंकड़ों के स्रोत और अनुसन्धान विधियाँ

चूँकि इस शोध कार्य का प्राथमिक उद्देश्य घर पर रह गए परिवारों और प्रवासियों पर विशेष ध्यान देने के साथ प्रवासन के बहुआयामी प्रभावों की गहन और व्यापक समीक्षा करना है। इस हेतु द्वितीयक स्रोतों की सहायता ली गयी है। इस गुणात्मक शोध कार्य में मुख्य रूप से रोजगार के लिए प्रवास पर विशेष ध्यान दिया गया है एवं प्राप्त परिणामों का अध्ययन की विवरणात्मक विधि का प्रयोग करते हुए संश्लेषण एवं विश्लेषण किया गया है। क्योंकि इस महत्वपूर्ण विषय पर अधिक शोधकार्य नहीं हुए हैं, इसलिए महत्वपूर्ण या आवश्यक शोधकार्यों तक पहुँच बढ़ाने की आवश्यकता की पूर्ति के लिए विकासशील देशों में किए गए अध्ययनों का उपयोग कर साहित्य की समीक्षा की गई है।

परिणाम और विमर्श

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत जैसे विकासशील देशों में महिलाओं द्वारा विवाह के लिए किये जाने वाले प्रवास के बाद अधिकांश प्रवास कामकाजी आयु वर्ग के पुरुषों द्वारा रोजगार के लिए किया जाता है। ये अपने परिवार के सक्रिय पुरुष होते हैं, जो रोजमर्रा के पारिवारिक कार्यों के साथ-साथ बाहरी सांसारिक कार्यों जैसे घर की आर्थिक स्थिति सँभालने के लिए कोई नौकरी, खेती, बैंक से सम्बन्धित कार्य, महत्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ आदि कार्यों को भी पूरी तत्परता के साथ करते हैं। इस प्रकार यदि परिवार की यह महत्वपूर्ण कड़ी किसी कारणवश (इस अध्ययन में प्रवास) घर पर नहीं रहती है, तो पूरे परिवार की महत्वपूर्ण गतिविधियों में स्वत: ठहराव आ जाता है और कई अत्यन्त जरूरी जिम्मेदारियाँ परिवार के अन्य सदस्यों जैसे महिलाओं, बुजुर्गों और बच्चों पर आ जाती हैं। हालाँकि पुरुष प्रवासन के कई सकारात्मक प्रभाव, जैसे कि पुरुषों द्वारा भेजा गया धन कई महत्वपूर्ण पारिवारिक कार्यों को आसान बनाता है और दैनिक जीवन में आवश्यक वस्तुओं तक पहुँच को आसान बनाता है और नकारात्मक प्रभाव भी होते हैं (जैसे भावनात्मक और सामाजिक अलगाव, कार्य का अधिभार, अकेलापन आदि) जो कि कई युवा व्यक्तियों एवं घर पर रह गए सदस्यों दोनों पर देखने को मिलते हैं (गुयेन, टी.एल. एवं अन्य, 2006)। प्रस्तुत अध्ययन में पिछले शोध अध्ययनों का उपयोग करते हुए इन्हीं प्रभावों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

1. घर पर रह गए परिवारों पर पलायन का प्रभाव

प्रवासियों द्वारा समय-समय पर किया जाने वाला धनराशि प्रेषण उनके परिवार की आर्थिक बाधाओं को कम करने का काम करते हैं और इस प्रकार स्वास्थ्य, देखभाल और

शिक्षा पर खर्च बढ़ जाता हैं, जिससे स्रोत देश में परिवारों के जीवकोपार्जन में लम्बे समय तक सुधार देखा जाता है (माफोसा, एफ., 2007)। हालांकि, प्रवासी की अनुपस्थिति से घर पर रह गये सदस्यों पर नकारात्मक परिणाम भी होते हैं, चाहे वह बच्चे हों, बुजुर्ग हों, या पत्नियाँ (डेमर्गर, एस., 2015)। नीतिनिर्धारकों को प्रवासियों और उनके परिवारों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के अन्तर को ध्यान में रखने और शिक्षा एवं स्वास्थ्य देखभाल में समर्थन प्रणालियों को मजबूत करने की आवश्यकता है, ताकि प्रवास के नकारात्मक प्रभावों का सामना करने में परिवार सक्षम हो सके। देशों को ऐसे सहायक संस्थानों की स्थापना करने की आवश्यकता है, जो प्रवासी परिवारों को एक आर्थिक गतिशील सदस्य या देखभालकर्ता के नुकसान का सामना करने के लिए सहायता प्रदान कर सकते हैं (डेमर्गर, एस., 2015)।

केरल में जिन लोगों के परिवारों में सामान्यतः सामाजिक-आर्थिक उन्नति हो रही है, उनके घरों की गरीबी के निवारण में प्रवास का महत्वपूर्ण योगदान रहा है,जिसने कि किन्हीं अन्य कारकों, जैसे - समेकित कृषि सुधार, व्यापार संघ गतिविधियों और सामाजिक कल्याण विधाओं आदि से भी अधिक विकास में अपना योगदान दिया है (जकारिया, के.सी. एवं अन्य, 2001)। अध्ययन दिखाता है कि अब लगभग 15 लाख केरलवासी भारत के बाहर रहते हैं और वे वार्षिक रूप से 4 अरब रुपये से अधिक धनराशि घर भेजते हैं। अधिकांश परिवार आय के लिए अन्तर्निहित प्रवासी की कमाई पर निर्भर हैं, जो अस्तित्व, बच्चों की शिक्षा और अन्य आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रवास पर जाते हैं (जकारिया, के.सी. एवं अन्य, 2001)। प्रेषण का उपभोक्ता, निवेश (माफोसा, एफ., 2007) और आयात पर सकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिलता हैं एवं साथ ही साथ यह भी निकलकर आता है कि भेजी गयी धनराशि निजी उपभोक्ता पर सबसे बड़ा प्रभाव और निजी निवेश पर सबसे कम प्रभाव दर्शाते हैं (निशात, एम. और बिलग्रामी, एन., 1991)।

घर पर रह गई पत्नियों पर प्रभाव

जैसा कि हमने अब तक समझा है कि घर पर रह गए परिवारों पर प्रवास के प्रभावों को समझना बहुत जटिल काम है (कुमारी, के. एवं अन्य, 2022)। उसी कड़ी में घर पर रह गई महिलाओं को प्रवास के प्रभाव बहुत गहराई में जाकर प्रभावित करते हैं जिससे अलगाव का यह भावनात्मक पहलू महिलाओं में अकेलेपन और तनाव का कारण बनता है (कौसर, एस. एवं अन्य, 2014), जबकि प्रवासी पतियों से वित्तीय प्रेषण जीवन में स्थिरता प्रदान करता है (फाकिर, ए.एम.एस. और अबेदीन, एन., 2021)। ए.एम.एस. फाकिर और एन. अबेदीन, 2021 के अध्ययनों से पता चलता है कि पत्नियाँ अक्सर अधिक जिम्मेदारियों को उठाती हैं, घरों का प्रबन्धन करती हैं, बच्चों का अकेले पालन-पोषण करती हैं और सम्पत्ति का स्वामित्व रखती हैं, लेकिन उनकी सुविधा एवं जरूरत के अनुसार उन सम्पत्तियों के उपयोग के लिए एक महिला की निर्णय लेने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण सकारात्मक बदलाव नहीं देखने को मिलता है। हालांकि पुरुषों के बाह्य प्रवास से घरेलू खर्चों पर महिलाओं द्वारा निर्णय लेने की

क्षमता में सुधार होता है, जिससे उन्हें सशक्तीकरण के साथ-साथ शारीरिक गतिशीलता की स्वतन्त्रता भी मिलती है और उनको अपनी क्षमता के आंकलन का अवसर प्राप्त होता है (सिंह, एन.पी. एवं अन्य, 2011)।

एक जीवनसाथी की अनुपस्थिति भावनात्मक कल्याण को प्रभावित करती है और वैवाहिक सम्बन्धों को तनाव देती है (रॉय, ए.के. और नांगिया, पी., 2005)। सामाजिक रूप से, कभी-कभी पत्नियों को कलंक या अलगाव का सामना करना पड़ता है (उल्लाह, ए.के. एम.ए., 2017)। हालांकि, प्रवासन व्यक्तिगत विकास और स्वतन्त्रता के अवसर प्रदान करके महिलाओं को सशक्त बनाने का भी कार्य करता है (कौर, ए.पी., 2022)। एक अध्ययन में (उल्लाह, ए.के.एम.ए., 2017) ने पाया है कि जब कोई पुरुष सदस्य प्रवास करता है तो घर पर रह गए भाई-बहनों, बड़ों और बच्चों की देखभाल करने की पूरी जिम्मेदारी पत्नियों के कन्धों पर होती है। इससे न केवल महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है, बल्कि कई कार्यों को करने के लिए उनके कौशल विकास में वृद्धि पायी जाती है और उन्हें निर्णय लेने की स्वतन्त्रता का भी आनन्द मिलता है और उस स्वतन्त्रता ने उन्हें सशक्त बनाने में योगदान दिया है (याबिकु, एस.टी. एवं अन्य, 2010)।

ए.के. रॉय और पी. नांगिया ने बिहार में किये गए अपने अध्ययन में पाया है कि विशेष रूप से गरीबी और संकट की स्थितियों में, प्रवास के दौरान होने वाले सामाजिक सम्बन्धों और पारिवारिक जीवन में व्यवधान, यौन संचारित संक्रमणों (एसटीआई) का खतरा बढ़ाते हैं क्योंकि कई प्रवासियों को गन्तव्य पर नये यौन साथी मिलते हैं जिससे ऐसे प्रवासी यौन संचारित संक्रमण के वाहक बन जाते हैं और जब वे अपने घरों में जाते हैं तो अपनी पत्नियों को ऐसे संक्रमणों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाते हैं। सरकारों को प्रवासियों और उनके घर पर रह गए परिवारों के स्वास्थ्य और कल्याण को राष्ट्रीय प्राथमिकता के एजेंडे के रूप में लेना चाहिए क्योंकि दोनों समूह अपने भारी कार्य तनाव के कारण कई मानसिक और शारीरिक बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं या इसका खतरा बढ़ जाता है (थापा, एन. एवं अन्य, 2019)। जो महिलाएँ घर पर रह जाती हैं, उनका स्वास्थ्य गैर-प्रवासियों की पत्नियों की तुलना में कम अच्छा पाया जाता है क्योंकि इन नकारात्मक स्वास्थ्य के कारणों में कुछ सीमा तक प्रवासी पतियों द्वारा भेजा गया कम प्रेषण भी जिम्मेदार पाया जाता है (महारजन, ए. एवं अन्य, 2012)। सभी प्रभाव संचार, समर्थन नेटवर्क और अलगाव की अवधि जैसे कारकों पर निर्भर करतें हैं, जो पत्नियों के व्यवहार और अनुकूलन को प्रभावित करते हैं (ली, एल. और देसाई, एस., 2021)। वियतनाम में, प्रवासी भेजने वाले लगभग एक तिहाई परिवारों को प्रेषण प्राप्त नहीं होता है, यही कारण है कि पारिवारिक आय पर प्रवासन का कुल प्रभाव कम देखने को मिलता है, हालांकि अन्तर्राष्ट्रीय प्रेषण वियतनाम में प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति व्यय बढ़ाने में मदद करता है (कुओंग, एन.वी. और लिन्ह, वी.एच., 2018)। प्रवास के इस प्रकार के नकारात्मक नतीजों के कारण, आजकल महिलाएँ अक्सर अपने पुरुष साथी के साथ प्रवास करने के लिए प्रेरित हो रही हैं।

घर पर रह गए बच्चों पर प्रभाव

विशेष रूप से जब प्रवासी पिता होता है तो घर पर रह गए बच्चों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। पिता की अनुपस्थिति से बच्चों में भावनात्मक संकट, व्यवहार परिवर्तन और अकादमिक प्रदर्शन में चुनौतियाँ देखने को मिलती हैं (एंटमैन, एफ.एम., 2012)। पाकिस्तान में एस. कौसर और एस. रहमान (2014) द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि प्रवासी पिता की सन्तानें शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं के अधिक अवसरों तक पहुँच प्राप्त करते हैं। लेकिन पिता का आश्रय न मिलने के कारण बच्चों को कई भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है और यही इन बच्चों के व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाता है। पिता बच्चों के जीवन में एक प्राथमिक भूमिका निभाते हैं, इसलिए उनकी अनुपस्थिति घर पर रह गए बच्चों के लिए स्कूल की उपस्थिति को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है (जियानेली, जी.सी. और मांगियावाची,एल., 2010)। वहीं माल्डोवा में हुए एक अध्ययन से पता चलता है कि प्रवास घर पर रह गए बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य व्यय को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

चीन में झाओ, क्यू. एवं अन्य द्वारा 2014 में किये गये एक अध्ययन से पता चलता है कि चीन की घरेलू पंजीकरण प्रणाली (हुकोउ) के सख्त नियमों के कारण, प्रवासी माता-पिता (80 प्रतिशत से अधिक) चाहकर भी अपने बच्चों को अपने साथ नहीं ले जा पाते हैं। वर्तमान अध्ययन में, यह सामने आया है कि माता-पिता (दोनों लोगों या उनमें से एक) के ग्रामीण-शहरी प्रवास का बच्चों की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है क्योंकि प्रवासी माता-पिता के बच्चों के गणित के अंक गैर-प्रवासी माता-पिता के बच्चों की तुलना में 15.60 प्रतिशत कम पाए जाते हैं। बाई, वाई. एवं अन्य सहयोगियों द्वारा 2018 में किये गये एक अध्ययन में चीन के उत्तर-पश्चिमी भाग में अपेक्षाकृत कम विकसित और कम श्रम निर्यात करने वाले प्रान्त में पाया गया कि माता-पिता के प्रवास का बच्चों के स्कूल के प्रदर्शन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है (क्योंकि इस अध्ययन में गैर-प्रवासी माता-पिता के बच्चों की तुलना में बच्चों ने अंग्रेजी विषय में अच्छा स्कोर किया)। चीन में ही किये गये एक अध्ययन से पता चलता है की माता-पिता का प्रवास बच्चों के लिए कृषि और घरेलू कार्यों में बिताये जाने वाले समय को बढ़ाता है, वहीं माता-पिता के प्रवास के कारण बच्चों में लिंग विभाजित प्रभाव भी देखने को मिलता है, जिसमें लड़कों की तुलना में लड़कियों के लिए काम का समय बढ़ता हुआ पाया गया (चांग, एच. एवं अन्य, 2011)।

फिलीपींस में किए गए अध्ययन से पता चलता है कि बच्चों पर प्रवास के प्रभाव कई परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं, जैसे कि यदि बच्चे के पिता प्रवास पर हैं तो परिवार के अन्य सदस्यों एवं रिश्तेदारों की बच्चों की देखभाल में भूमिका नहीं के बराबर पाई गई (यानी पूरी जिम्मेदारी माता द्वारा निभाई गई), वहीं अगर माता प्रवास पर है तो घर के सदस्यों एवं रिश्तेदारों द्वारा बच्चों की देखभाल की भूमिका में 60 प्रतिशत तक की वृद्धि पाई गई और जब माता एवं पिता दोनों प्रवास पर थे तो यह भूमिका 90 प्रतिशत तक पहुँच गई (बकर, सी.अल,

2009)। सर्वे से प्राप्त परिणाम दिखाते हैं कि बच्चों पर माँ की अनुपस्थिति में सबसे अधिक नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलते हैं। कुल मिलाकर यदि माँ बच्चों के साथ घर में रहती है तो काफी हद तक बच्चों पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है (फेलमेथ, जी., 2018)।

परिणाम दिखाते हैं कि बच्चों को सुविधा और लाभ प्रदान करने के मूल उद्देश्य के बावजूद, माता-पिता का प्रवास बच्चों के मनोवैज्ञानिक कल्याण में चुनौतियों का कारण बनता है, जिसका मुख्य कारण माता-पिता की अनुपस्थिति के फलस्वरूप उत्पन्न देखभाल की कमी पायी गयी है एवं माता-पिता के प्रवास के फलस्वरूप उत्पन्न हुए इन नकारात्मक प्रभावों को किन्हीं अन्य कारकों, जैसे कि माता-पिता के तलाक, गरीबी और दादा-दादी द्वारा की जाने वाली देखभाल में कमी आदि के द्वारा और बढाया भी जा सकता है (झाओ, सी. एवं अन्य, 2018)। बच्चों के कल्याण के सम्बन्ध में होने वाली चिन्ताएँ कुछ प्रवासियों को उनके प्रवास के निर्णय में परिवर्तन लाने का कार्य करतीं हैं और उन्हें स्थायी रूप से घर लौटने का निर्णय लेने पर मजबूर करती हैं (झाओ, सी. एवं अन्य, 2018)। बच्चे परित्याग जैसी भावनाओं से ग्रसित हो सकते हैं और उनके सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों में व्यवधान का अनुभव कर सकते हैं। इसलिए, हम इस निष्कर्ष पर जा सकते हैं कि प्रेषण के माध्यम से प्रवासी पिता द्वारा प्रदान की गई वित्तीय सहायता बच्चों के लिए आर्थिक पक्ष को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है, लेकिन भावनात्मक पहलू के लिए पूरी तरह से क्षतिपूर्ति नहीं कर सकती है। इस प्रकार घर पर रह गए बच्चों के भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक विकास पर सम्भावित प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए पर्याप्त जरूरी नीतियों और संचार चैनलों पर काम करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

घर पर रह गए बुजुर्गों पर प्रभाव

घर पर रह गए बुजुर्ग लोगों पर प्रवास के प्रभाव अक्सर जटिल होते हैं। चीन में स्वास्थ्य और पोषण सर्वेक्षण के आधार पर, बहुपक्षीय विश्लेषण दिखाता है कि परिवार के सदस्यों में युवा पुरुषों के प्रवास पर चले जाने पर बचे हुए वृद्ध जनों में कृषि और घरेलू काम पर बिताया जाने वाला समय बढ़ता है और इससे भी आगे प्रवास का चौंकाने वाला लिंग विभाजित प्रभाव होता है, जिसमें बूढ़े पुरुषों के मुकाबले बूढ़ी महिलाओं के लिए काम का समय बढ़ता हुआ पाया गया है (चांग, एच. एवं अन्य, 2011)। पलायन करने वाले परिवार के सदस्यों में भावनात्मक सहयोग की अनुपस्थिति भी बुजुर्गों में अलगाव और अकेलेपन की भावनाओं को जन्म देती है (झूओ, वाई. और लिआंग, जेड., 2015)। वे दैनिक कार्यों में कई चुनौतियों का सामना करते हैं और सामाजिक सम्बन्धों में गिरावट का अनुभव करते हैं। हालांकि, कुछ लोगों को सामाजिक लचीलापन और सामुदायिक समर्थन प्राप्त होता है, जिससे उन्हें जरूरत के समय उचित सहयोग प्राप्त हो जाता है (हे, सी. और ये, जे., 2014)। कुछ मामलों में, छोटे परिवार के सदस्यों की अनुपस्थिति बुजुर्गों के स्वास्थ्य के मुद्दों को बढ़ाती है

(घिमिरे, एस. एवं अन्य, 2018)। मैक्सिको में किया गया अध्ययन एक साक्ष्य सुझाता है कि यदि किसी परिवार का एक व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रवास करता है तो यह उम्रदराज माता-पिता की बदहाल स्वास्थ्य की सम्भावना को बढ़ा देता है और यह स्थिति उनकी स्व-मूल्यांकित स्वास्थ्य स्थिति, मोटापा, अकेलापन और अवसाद को संकेतक के रूप में लेते हुए मापी गयी है (एंटमैन, एफ.एम., 2015)।

चीन में किए गए एक शोध से पता चलता है कि वृद्धजनों के ऊपर पड़ने वाले प्रवास के प्रभाव विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं, जैसे - यदि किसी परिवार के सिर्फ बुजुर्ग पति या पत्नी घर पर रह जाते हैं तो प्रवास इन व्यक्तियों पर सबसे ज्यादा नकारात्मक प्रभाव डालता है। वहीं जो लोग अपने जीवनसाथी के साथ रहते हैं, वे उन लोगों की तुलना में मनोवैज्ञानिक रूप से बेहतर स्थिति में दिखाई देते हैं, जो अपने बच्चों के साथ रहते हैं, लेकिन जीवनसाथी के बिना रहते हैं (कोनेली, आर. और मौरर-फाजियो, एम., 2016)। चीन के ग्रामीण बुजुर्गों के लिए कुछ चिन्ताएँ पूर्वानुमानित हैं। बुजुर्ग होने जा रहे लोगों की अगली पीढ़ी की कम प्रजनन दर ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक सुरक्षा जाल में और अधिक समस्या की ओर संकेत देती हुई दिखाई देती है। यह अनुमान लगाया गया है कि अगले बीस वर्षों में 'गाँव में अकेले और बिना बच्चों के' बुजुर्गों की संख्या में बढ़ोत्तरी देखने को मिलेगी (कोनेली, आर. और मौरर-फाजियो, एम., 2016)।

अपने परिवार को धन भेजना आर्थिक बाधाओं को कम करने और घर पर रह गए लोगों के स्वास्थ्य और कल्याण को बेहतर बनाने का एक सरल तरीका है। फिर भी गैर-प्रवासी, विशेष रूप से बुजुर्ग, प्राथमिक देखभाल करने वाले की व्यक्ति की अनुपस्थिति में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का सामना करते हैं। प्रवासियों और घर पर रह गए बुजुर्गों को उनकी उम्र के साथ-साथ उनके लिंग के आधार पर आंका जाता है (गोपीनाथ, आर. और पूर्णप्रिया, टी., 2020)। प्रवास में बिताए गए समय की लम्बाई भी एक महत्वपूर्ण कारक है। प्रवासियों द्वारा भेजे गए धन से घर पर रह गए बुजुर्गों के स्वास्थ्य और पोषण में सुधार हो सकता है, लेकिन कुछ मामलों में, प्रवासी सदस्यों के अपने परिवारों से सम्बन्ध खराब होते हैं तो वित्तीय सहायता में कमी देखने को मिलती है (गोपीनाथ, आर. और पूर्णप्रिया, टी., 2020)। अफ्रीकी और एशियाई देशों की वृद्ध आबादी की देखभाल ज्यादातर उनके अपने बच्चे करते हैं, और इस प्रकार की देखभाल की कमी से उनके सामाजिक सम्बन्धों और रिश्तों पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। घर पर रह गए बुजुर्गों की स्वास्थ्य देखभाल में वृद्धि देखने को मिलती है, लेकिन शारीरिक सहायता की कमी पायी गयी है, जिससे उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और वे उदासी और चिन्ता के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं (गोपीनाथ, आर. और पूर्णप्रिया, टी., 2020)। हालांकि स्थानीय संस्कृति और स्थितियों के अनुसार, ये प्रभाव अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग हो सकते हैं।

समग्र प्रभाव कई अन्य कारकों पर निर्भर करते हैं, जैसे कि पारिवारिक सम्बन्धों की निकटता, जनसमर्थन प्रणाली, और बदलते परिवार की गतिशीलता के अनुकूल होने की

क्षमता, बुजुर्गों के भावनात्मक और शारीरिक कल्याण को प्रभावित करती है। वृद्ध आबादी की समस्याओं से निपटने के लिए नीति निर्माताओं के सामने बहुत काम करने बाकी हैं। वृद्ध आबादी पर प्रवास के प्रभाव से सम्बन्धित बढ़ती चिन्ता के कारण, यह आवश्यक है कि पीछे छूटी वरिष्ठ आबादी पर प्रवास के वास्तविक प्रभाव का अध्ययन विशेष रूप से क्षेत्रीय, व्यवहारिक और सांस्कृतिक प्रतिरूप के सम्बन्ध में किया जाए। इससे हमें वृद्ध आबादी पर प्रवास के सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य प्रभावों की जाँच करने का मौका मिलेगा और सरकार एवं नीति निर्माता इससे निपटने और प्रवास से जुड़ी स्वास्थ्य-सम्बन्धी एवं सामाजिक लागतों की भरपाई करने के लिए सर्वोत्तम सम्भव नीतियाँ तैयार करने में सक्षम होंगे।

2. प्रवासियों पर पलायन का प्रभाव

प्रवासन न केवल घर पर रह रहे सदस्यों को प्रभावित करता है, बल्कि प्रवासियों पर भी इसके कई सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। केरल में हुए एक अध्ययन से पता चलता है कि केरल के लगभग तीन-चौथाई पूर्व प्रवासी वापस आ गए हैं और अब वे अधिकांशत: बचत के पैसों, काम अनुभव, और विदेश में प्राप्त की गई कौशल से जीवन जीते हैं (जकारिया, के.सी. एवं अन्य, 2001)। चीन में आन्तरिक प्रवासियों पर (झेंग, जी. एवं अन्य, 2022) किए गए अध्ययन से पता चलता है कि क्षेत्रीय सामाजिक एकीकरण के व्यापक स्तर के कारण सांस्कृतिक आदान-प्रदान नहीं हो पाता है, जिससे लोगों को दूर (एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में) जाने में मुश्किल होती है जिससे स्थानीय लोगों के साथ तालमेल बिठाने में समस्या होती है और उनकी खुशियाँ प्रभावित होती है। यह देखा गया है कि प्रवासी स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं के उपलब्ध होने पर भी इनका इष्टतम उपयोग नहीं कर पाते हैं और व्यक्तिगत सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ताओं के बारे में कम जागरूक होते हैं, जिससे ज्ञान की कमी के चलते बुनियादी स्वास्थ्य निवारक उपायों का अभ्यास नहीं कर पाते हैं (विरूपक्ष, एच.जी. एवं अन्य, 2014)। स्वास्थ्य को बढ़ावा देने या बीमारी को रोकने वाली सेवाएँ भाषाई या सांस्कृतिक बाधाओं के कारण सुलभ या स्वीकार्य नहीं हो पाती हैं, क्योंकि वे प्रवासियों के विभिन्न जोखिमों और उनको जरूरतमन्द के रूप में पहचान सकने में विफल रहती हैं और साथ ही साथ सामाजिक असमानताएँ, अलगाव और गरीबी आदि कारण प्रवासियों (खासकर अनियमित प्रवासियों) की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच भी सीमित होती हैं (फ्लेशमैन, वाई. एवं अन्य, 2015)।

विरूपक्ष, एच.जी. एवं अन्य द्वारा 2014 में प्रवास और मानसिक स्वास्थ्य पर किए गए शोध का दावा है कि अधिकांश समय प्रवास मानसिक स्वास्थ्य जटिलताओं को विकसित करने के लिए एक संवेदनशील कारक है। अपने लोगों से दूर रहने की भावना और असुरक्षा प्रवासियों के बीच तनाव की स्थिति पैदा करती है, जिससे कई अन्य प्रकार की मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ जन्म ले लेती हैं। ऐसे में प्रवासियों के मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी विकारों के समुचित उपचार के लिए गन्तव्य पर आसानी से सुलभ

और सस्ती सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए और यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि सुविधा समावेशी हो और सभी संस्कृतियों के लिए उपयुक्त एवं सभी सामाजिक समूहों के लोगों के लिए समान रूप से सुलभ हो। यदि आवश्यक हो, तो संस्कृति-विशिष्ट उनकी आवश्यकताओं और विश्वासों के आधार पर भी अति आवश्यक स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रवासन गहराई से समाज को आकार देता है और लाभ एवं चुनौतियाँ दोनों लाता है। सांस्कृतिक रूप से, यह विभिन्न दृष्टिकोणों, परम्पराओं और भाषाओं के साथ समुदायों को समृद्ध करता है। विकासशील देशों में, प्रवासन सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य को आकार देने वाली एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में कार्य करता है, जिसका ग्रामीण विकास और परिवार कल्याण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आन्तरिक प्रवासन अक्सर ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर किया जाता है, जो शहरीकरण में योगदान देता है और ग्रामीण आबादी को कम करता है। यह जनसांख्यिकीय परिवर्तन कृषि प्रथाओं और सामुदायिक संरचनाओं को प्रभावित करता है जो कि सम्भावित रूप से समग्र ग्रामीण विकास में बाधा डाल सकता है। प्रवास स्थान से कामकाजी उम्र के व्यक्तियों का प्रस्थान कभी-कभी स्थानीय स्तर पर चुनौतियाँ पैदा कर सकता है, हालाँकि प्रवासियों द्वारा भेजे जाने वाले धन के माध्यम से स्थानीय स्तर पर आर्थिक विकास में पर्याप्त योगदान मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम की कमी कृषि उत्पादकता को प्रभावित कर सकती है, जिससे कई विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की रीढ़ प्रभावित हो सकती है। लिंगानुपात की स्थिति बदल सकती है एवं परिवार के पुरुष सदस्यों की अनुपस्थिति में महिलाओं को बढ़ी हुई जिम्मेदारियाँ लेनी पड़ती हैं जिसका उनके मानसिक एवं भावात्मक स्तर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। विकासशील देशों में प्रवासन के सकारात्मक प्रभावों का उपयोग करने के लिए व्यापक नीतियाँ होनी चाहिए, जो कृषि स्थिरता, सामाजिक कल्याण और लिंग समानता, समग्र ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने और बेहतर परिवार कल्याण जैसी चुनौतियों का समाधान करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँ। प्रवासन की गतिशीलता को समझकर, सरकारें ऐसी रणनीति विकसित कर सकती हैं जो स्थानीय स्तर पर आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के साथ-साथ, सामाजिक कल्याण को बढ़ाती हों, और ग्रामीण आबादी से सम्बन्धित चुनौतियों का समाधान करती हैं। इस प्रकार के अध्ययन मानवीय चिन्ताओं को दूर करने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

सन्दर्भ

अब्राहम, आई. (2020) 'होस्ट कम्युनिटीज एंड रिफ्यूजीज इन साउथ ईस्ट एशिया : रिपोर्ट ऑन अ वर्कशॉप हेल्ड एट द नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर (एनयुएस)', 10-11 मई 2019. *सोजर्न : जर्नल ऑफ सोशल इश्यूज इन साउथ ईस्ट एशिया,* 35(1), 178-196. https://www.jstor.org/stable/26883625

अश्विनी, डी. एवं भट, शिवशंकर (2022) 'रिव्यू ऑफ लिटरेचर रिलेटेड टू लेबर माइग्रेशन : टाइप्स, कॉजेज, एंड इम्पैक्ट्स', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट, टेक्नोलॉजी एंड सोशल साइंसेज,* 191-224।

एंटमैन, एफ.एम. (2012). द इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेशन ऑन फैमिली लेफ्ट बिहाइंड. आइजेअडिस्कशन पेपर, https://dx.doi.org/10.2139/ssrn.2015190

एंटमैन, एफ.एम. (2015). हाउ डज इंटरनेशनल माइग्रेशन अफेक्ट द हेल्थ ऑफ एल्डरली पैरेंट्स लेफ्ट बिहाइंड? एविडेंस फ्रॉम मेक्सिको. https://api.semanticscholar.org/Corpus ID:195810576

उल्लाह, ए.के.एम.ए. (2017). 'मेल माइग्रेशन एंड 'लेफ्ट-बिहाइंड' वुमेन : बेन ऑर बून?', *एन्वायरनमेंट एंड अर्बनाइजेशन एशिया,* 8(1), 59-73. https://doi.org/10.1177/0975425316683862

कॉनेली, आर. एवं मौरर-फाजियो, एम. (2016). लेफ्ट बिहाइंड, एट-रिस्क, एंड वल्नरेबल एल्डर्स इन रूरल चाइना. *चाइना इकनॉमिक रिव्यू,* 37, 140-153. https://doi.org/10.1016/j.chieco.2015.10.005

कियान, डब्ल्यू., वांग, डी. एंड झेंग, एल. (2016). द इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेशन ऑन एग्रीकल्चरल रीस्ट्रक्चरिंग : एविडेंस फ्रॉम जियांग्शी प्रोविंस इन चाइना. *जर्नल ऑफ रूरल स्टडीज,* 47, 542-551. https://doi.org/10.1016/j.jrurstud.2016.07.024

कुमारी, के., सिंह, के.एम. एंड अहमद, एन. (2022). इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेशन ऑन वुमेन इम्पावरमेंट : अ सिचुएशनल एनालिसिस ऑफ नॉर्थ-बिहार. *इंडियन जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन,* 58(1), 101-105. https://doi.org/10.48165/ijee.2022.58123

कूओंग, एन.वी. एंड लिन्ह, वी. एच. (2018). द इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेशन एंड रेमिटेंस ऑन हाउसहोल्ड वेलफेयर : एविडेंस फ्रॉम वियतनाम. *जर्नल ऑफ इंटरनेशनल माइग्रेशन एंड इंटीग्रेशन,* 19(4), 945-963. https://doi.org/10.1007/s12134-018-0571-3

कौर, ए.पी. (2022). माइग्रेशन अ रोड टू एम्पावरमेंट?एजेंसी, रिसोर्सेस, एंड द लेफ्ट बिहाइंड वुमेन इन पंजाब, इंडिया. *एशियन जर्नल ऑफ वीमेन्स स्टडीज,* 28(2), 167-185. https://doi.org/10.1080/12259276.2022.2052595

कौसर, एस., रहमान, एस. एंड रहमान, च.ए. (2014). मेल माइग्रेशन एंड प्रब्लेम्स फेस बाई द फैमिली लेफ्ट बिहाइंड. *इंटरनेशनल जर्नल फॉर इनोवेसन एजुकेशन एंड रिसर्च,* 2(7), 61-72. https://doi.org/10.31686/ijier.vol2.iss7.209

गासमैन, एफ., सिगल, एम., वैनोर, एम. एंड वाइडलर, जे. (2013). द इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेशन ऑन चिल्ड्रेन लेफ्ट बिहाइंड इन मोल्डोवा. युएनयु-मेरिट वर्किंग पेपर सीरीज. http://mgsog.merit.unu.edu

गोपीनाथ, आर. एंड पूर्णप्रिया, टी. (2020). फाइनेंसियल इफेक्ट ऑन द लेफ्ट बिहाइंड एल्दरली पेरेंट्स ड्यू टू माइग्रेशन. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट (आइजेएम),* 11(11), 11-11. https://doi.org/10.34218/IJM.11.11.2020.298

घिमिरे, एस., सिंह, डी.आर., नाथ, डी., जेफर्स, ई.एम. एंड काफ्ले, एम. (2018). एडल्ट चिल्ड्रन्स माइग्रेशन एंड वेल बीइंग ऑफ़ लेफ्ट बिहाइंड नेपाली एल्दरली पेरेंट्स. *जर्नल ऑफ एपिडेमियोलॉजी एंड ग्लोबल हेल्थ,* 8(3-4), 154. https://doi.org/10.1016/j.jegh.2018.07.004

चांग, एच., डोंग, एक्स. युआन एंड मैकफेल, एफ. (2011). लेबर माइग्रेशन एंड टाइम यूज पैटर्न्स ऑफ द लेफ्ट-बिहाइंड चिल्ड्रेन एंड एल्डरली इन रूरल चाइना. *वर्ल्ड डेवलपमेंट,* 39(12), 2199-2210.

जकारिया, के.सी., मैथ्यू, ई.टी. एंड इरुदया राजन, एस. (2001). इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेशन ऑन केरल्स इकोनॉमी एंड सोसाइटी. 'इंटरनेशनल माइग्रेशन', 39(1), 63-87. https://doi.org/10.1111/1468-2435.00135

झाओ, सी., वांग, एफ., झोउ, एक्स., जियांग, एम. एंड हेस्केथ, टी. (2018). इम्पैक्ट ऑफ पेरेंटल माइग्रेशन ऑन साइकोसोशल वेल-बीइंग ऑफ चिल्ड्रेन लेफ्ट बिहाइंड : अ क्वालिटेटिव स्टडी इन रूरल चाइना. *इंटरनेशनल जर्नल फॉर इक्विटी इन हेल्थ,* 17(1). https://doi.org/10.1186/s12939-018-0795-z

झाओ, क्यू., यू, एक्स., वांग, एक्स. एंड ग्लॉबेन, टी. (2014). द इम्पैक्ट ऑफ पेरेंटल माइग्रेशन ऑन चिल्ड्रेन'स स्कूल परफॉर्मेंस इन रूरल चाइना. *चाइना इकोनॉमिक रिव्यू,* 31, 43-54. https://doi.org/10.1016/j.chieco.2014.07.013

झुओ, वाय. एंड लियांग, जेड. (2015). माइग्रेशन एंड वेलबीइंग ऑफ द एल्डरली इन रूरल चाइना. इन हैंडबुक ऑफ चाइनीज माइग्रेशन : आइडेंटिटी एंड वेलबीइंग (पृष्ठ 126-147). डे ग्रूटर. https://doi.org/10.4337/9781783476640.00013

झेंग, जी., यांग, डी. एंड ली, जे. (2022). डज माइग्रेशन डिस्टेंस अफेक्ट हैपिनेस? एविडेंस फ्रॉम इंटरनल माइग्रेंट्स इन चाइना. फ्रंटियर्स इन पब्लिक हेल्थ, 10. https://doi.org/10.3389/fpubh.2022.913553

डेमर्गर, एस. (2015). माइग्रेशन एंड फैमिलीज लेफ्ट बिहाइंड. आइजेअवर्ल्ड ऑफ लेबर. https://doi.org/10.15185/izawol.144

थापा, डी.के. (2021). इम्पैक्ट ऑफ एडल्ट चिल्ड्रन्स माइग्रेशन ऑन द मेंटल हेल्थ एंड क्वालिटी ऑफ लाइफ ऑफ ओल्डर पेरेंट्स लेफ्ट बिहाइंड इन नेपाल. यूनिवर्सिटी ऑफ तस्मानिया. थीसिस. https://doi.org/10.25959/100.00037930

थापा, डी.के., विसेंटिन, डी., कोर्नहेबर, आर. एंड क्लियरी, एम. (2018). माइग्रेशन ऑफ एडल्ट चिल्ड्रन एंड मेंटल हेल्थ ऑफ ओल्डर पेरेंट्स 'लेफ्ट बिहाइंड' : एन इंटीग्रेटिव रिव्यू. पीएलओएस वन, 13(10). https://doi.org/10.1371/journal.pone.0205665

थापा, एन., पौडेल, एम., गुरगाईं, ए.एम., थापा, पी., पूरी, आर., थापा, पी., आर्यल, के.के., पौडेल, बी. के., थापा, आर. एंड स्ट्रे-पेडर्सन, बी. (2019). स्टेटस ऑफ माइग्रेशन एंड सोशियो-रेप्रोडक्टिव इम्पैक्ट्स ऑन माइग्रेंट्स एंड देयर फैमिलीज लेफ्ट बिहाइंड इन नेपाल. *माइग्रेशन एंड डेवलपमेंट,* 8(3), 394-417. https://doi.org/10.1080/21632324.2019.1567097

गुएन, टी.एल., येह, बी.एस.ए. एंड टोयोटा, एम. (2006). माइग्रेशन एंड द वेल-बिंग ऑफ द ष्लेफ्ट बिहाइंडष इन एशिया : की थीम्स एंड ट्रेंड्स. *एशियन पॉप्युलेशन स्टडीज* (वॉल्यूम 2, इशू 1, पृ. 37-44). https://doi.org/10.1080/17441730600700507

निशात, एम. एंड बिलग्रामी, एन. (1991). द इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेंट वर्कर्स रेमिटेंसेज ऑन पाकिस्तान इकॉनॉमी. *पाकिस्तान इकोनॉमिक एंड सोशल रिव्यू,* वॉल्यूम 29, नम्बर 1, पृष्ठ 21-41.

फाकिर, ए.एम.एस. एंड आबेदिन, एन. (2021). एम्पावर्ड बाय एब्सेंस : डज मेल आउट-माइग्रेशन एम्पावर फीमेल हाउसहोल्ड हेड्स लेफ्ट बिहाइंड? *जर्नल ऑफ इंटरनेशनल माइग्रेशन एंड इंटीग्रेशन,* 22(2), 503-527. https://doi.org/10.1007/s12134-019-00754-0

फॉसेट, जे.टी. (1989). नेटवर्क्स, लिंकेजेस, एंड माइग्रेशन सिस्टम्स. *द इंटरनेशनल माइग्रेशन रिव्यू,* 23(3), 671-680. https://doi.org/10.2307/2546434

फेल्मेथ, जी., रोज-क्लार्क, के., झाओ, सी., बसरट, एल.के., झेंग, वाई., मसाजा, ए., सोनमेज, एच., एडर, बी., ब्लेविट, ए., लर्टग्राई, डब्ल्यू., ऑर्कट, एम., रिची, के., मोहम्मद-अहमद, ओ., बर्न्स, आर., क्नीपे, डी., हार्ग्रेव्स, एस., हेस्केथ, टी., ओपोंडो, सी. एंड देवकुमार, डी. (2018). हेल्थ इम्पैक्ट्स ऑफ पैरेंटल माइग्रेशन ऑन लेफ्ट-बिहाइंड चिल्ड्रन एंड एडोलसेंट्स : ए सिस्टमैटिक रिव्यू एंड मेटा-एनालिसिस. *द लैंसेट,* 392(10164), 2567-2582. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(18)32558-3

फ्लेशमैन, वाई., विलन, एस.एस., डेविडोविच, एन. एंड मोर, जेड. (2015). माइग्रेशन ऐज ए सोशल डेटरमिनेंट ऑफ हेल्थ फॉर इर्रेगुलर माइग्रेंट्स : इजराइल ऐज केस स्टडी. *सोशल साइंस एंड मेडिसिन,* 147, 89-97. https://doi.org/10.1016/j.socscimed.2015.10.046

बाई, वाई., झांग, एल., लियू, सी., शी, वाई., मो, डी. एंड रोजेले, एस. (2018). इफेक्ट ऑफ पैरेंटल माइग्रेशन ऑन द एकेडमिक परफॉर्मेंस ऑफ लेफ्ट बिहाइंड चिल्ड्रन इन नॉर्थ वेस्टर्न चाइना. *जर्नल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज,* 54(7), 1154-1170. https://doi.org/10.1080/00220388.2017.1333108

भगत, आर.बी. (2018). डेवलपमेंट इम्पैक्ट्स ऑफ माइग्रेशन एंड अर्बनाइजेशन. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (ईपीडब्लू),* दिसम्बर (वॉल्यूम 8).

मफोसा, एफ. (2007). रेमिटेंसेज एंड डेवलपमेंट : द इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेशन टू साउथ पार्कर ऑन रूरल लाइवलीहुड्स इन सदर्न जिम्बाब्वे. *डेवलपमेंट सदर्न अफ्रीका,* 24(1), 123-136. https://doi.org/10.1080/03768350601165942

यबिकु, एस.टी., अगाडजानियन, वी. एंड सेवोयान, ए. (2010). हस्बैंड्स' लेबर माइग्रेशन एंड वाइव्स' ऑटोनॉमी, मोजाम्बिक 2000-2006. *पॉपुलेशन स्टडीज,* 64(3), 293-306. https://doi.org/10.1080/00324728.2010.510200

रॉय, ए.के. एंड नांगिया, पी. (2005). इम्पैक्ट ऑफ मेल आउट-माइग्रेशन ऑन हेल्थ स्टेटस ऑफ लेफ्ट बिहाइंड वाइव्स - ए स्टडी ऑफ बिहार, इंडिया. http://www.who.int/about/definition/en/

रॉय, ए.के., सिंह, पी., रॉय, उ., उत्तर प्रदेश, ई. एंड प्रोफेसर, ए. (2015). इम्पैक्ट ऑफ रूरल-अरबन लेबर माइग्रेशन ऑन एजुकेशन ऑफ चिल्ड्रन : ए केस स्टडी ऑफ लेफ्ट बिहाइंड एंड अकोम्पनीड माइग्रेंट चिल्ड्रन इन इंडिया. स्पेस एंड कल्चर.

ली, एल. एंड देसाई, एस. (2021). मेल आउट-माइग्रेशन एंड द हेल्थ ऑफ लेफ्ट-बिहाइंड वाइव्स इन इंडिया: द रोल्स ऑफ रेमिटेंसेज, हाउसहोल्ड रिस्पॉन्सिबिलिटीज एंड ऑटोनॉमी. *सोशल साइंस एंड मेडिसिन,* 280. https://doi.org/10.1016/j.socscimed.2021.113982

ली, एक्स. एंड सन, एक्स. (2020). चाइल्ड डेवलपमेंट इन रूरल चाइना : डज पैरेंटल माइग्रेशन मैटर? *चिल्ड्रेन एंड यूथ सर्विसेज रिव्यू,* 119. https://doi.org/10.1016/j.childyouth.2020.105654

वाइडलर, जे., वैनोर, एम., गैसमैन, एफ. एंड सीगल, एम. (2017). 'डज इट मैटर व्हेयर द चिल्ड्रन आर? द वेलबीइंग ऑफ एल्डरली पीपल 'लेफ्ट बिहाइंड' बाय माइग्रेंट चिल्ड्रेन इन मोल्दोवा'. *एजिंग एंड सोसाइटी,* 37(3), 607-632. https://doi.org/10.1017/S0144686X15001385

विरूपक्ष, एच.जी., कुमार, ए. एंड निर्मला, बी.पी. (2014). 'माइग्रेशन एंड मेंटल हेल्थ : एन इंटरफेस'. *जर्नल ऑफ नेचुरल साइंस, बायोलॉजी एंड मेडिसिन,* 5(2), 233-239. https://doi.org/10.4103/0976-9668.136141

सिंह, एन.पी., सिंह, आर.पी., कुमार, आर., पडारिया, आर.एन., सिंह, ए. एंड वर्गीज, एन. (2011). 'लेबर माइग्रेशन इन इंडो-गैंगेटिक प्लेन्स : डिटर्मिनेंट्स एंड इम्पैक्ट्स ऑन सोशियो-इकोनॉमिक वेलफेयर'. *एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स रिसर्च रिव्यू,* 24(347-2016-16978), 449-458.

ही, सी. एंड ये, जे. (2014). 'लोनली सनसेट्स : इम्पैक्ट्स ऑफ रूरल-अर्बन माइग्रेशन ऑन द लेफ्ट-बिहाइंड एल्देरली इन रूरल चाइना'. *पॉपुलेशन, स्पेस एंड प्लेस,* 20(4), 352-369. https://doi.org/10.1002/psp.1829

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 87-99)
UGC-CARE (Group-I)

मतदान व्यवहार अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण - सैद्धान्तिक विश्लेषण

राकेश कुमार* एवं विकास तिवारी†

चुनाव लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था में एक निर्णायक भूमिका निभाते हैं, इसलिए नागरिकों का मतदान व्यवहार अधिक महत्व रखता है। क्योंकि यह व्यवहार ही प्रतिनिधि लोकतन्त्र में सत्ता मिलने या खोने का निर्धारण करता है, इसलिए मतदान व्यवहार को सभी राजनीतिक अभ्यासों का केन्द्र बिन्दु माना जाता है। मतदान व्यवहार अब अध्ययन के क्षेत्र में स्वतन्त्र विषय के रूप में देखा जाता है। सामाजिक दबावों, आर्थिक लाभ, मनोवैज्ञानिक सुझावों और सबसे बढ़कर, चुनाव अभियान के प्रभाव ने मतदान के निर्णय लेने की प्रक्रिया को एक व्यापक रूप से जटिल गतिविधि बना दिया है। मतदान को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक मतदान व्यवहार का निर्माण करते हैं, जिसका अध्ययन करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों को अपनाया जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य उन दृष्टिकोणों को समझना है जिसके तहत मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र

*शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
E-mail: rickey48590@gmail.com
†शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
E-mail: vikasssbbau@gmail.com

के लिए विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है। शोधपत्र में मतदान व्यवहार और इसके सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों पर चर्चा की गई है। जिसमें मतदान व्यवहार का अध्ययन करने के विभिन्न दृष्टिकोणों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

बीज शब्द - मतदान व्यवहार, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त, एथनोग्राफिक दृष्टिकोण।

प्रस्तावना

एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोगों को उन उम्मीदवारों को वोट देने का संवैधानिक अधिकार है, जो उन पर शासन करते हैं, कानून बनाते हैं, और सरकार को नियन्त्रित करते हैं। कुछ राज्यों और देशों में लोग 'पहल' और 'जनमत संग्रह' के माध्यम से सार्वजनिक मुद्दों पर सीधे मतदान कर सकते हैं और 'रिकाल' के माध्यम से अधिकारियों को हटा सकते हैं। मतदान एक कर्तव्य के साथ-साथ लोगों का अधिकार भी है। मतदाता सरकार के लोकतान्त्रिक स्वरूप के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अधिकांश आधुनिक लोकतन्त्रों में सार्वभौमिक मताधिकार को अपनाया जाता है जहाँ देश के सभी वयस्क नागरिकों को वोट देने का अधिकार प्रदान किया जाता है। मतदान एक ऐसी गतिविधि है जो लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी को इंगित करती है। मतदान गतिविधि की विधि मतपत्र में किसी स्थान पर क्रॉस लगाने या मशीन का एक बटन दबाने जैसा सरल कार्य प्रतीत हो सकता है, लेकिन जब इसे निर्णय लेने की प्रक्रिया के रूप में देखते है तो यह जटिल और महत्वपूर्ण दृष्टिकोण माना जाता है।

मतदान व्यवहार को राजनीति विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र के रूप में माना जाता है, जिसका अध्ययन वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप से किया जा सकता है। परम्परावादी मुख्य रूप से संस्थानों, संगठनों आदि के व्यवहार और कार्यों के अध्ययन से सम्बन्धित थे। उन्होंने अन्य सामाजिक और भौतिक विज्ञानों से प्राप्त मॉडलों, तकनीकों और विधियों की मदद से व्यक्तियों के राजनीतिक व्यवहार का विश्लेषण करना शुरू किया। मतदान व्यवहार या चुनावी व्यवहार न केवल राजनीतिक व्यवहार बल्कि राजनीतिक भागीदारी के साथ भी निकटता से जुड़ा हुआ है। परन्तु यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण है कि राजनीतिक व्यवहार और राजनीतिक भागीदारी का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है जबकि चुनावी व्यवहार उनका एक हिस्सा है। राजनीतिक भागीदारी में राजनीतिक चर्चा, निर्णय लेने में भागीदारी आदि शामिल हैं। राजनीतिक व्यवहार एक विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में होता है। यह सामाजिक संरचना, आर्थिक विकास और ऐतिहासिक कारकों से प्रभावित होता है। लोकतन्त्र में चुनावी व्यवहार का अध्ययन और भी आवश्यक हो जाता है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य मतदान व्यवहार को अध्ययन करने के विभिन्न दृष्टिकोणों का सैद्धान्तिक विवेचन करना एवं मतदान व्यवहार अध्ययन के महत्त्व को समझना है। शोध के लिए द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है, जिन्हें मुख्य रूप से शोध पुस्तकें, पत्रिकाएँ, लेख तथा वेबसाइट इत्यादि से प्राप्त किया गया है तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है।

मतदान व्यवहार

किसी भी लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में नियमित चुनाव का होना एक आम प्रक्रिया होती हैं। भारत के सन्दर्भ में भी यह पूरी तरह से सच है, जहाँ चुनाव नियमित रूप से होते रहते हैं। सरकार का संघीय रूप होने के कारण जहाँ चुनाव न सिर्फ राष्ट्रीय स्तर पर सरकार चुनने के लिए होते हैं बल्कि राज्य की विधानसभाओं के लिए भी नियमित रूप से चुनाव होते रहते हैं। 1992 में 73वें और 74वें सवैधानिक संशोधन के पश्चात् भारतीय लोकतन्त्र का विकेन्द्रीकरण हुआ है तथा अब स्थानीय स्तर पर भी पंचायतों, नगर पालिकाओं, जिला परिषदों इत्यादि के लिए चुनाव होते हैं। प्रत्येक वर्ष किसी न किसी राज्य विधानसभा में और स्थानीय स्तर पर चुनाव की प्रक्रिया को अपनाया जा रहा होता है। हाल के वर्षों में हुए विधानसभा और लोकसभा के चुनाव भारत में बढ़ती मतदाताओं की भागीदारी का संकेत देते हैं। चुनावी रैलियों, कार्यक्रमों में बढ़ती जनता की भागीदारी भी अतीत की तुलना में अब राजनीति में लोगों की बढ़ती रुचि का संकेत है। मतदान व्यवहार का अध्ययन सिर्फ मतदान के आँकड़ों को एकत्रित करना या चुनावी बदलाव की गणना करना नहीं होता है बल्कि इसका अर्थ इससे कही आगे व्यक्तिगत मनोविज्ञान, धारणा और भावनाओं का उनके वोट के निर्णय, उनकी राजनीतिक क्रिया और उसका चुनावों पर क्या प्रभाव है, उसका विश्लेषण है। मतदान व्यवहार के अध्ययन में मतदाताओं के मतदान के निर्णय और इरादों का विश्लेषण भी शामिल है। मतदाताओं के वोट देने के निर्णय तथा उन्होंने किस दल के पक्ष में मतदान किया है? वह कौन-कौन से मुद्दे हैं जिस आधार पर मतदाता मतदान का निर्णय करता है? तथा मतदाता सत्तारूढ़ दल से कितना सन्तुष्ट है, इसका अध्ययन भी मतदान व्यवहार के अध्ययन में शामिल है।

चुनाव किसी भी लोकतान्त्रिक देश में राजनीतिक सहभागिता की सबसे बुनियादी और प्रमुख रूप से दिखाई देने वाली गतिविधि है। दुनिया भर के शोधार्थियों तथा चुनावी विश्लेषक, मतदाताओं के मतदान व्यवहार को समझने का प्रयास करते हैं। चुनावी अध्ययन का अर्थ साधारणतया मतदान प्रतिरूप और रुझान को मतदाताओं की राय और दृष्टिकोण के आधार पर पता लगाना है। चुनाव अध्ययन का उद्देश्य केवल चुनाव के दौरान होने वाली घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करना नहीं है। बल्कि मतदाताओं की राय और प्रतिक्रिया के आधार पर चुनाव की विशेष घटनाओं को वैज्ञानिक आधार पर समझना है। मतदान व्यवहार

का अध्ययन कई विधिक कारणों से किया जाता है, परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य मतदान प्रतिरूप को समझना है तथा यह समझना है कि मतदाता क्यों अपने मत का प्रयोग करते हैं अथवा नहीं करते हैं। मतदाता किन कारणों से अथवा किस मुद्दे पर यह तय करते है कि वह किस पार्टी को अपना वोट देंगे या नहीं देंगे। मतदान व्यवहार के अध्ययन में यह भी समझा जाता है कि एक समुदाय को एक विशेष चुनाव में कौन से मुद्दे प्रभावित करते हैं अथवा नहीं करते हैं और इसी चुनाव में किसी दूसरे समुदाय को कौन से मुद्दे प्रभावित कर रहे हैं या नहीं।

मतदान व्यवहार अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण

मतदान किसी व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार का केवल एक पहलू है। ज्यादातर लोगों के लिए मतदाता की भूमिका कम महत्वपूर्ण होती है। मतदान को सामान्य रूप से सामान्य व्यवहार के रूप में ही देखा जाता है, परन्तु व्यक्ति की इस सीमित राजनीतिक गतिविधि ने एक बड़े साहित्य को जन्म दिया है। मतदाता और मतदान व्यवहार की ही कई दृष्टिकोण से व्याख्या की जा सकती है, जिनमें मुख्यत: तीन दृष्टिकोण प्रमुख हैं - सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण सामाजिक चरों पर ध्यान केन्द्रित करता है, जैसे - वर्ग, आयु इत्यादि प्रमुख कारकों को ध्यान में रखते हुए अध्ययन किया जाता है। यह दृष्टिकोण तब उत्पन्न होगा जब राजनीतिक दलों के पास एक स्थिर समूह आधार होगा। यह दृष्टिकोण इस बात की पुष्टि करता है कि मतदाता उस दल को चुनते हैं जो उन सामाजिक समूहों का समर्थन करते हैं, जिससे वह वोट डालने के लिए सम्बन्धित है। वहीं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मतदाता के पार्टी पसन्द और पार्टी पहचान इत्यादि कारकों पर केन्द्रित दृष्टिकोण है अर्थात् यह दृष्टिकोण मानता है कि मतदाता अपनी पसन्द की पार्टी का समर्थन करता हैं यानि जिस पार्टी को प्राथमिकता दी गई है वह वही पार्टी है जिसके साथ उसकी मनोवैज्ञानिक रूप से पहचान की जाती है। तीसरा महत्वपूर्ण दृष्टिकोण आर्थिक है, इसकी मुख्य अवधारणा यह है कि मतदाता तर्कसंगत व्यवहार करते हैं, क्योंकि वह उस पार्टी को चुनने का निर्णय लेते हैं जो उन्हें अन्य सभी दलों की तुलना में अधिक लाभ प्रदान करेगी।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

मतदान व्यवहार को अध्ययन करने का पहला निर्णय पॉल लाजर्सफेल्ड के द्वारा अपने सहयोगियों के साथ 1939 में लिया गया, जहाँ 1940 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में मतदान व्यवहार का व्यवस्थित अध्ययन करने की योजना बनायी गई। सर्वेक्षण विधि पर आधारित अध्ययन के द्वारा मतदाताओं को प्रभावित करने वाले कारकों को समझा गया। अपने अध्ययन को इन्होने 'द पीपल्स चॉइस : हाउ द वोटर मेक अप हिज माइंड इन ए प्रेसिडेंशियल कैम्पेन' नामक पुस्तक में विस्तृत रूप से प्रदर्शित किया। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के एप्लाइड ब्यूरो ऑफ सोशल रिसर्च के विद्वानों द्वारा किए गए अध्ययन से अन्तत: मतदान व्यवहार के समाजशास्त्रीय मॉडल का उदय हुआ, जिसे मतदान व्यवहार के कोलम्बिया मॉडल

के नाम से जाना जाता है। इस मॉडल की मूल धारणाओं को तीन कार्यों के माध्यम से समझाया गया है - (1) 'द पीपल्स चॉइस : हाउ द वोटर मेक अप हिज माइंड इन ए प्रेसिडेंशियल कैम्पेन' (लाजर्सफेल्ड, पी., बेरेलसन, बी. और गौडेट, एच., 1948), (2) वोटिंग : ए स्टडी ऑफ ओपन फॉर्मेशन इन ए प्रेसिडेंशियल कैम्पेन' (बेरेलसन, बी., लाजर्सफेल्ड, पी., और मैकफी, डब्ल्यू., 1963), (3) पर्सनल इन्फ्लुएंस : द पार्ट प्लेइंग बाय पीपल इन द फ्लो ऑफ मास कम्युनिकेशन (कैट्ज, ई., लाजर्सफेल्ड, पी.एफ. और रोपर, ई., 1955)।

मतदान व्यवहार का यह सिद्धान्त व्यक्ति और व्यक्ति के आसपास की सामाजिक संरचना पर केन्द्रित है। इस प्रकार यह वोटों को सामाजिक सन्दर्भ में रखता है और फिर सामाजिक वर्ग, धर्म, राष्ट्रवाद, भाषा तथा ग्रामीण-शहरी विभाजनों जैसे चरों के प्रभाव का अध्ययन करता है। कोलम्बिया के इन शोधकर्ताओं द्वारा 600 मतदाताओं के एक पैनल का चयन किया गया तथा इस पैनल का चुनाव से पूर्व सात बार साक्षात्कार लिया गया। इस अध्ययन का एक मुख्य लक्ष्य मतदाताओं के निर्णय लेने की प्रक्रिया पर जनसंचार के माध्यमों के प्रभाव का पता लगाना था। शोधकर्ताओं ने पाया की 600 चयनित प्रतिदर्श में से 546 मतदाताओं के द्वारा चुनावी अभियान शुरू होने से पहले ही अपने मत का निर्णय लिया जा चुका था। इसी कारण अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा बाहरी कारकों और मतदाताओं पर प्राथमिक समूहों के प्रभाव को समझने के लिए जोर दिया गया। शोधकर्ताओं ने पाया कि मतदाता के मत का निर्णय सामाजिक ताकतों द्वारा निर्धारित होता है, जिस समूह से व्यक्तिगत तौर पर मतदाता अपनी पहचान रखता है वह उसी समूह से प्रभावित होकर अपने मतदान का निर्णय लेता है। इस परिकल्पना के विपरीत कि मतदान के निर्णय मतदाताओं के व्यक्तित्व और मीडिया से प्रभावित थे, शोध दल ने पाया कि जिन सामाजिक समूहों से मतदाता सम्बन्धित थे, उन्होंने मतदाताओं की निर्णय लेने की प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाई (एंट्यून्स, 2010)।

समाजशास्त्रीय मॉडल के अनुसार, जीवन के प्रारम्भिक चरण में प्राप्त मूल्य और मापदंड जीवन भर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं तथा मतदाताओं द्वारा उनके समाजीकरण के हिस्से के रूप में पक्षपात सीखा जाता है और राजनीतिक समाजीकरण से मतदान के फैसले भी बहुत प्रभावित होते हैं। सामाजिक अन्तर राजनीतिक अन्तर में परिवर्तित हो जाते हैं क्योंकि प्रत्येक सामाजिक समूह के अपनी जरूरतों के आधार पर अपने हित होते हैं और उनके हितों में यह अन्तर उनके पक्षपात को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। चूंकि विभिन्न वर्गों के सामाजिक सम्बन्ध शायद ही कभी अपनी सामाजिक स्थिति से आगे जाते हैं, इसलिए वे राजनीतिक दलों का समर्थन करते हैं जो उनके विशिष्ट हितों की रक्षा करते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

चुनावी अध्ययन में अगला महत्वपूर्ण विकास मिशिगन विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं की एक टीम ने किया। मिशिगन विश्वविद्यालय के विद्वानों के एक समूह ने

कोलम्बिया मॉडल की आलोचना करते हुए मतदान व्यवहार का एक वैकल्पिक मॉडल विकसित किया, जिसे मतदान व्यवहार के मिशिगन मॉडल के रूप में जाना जाता है (विसर, 1994)। मतदान व्यवहार का यह मॉडल मिशिगन विश्वविद्यालय के सर्वे रिसर्च सेंटर (एसआरसी) में कैम्पबेल, कान, मिलर, कन्वर्स और स्टोक्स जैसे शोधकर्ताओं द्वारा किए गए 1948, 1952 और 1956 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों के अध्ययन के परिणामस्वरूप विकसित किया गया था। इन अध्ययनों के निष्कर्षों को 'द पीपल इलेक्ट ए प्रेसिडेंट', 'द वोटर डिसाइड' और 'द अमेरिकन वोटर' जैसी प्रसिद्ध पुस्तकों के रूप में संकलित किया गया।

मनोवैज्ञानिक मॉडल मतदान व्यवहार के निर्धारकों के रूप में राजनीतिक कारकों पर ध्यान केन्द्रित करता है क्योंकि यह मतदान के निर्णयों को मतदाताओं की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों जैसे उनकी पार्टी की पहचान और उम्मीदवारों के प्रति दृष्टिकोण आदि से जोड़ता है। मनोवैज्ञानिक मॉडल छह मनोवैज्ञानिक कारकों की पहचान करता है जो मतदाताओं के निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते हैं। ये कारक हैं - (1) पार्टी की पहचान, (2) मुद्दों से सम्बन्धित, (3) उम्मीदवारों के लिए व्यक्तिगत लगाव, (4) समूह मानकों के अनुरूप, (5) प्रभावकारिता की भावना, और (6) मतदान करने के लिए नागरिक दायित्व की भावना। इन छह कारकों में से, पार्टी की पहचान, उम्मीदवार, और मुद्दे के अभिविन्यास को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। पार्टी की पहचान का अर्थ है किसी विशिष्ट राजनीतिक दल के साथ किसी व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक लगाव। मुद्दे के अभिविन्यास का मतलब चुनाव अभियान के दौरान हाइलाइट किए गए मुद्दों के प्रति मतदाता का रवैया है, जबकि उम्मीदवार अभिविन्यास का अर्थ है, किसी विशेष उम्मीदवार के व्यक्तिगत गुणों और प्रदर्शन के प्रति मतदाताओं का दृष्टिकोण (महसूद एवं अमिन, 2020)।

मनोवैज्ञानिक मॉडल, सामाजिक कारकों के महत्व को स्वीकार करते हुए, तर्क देता है कि लोगों के सामाजिक विशेषताओं में परिवर्तन होता है जो बहुत धीरे-धीरे और लम्बी अवधि में होता है, लेकिन मतदान प्रतिरूप में परिवर्तन एक चुनाव से दूसरे चुनाव में होते हैं। इस मॉडल के अनुसार, थोड़े समय के भीतर चुनाव परिणामों में होने वाले इन उतार-चढ़ाव के लिए सामाजिक कारकों को जिम्मेदार नहीं समझा जा सकता है, जो उस समय के दौरान लगभग समान रहते हैं जब मतदान प्रतिरूप में भारी उतार-चढ़ाव होता है। इस प्रकार, मनोवैज्ञानिक मॉडल मतदान के रुझान में इस बदलाव को राजनीतिक कारकों जैसे मुद्दों और उम्मीदवारों के चयन के रूप में देखता है, जो थोड़े समय में बदलते रहते हैं। अत: मनोवैज्ञानिक मॉडल के अनुसार मुद्दों, उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों के बारे में मतदाताओं का दृष्टिकोण ऐसे कारक हैं जो बाद में मतदाताओं की पसन्द की भविष्यवाणी करते हैं तथा मतदाताओं के पक्षपात की तीव्रता, उम्मीदवारों के उनके मूल्यांकन और मुद्दों पर स्थिति उनके मतदान निर्णय को निर्धारित करते हैं।

पक्षपात

इस मॉडल का केन्द्रीय विषय पक्षपात या पार्टी की पहचान है। पार्टी की पहचान राजनीतिक दलों के साथ वह स्थायी लगाव है, जो राजनीतिक समाजीकरण के शुरूआती चरणों में विकसित होता है। इस मॉडल के अनुसार, पार्टी की पहचान किसी भी राजनीतिक दल के साथ मनोवैज्ञानिक लगाव की भावना है, जैसे किसी के सामाजिक वर्ग, धार्मिक या नस्लीय समूह के साथ लगाव की भावना होती है। पार्टी सम्बद्धता, धार्मिक सम्बद्धता की तरह ही अक्सर परिवार के भीतर उत्पन्न होती है, जो सहकर्मियों और साथियों के दृष्टिकोण और मूल्यों से भी प्रभावित होती है। मिशिगन विश्वविद्यालय में कैम्पबेल और उनके सहयोगियों के शब्दों में, पार्टी की पहचान का अर्थ है - "व्यक्तिगत लगाव की भावना जो व्यक्ति अपनी पसन्द की पार्टी के प्रति महसूस करता है"। इसके अनुसार, बिना उम्मीदवारों या विशिष्ट चुनावों में मुद्दों पर ध्यान दिए बिना भी मतदाताओं का राजनीतिक दलों के साथ एक लम्बा जुड़ाव रहता है। मतदाता कभी-कभी अपनी पार्टियों से अलग हो सकते हैं और अन्य उम्मीदवारों को वोट दे सकते हैं लेकिन आमतौर पर वे उस पार्टी में लौट आते हैं जिसके साथ वे लगाव की भावना महसूस करते हैं। इस प्रकार, पक्षपात पहचान की एक विधा के रूप में आगे बढ़ता है, लोगों के प्रारम्भिक समाजीकरण में अन्तर्निहित होता है और एक साथ राजनीतिक दृष्टिकोण की अवधारणात्मक स्क्रीन के रूप में कार्य करता है।

तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त

मतदान व्यवहार का तीसरा और मुख्य मॉडल तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त है जो आर्थिक सन्दर्भ में व्यक्तियों के मतदान व्यवहार को समझाने की कोशिश करता है। यह मॉडल दावा करता है कि व्यक्तियों का मतदान व्यवहार लागत-लाभ विश्लेषण का परिणाम है। यह तर्क देता है कि मतदाता, वोट डालने से पहले, विभिन्न राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों द्वारा समर्थित मुद्दों और नीतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते है। मतदान व्यवहार के लिए आर्थिक दृष्टिकोण 1960 से लोकप्रिय हुआ, जिसे अक्सर मतदान व्यवहार के स्थानिक सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है। इस दृष्टिकोण की अन्य मुख्य धारणा यह है कि मतदाता तर्कसंगत होते हैं क्योंकि वे उस पार्टी को चुनने का निर्णय लेते हैं जो उन्हें अन्य सभी दलों की तुलना में अधिक लाभ प्रदान करेगी। यह दृष्टिकोण एंथनी डाउन्स के मौलिक कार्य से उपजा है।

चुनावी अध्ययन में तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त के सबसे प्रभावशाली विद्वान, अर्थशास्त्री एंथनी डाउन्स, डंकन ब्लैक और केनेथ एरो को माना जाता है। एंथनी डाउन्स की पुस्तक 'एन इकोनॉमिक थ्योरी ऑफ डेमोक्रेसी' को तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त के आधार पर मतदान व्यवहार के अध्ययन के लिए प्रमुख कार्य माना जाता है। इस पुस्तक में, डाउन्स का तर्क है कि मतदाता उम्मीदवारों और उनके चुनावी प्लेटफार्मों का आकलन करेंगे और पार्टी द्वारा किए गए वादों के आधार पर वोट देंगे। इस मॉडल के समर्थकों का तर्क है कि मतदाता

अपनी आर्थिक स्थिति और राजनीतिक दलों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए हर चुनाव के दौरान राजनीतिक दलों के साथ अपनी सम्बद्धता को समायोजित करते हैं, जबकि यह आगे दावा करता है कि मतदाता उन पार्टियों और उम्मीदवारों को वोट देते हैं जिनकी नीतिगत स्थिति मतदाताओं के सबसे करीब होती है। इस प्रकार, मतदाता किसी पार्टी या उम्मीदवार को वोट देने का निर्णय लेते समय अपने हितों को ध्यान में रखते हैं और ये हित व्यक्तिगत या परिवार, वर्ग या समूह आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं।

इस मॉडल का आधार यह है कि यदि बाजार के कामकाज को तर्कसंगत विकल्प मान्यताओं के साथ समझाया जा सकता है तो उन्हें राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या के लिए भी लागू किया जा सकता है। सिद्धान्त एक ओर उपभोक्ताओं और मतदाताओं के बीच, जबकि दूसरी ओर, उद्यमों और राजनीतिक दलों के बीच एक सादृश्य स्थापित करता है। यह तर्क देता है कि जैसे उद्यम जो लाभ को अधिकतम करना चाहते हैं और उपभोक्ता जो अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना चाहते हैं, राजनीतिक दल चुनावी लाभ को अधिकतम करने के लिए संघर्ष करते हैं और मतदाता अपने वोट की उपयोगिता को अधिकतम करना चाहते हैं (एंट्यून्स, 2010)। डाउंस ने इस बात को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है -

"हमारा मुख्य सिद्धान्त यह है कि लोकतान्त्रिक राजनीति में पार्टियाँ, अर्थव्यवस्था में उद्यमियों के अनुरूप होती हैं। इसलिए, राजनीतिक दल मानते हैं कि अपने निजी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, जो भी नीतियाँ बनाई हैं उनसे वे सबसे अधिक वोट प्राप्त करेंगे, ठीक उसी तरह जैसे उद्यमी उन उत्पादों का उत्पादन करते हैं जिन्हें वे मानते हैं कि उसी कारण से सबसे अधिक लाभ प्राप्त होगा। इस अभिधारणा के निहितार्थों की जाँच करने के लिए, हमने माना है कि नागरिक राजनीति में तर्कसंगत व्यवहार करते हैं।"

डाउन्स आगे तर्क देते हैं कि न तो राजनीतिक दल और न ही मतदाता विचारधाराओं में रुचि रखते हैं। उनके अनुसार, विचारधाराएँ, पार्टियों के लिए, वोट पाने का साधन हैं, जबकि मतदाताओं के लिए, विचारधाराएँ राजनीतिक सूचनाओं की लागत को कम करने का साधन हैं (डाउन्स, 1957)।

सामरिक मतदान

मतदाता तर्कसंगत अभिनेता होते हैं, इसलिए वे हमेशा उस उम्मीदवार को वोट नहीं देते जिसे वे सबसे अधिक पसन्द करते हैं। कभी-कभी, वे रणनीतिक मतदान के लिए जाते हैं, जिसका अर्थ है कि वे उस पार्टी को वोट देते हैं जो उनकी पसन्दीदा नहीं है, लेकिन इसके लिए मतदान करने से उनकी प्राथमिकता के लिए बेहतर परिणाम मिलते हैं। उदाहरण के लिए, कोई क्षेत्रीय पार्टी जिसके चुनाव जीतने की पर्याप्त सम्भावना नहीं है। जो मतदाता इसे अपनी प्राथमिकता मानते हैं, वे अपने वोटों की बर्बादी से बचने के लिए अपनी दूसरी प्राथमिकता वाली पार्टी को वोट देंगे क्योंकि उनकी पसन्दीदा पार्टी के चुनाव जीतने की उचित सम्भावना नहीं है। दूसरे शब्दों में, रणनीतिक मतदाता मतपत्र सूची में अपनी सबसे पसन्दीदा पार्टी को

केवल इसलिए वोट नहीं करते है क्योंकि कम पसन्दीदा पार्टी की जीत की सभावनाएँ अधिक होती हैं। वे अपनी उम्मीदवार वरीयता और उनकी उम्मीदों को जोड़ते हैं कि एक विशेष पार्टी अथवा उम्मीदवार चुनाव जीतेंगे। एक रणनीतिक मतदाता कम पसन्दीदा विकल्प के लिए वोट करता है यदि उस विकल्प में चुनावी सफलता की उच्च सम्भावना है।

डाउन्स के अनुसार, अन्य मतदाताओं की प्राथमिकताओं की भविष्यवाणी करना मतदाताओं की निर्णय लेने की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। वह लिखते हैं - "प्रत्येक नागरिक अपने पूर्वानुमान का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए करता है कि वह जिस पार्टी को सबसे ज्यादा पसन्द करता है वह पार्टी अन्य मतदाताओं का पसन्दीदा दल है या नहीं, अगर वह मानता है कि यह नहीं है, तो तर्कसंगतता उसे किसी अन्य पार्टी के लिए वोट देने का आदेश देती है।" डाउन्स कहते हैं कि एक तर्कसंगत मतदाता पहले यह तय करता है कि उसे किस पार्टी से सबसे ज्यादा फायदा होगा और फिर यह आकलन करने की कोशिश करता है कि क्या उस पार्टी के चुनाव जीतने की कोई सम्भावना है। मतदाता ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि वे चाहते हैं कि उनके वोट उन लोगों में से हों जो केवल वरीयताओं की अभिव्यक्ति के बजाय सरकार का चयन करते हैं।

एथनोग्राफिक दृष्टिकोण

एथनोग्राफी, गुणात्मक अनुसन्धान के एक रूप में, दुनिया भर में मानव जीवन और सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिए एक शक्तिशाली साधन के रूप में उभरी है। 19वीं शताब्दी की अन्तिम वर्षों में एथनोग्राफी की शुरूआत हुई, जब मानवविज्ञानी विशेषज्ञों ने ग्रामीण और आदिवासी समुदायों में लोगों के जीवन और व्यवहार का वर्णन करने के लिए 'एथनोग्राफी' शब्द का प्रयोग किया। व्युत्पत्ति के अनुसार, एथनोग्राफी शब्द 'एथनो' और 'ग्राफी' शब्दों का संयोजन है, जो ग्रीक शब्द 'एथनोई' से लिया गया है जिसका अर्थ 'अन्य' और 'ग्राफीन' जिसका अर्थ 'लिखना' है। अर्थात् मूल रूप से, 'एथनोग्राफी' शब्द का उपयोग 'अन्य लोगों के बारे में लिखने' के लिए किया जाता है। जब यह 'अन्य' के बारे में लिख रहा होता है, तो लेखन में यह शामिल होता है कि वे लोग कौन हैं, वे क्या करते हैं, वे कैसे रहते हैं, वे समुदाय में कैसे बातचीत करते हैं और कई अन्य चीजें जो उनके जीवन से जुड़ी हैं। "एथनोग्राफी में एक क्षेत्र-आधारित अध्ययन शामिल है जो लोगों के रोजमर्रा के मानदंडों, अनुष्ठानों और दिनचर्या को विस्तार से पेश करता है" (यिन, 2011)।

एथनोग्राफी अनुसन्धान उनके समुदायों के भीतर लोगों के जीवन के अध्ययन के लिए एक सांस्कृतिक दृष्टि प्रदान करता है (हैमरस्ले और एटकिंसन, 2007)। एथनोग्राफी की जड़ें मानवशास्त्रीय अध्ययनों में निहित हैं, जो छोटे समुदायों के सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं का अध्ययन करने पर केन्द्रित हैं। शोधकर्ता इन लोगों द्वारा साझा की जाने वाली संस्कृति को समझने के उद्देश्य से लोगों के बीच रहते हैं। इस प्रकार की शोध पद्धति मूल रूप

से निकट अवलोकन और सक्रिय भागीदारी के माध्यम से अध्ययन करने के लिए की जाती है। यह एक समुदाय की सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाओं का अध्ययन करने पर केन्द्रित है।

चुनावी अध्ययनों में सर्वे तकनीक ही अधिक लोकप्रिय रही है, परन्तु कुछ विश्लेषकों द्वारा केस अध्ययन या एथनोग्रफिक अध्ययन के प्रयोग से भी लोगों के मतदान व्यवहार को अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। एथनोग्राफिक अध्ययन में प्रतिभागी अवलोकन के माध्यम से लोगों के व्यवहार को समझने का प्रयास किया जाता है। जहाँ अनुसन्धानकर्ता कई दिनों तक उन्हीं लोगों के साथ समय व्यतीत करता है, जिस समूह को प्रतिदर्श के लिए चुना गया है तथा इस अध्ययन में मात्रात्मक परिमाणों की अपेक्षा गुणात्मक परिमाणों पर अधिक बल दिया जाता है। पॉल ब्रान्स के द्वारा सबसे पहले 1977 और 1980 के लोकसभा चुनावों में उत्तर प्रदेश के पाँच निर्वाचित क्षेत्रों में केस अध्ययन किया गया (पॉल, 1984)। समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास और ए.एम. शाह द्वारा 1960 के दशक में मतदाताओं के व्यवहार को अध्ययन करने के लिए सहभागी अवलोकन का प्रयोग किया गया (श्रीनिवास एवं शाह, 2007)। इसके अतिरिक्त मुकुलिका बनर्जी द्वारा 2007 में पश्चिम बंगाल के विधानसभा चुनाव में मतदान व्यवहार का अध्ययन करने के लिए गाँव में एथनोग्रफिक अध्ययन का आयोजन किया गया। इन अध्ययनों में सहभागी अवलोकन के माध्यम से मतदाताओं के मतदान व्यवहार को मापने का प्रयास किया गया था, तथा उसके गुणात्मक आयामों को प्रस्तुत किया गया।

मुकुलिका बनर्जी द्वारा बंगाल विधानसभा चुनाव में बंगाल के दो गाँव में एथनोग्राफिक अध्ययन का आयोजन किया था। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य गुणात्मक रूप से यह समझना था कि लोगों में मतदान को लेकर आखिर इतना उत्साह क्यों रहता है। जबकि भारत में चुनाव कोई अनिवार्य शर्त नहीं है लेकिन इसके पश्चात् भी लोकसभा चुनाव में लगभग 60 प्रतिशत तक मतदान की प्रवृत्ति रही है तथा राज्य स्तर पर विधानसभाओं में मतदान प्रतिशत राष्ट्रीय स्तर से अधिक लगभग 70 प्रतिशत तक रहता है और स्थानीय स्तर पर नगर निगम और पंचायती चुनावों में मतदान प्रतिशत और ज्यादा देखने को मिला है। इसके अतिरिक्त की चुनाव दर से लोगों के जीवन में कोई महत्वपूर्ण सकारात्मक बदलाव देखने को नहीं मिलता है तथा कई जगह पर मतदान केन्द्र घर से बहुत दूर भी होते हैं परन्तु चुनावों में मतदाताओं का उत्साह कम नहीं होता है जबकि भारतीय चुनावों में यह देखा गया है कि सामाजिक पदसोपान में सबसे 'निम्न वर्गीय' और 'निम्न जातीय' लोग 'उच्च वर्गीय' और 'उच्च जातीय' लोगों से अधिक मतदान करते हैं तथा यही रुझान गाँव और शहरों के स्तर पर भी देखा जाता है। जहाँ गाँव के लोग शहरी मतदाताओं के मुकाबले अपनी चुनावी भागीदारी के लिए अधिक उत्सुक रहते हैं। मुकुलिका बनर्जी का उद्देश्य सिर्फ गाँव में मतदाता किस दल को वोट देने वाला है इसका पता लगाना नहीं था, बल्कि लोग चुनाव को किस दृष्टिकोण से देखते हैं, उनके व्यवहार में चुनावी गतिविधियों को लेकर किस प्रकार के विचार हैं, उसे भी

समझना शामिल था। गाँव में अधिकतर लोग चुनाव को उत्सव की तरह लेते हैं तथा मतदान को कर्तव्य के रूप में स्वीकार करते हैं (मुकुलिका, 2007)।

बंगाल के विधानसभा चुनाव का अध्ययन सिर्फ दो गाँवों के अध्ययन पर आधारित था, परन्तु 2009 के लोकसभा चुनावों के दौरान व्यापक रूप से एथनोग्रफिक चुनावी अध्ययन का आयोजन किया गया, जहाँ पहले सिर्फ एक विशेष क्षेत्र का अवलोकन किया जाता था, अब देश की अलग-अलग 12 जगहों पर एथनोग्रफिक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के संचालन का उद्देश्य भारतीय चुनावों के बड़े पैमाने पर किए गए सर्वेक्षणों और स्थानीय स्तर पर किए गए सहभागितामूलक अनुसन्धानों की शक्तियों को एक साथ मिलाकर तुलनात्मक अध्ययन करना था। इस अध्ययन को 'कम्पेरेटिव इलेक्टोरल एथनोग्रफिक प्रोजेक्ट' के नाम से मुकुलिका बनर्जी द्वारा विकासशील समाज अध्ययन केन्द्र, दिल्ली के सहयोग से पूरा किया गया। इस अध्ययन के अन्तर्गत मुकुलिका बनर्जी द्वारा अपने 12 सहयोगियों को क्षेत्रीय विशेषज्ञों के साथ देश के अलग-अलग 12 राज्यों में भेजा गया जिसमें बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, गुजरात, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल शामिल थे। इन्हें मुख्य चार प्रश्नों पर एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करने का कार्य दिया गया, यह चार प्रश्न थे - (1) मतदाता की नजर से चुनाव अभियान कैसा दिखता है? (2) राजनीति की भाषा कैसी है? कौन से नये शब्द गढ़े गए, चुनावी लोकतन्त्र की प्रकियाओं का वर्णन करने के लिए कौन से स्थानीय रूपकों का इस्तेमाल हुआ? (3) मतदान के दिन क्या हुआ? लोगों ने स्वयं मतदान करने का अनुभव कैसा किया? मतदान केन्द्र की संस्कृति और मतदाताओं के प्रति मतदान अधिकारियों का व्यवहार कैसा था? (4) मतदाताओं की किस तरह की प्रतिक्रिया थी जब उनसे पूछा गया 'आप वोट क्यों देतें है?' (मुकुलिका, 2014)।

इसके अतिरिक्त मनीषा प्रियम् द्वारा भी चुनावी अध्ययनों में एथनोग्राफिक अध्ययन का प्रयोग किया गया है। मनीषा प्रियम् द्वारा साउथ दिल्ली की अनाधिकृत कॉलोनी संगम विहार में 2014 के लोकसभा चुनाव में लोगों के मतदान व्यवहार को जानने का प्रयास किया गया, जिसमें 2013 में होने वाले दिल्ली विधानसभा चुनाव के समय भी यहाँ अध्ययन का एक दौर चलाया गया था। इस अध्ययन को लगभग आठ महीने तक चलाया गया। इसका मुख्य उद्देश्य केवल राजनीतिक पसन्द का पता लगाना नहीं था बल्कि विस्तृत रूप से लोगों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवहार को समझना था। संगम विहार एक अनाधिकृत कॉलोनी है जहाँ लगभग ढाई लाख की आबादी रहती है जो अधिकतर उत्तर प्रदेश और बिहार से आए हुए लोग हैं तथा अधिकतर निम्नवर्गीय परिवार हैं, जहाँ पानी भी टैंकर द्वारा पहुँचाया जाता है। मनीषा ने पाया कि लोग कभी भी अपनी राजनीतिक प्राथमिकताओं का खुलासा नहीं करते हैं और अपनी पसन्द का संकेत केवल तभी देते हैं जब उन मुद्दों पर कोई सार्थक चर्चा शुरू की जाती है। यहाँ स्थानीय ताकतवर नेताओं का प्रभाव अधिक है तथा लोग भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस से आम आदमी पार्टी की तरफ अपनी राजनीतिक पसन्द को बदल रहे हैं (प्रियम्, 2015)।

निष्कर्ष

मतदान व्यवहार एक जटिल परिघटना है और इसके निर्धारकों को पूर्ण रूप से समझना कठिन है। सामाजिक वैज्ञानिकों के पास अभिकर्ताओं द्वारा किए गए सामाजिक और राजनीतिक निर्णयों के निर्धारकों की व्याख्या करने और उन्हें खोजने का कठिन और चुनौतीपूर्ण कार्य है। जैसे-जैसे सामाजिक और राजनीतिक अभिकर्ता लगातार बदलते रहते हैं और ऐसी स्थितियाँ भी होती हैं जिनमें वे काम करने के लिए बाध्य होते हैं, इसलिए राजनीतिक और सामाजिक व्यवहार के दृष्टिकोण और स्पष्टीकरण भी भिन्न होते हैं। कोई एकल सैद्धान्तिक मॉडल मतदान व्यवहार का एकमात्र स्पष्टीकरण होने का दावा नहीं कर सकता है। प्रत्येक दृष्टिकोण एक व्यापक रूपरेखा प्रदान करता है कि विभिन्न कारक मतदाताओं की निर्णय लेने की प्रक्रिया को कैसे प्रभावित करते हैं। विभिन्न सन्दर्भ स्थितियों में, एक या दूसरा मॉडल अधिक प्रासंगिक हो सकता है। यदि प्रबन्धनीय हो, तो मिश्रित तरीकों का दृष्टिकोण हमेशा मतदान व्यवहार की बेहतर समझ प्रदान कर सकता है। भारत जैसे विविधता वाले देश में मतदाताओं के मतदान को प्रभावित करने वाले कारकों का सुनिश्चित सूत्रीकरण कर पाना बहुत की कठिन कार्य है।

कोई व्यक्ति किस प्रत्याशी अथवा दल को मत दे रहा है तो क्यों दे रहा है? उसकी मतदान के प्रति रुचि है या नहीं है, उसके मतदान करते समय के प्रेरक तत्व, उसकी अथवा प्रत्याशी की जाति, धर्म, शिक्षा, योग्यता, आदि आधारों की पृष्ठभूमि से किसी व्यक्ति का मतदान व्यवहार झलकता है। सामन्यत: चुनावों के बाद मतदान व्यवहार के मूल्यांकन के आधार पर ही बदलाव अथवा परिवर्तन को लेकर कोई सार्थक दृश्य प्रस्तुत हो पाता है। मतदान व्यवहार किसी भी राजव्यवस्था की परिवर्तनशीलता अथवा स्थायित्व को जानने का एक बड़ा साधन है।

सन्दर्भ

एंट्यून्स, आर. (2010). थ्योरेटिकल मॉडल ऑफ वोटिंग व्हेवियर. एक्सेड्रा, 4, 145-170.

एटकिंसन, पी. और हैमरस्ले, एम. (2007). *एथ्नोग्राफिक थ्योरी इन प्रेक्टिस* (थर्ड एडिशन). रूटलेज.

बेरेलसन, बी., लाजर्सफेल्ड, पी. और मैकफी, डब्ल्यू. (1963). *वोटिंग : ए स्टडी ऑफ ओपिनियन फॉर्मेशन इन ए प्रेसिडेंशियल कैम्पेन* (दूसरा संस्करण). शिकागो, आईएलः यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

ब्रास, पी. (1984). *कास्ट, फेक्शन एंड पार्टी इन इंडियन पोलिटिक्स : इलेक्शन स्टडीज,* 2. चाणक्य पब्लिकेशन.

बनर्जी, एम. (2007). 'द होली इलेक्शन'. *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 28 अप्रैल, 1556-1562.

कैट्ज, ई., लाजर्सफेल्ड, पी.एफ. और रोपर, ई. (1955). *पर्सनल इन्फ्लुएंस - द पार्ट प्लेईंग बाय पीपल इन द फ्लो ऑफ मास कम्युनिकेशन,* रूटलेज.

डाउन्स, ए. (1957). *एन इकोनॉमिक थ्योरी ऑफ डेमोक्रेसी.* हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स.

लाजर्सफेल्ड, पी., बेरेलसन, बी. और गौडेट, एच. (1948). *द पीपल्स चॉइस : हाउ द वोटर मेक्स अप हिज माइंड इन अ प्रेसिडेंशियल कैम्पेन,* कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.

महसूद, एन.एच. और अमीन, एच. (2020). थ्योरेटिकल एप्रोच टू द स्टडी ऑफ वोटिंग बिहेवियर : अ कम्पेरेटिव एनालिसिस (एसजेईएसआर) 3,3, 65-73

प्रियम्, एम. (2015). 'चूसिंग द रूलिंग पार्टी एंड द अपोजिशन : वोटर लिबरेशन फ्रॉम संगम विहार, दिल्ली, लोकसभा इलेक्शन 2014'. *स्टडीज इन इंडियन पॉलिटिक्स,* 3(1), 94-110.

शाह, ए.एम. (2007). 'इंट्रोडक्शन'. ए.एम. शाह (सं.), *द ग्रासरूट्स ऑफ डेमोक्रेसी: फील्ड स्टडीज ऑफ इंडियन इलेक्शन* (पीपी 1-27). दिल्ली: परमानेंट ब्लैक.

विसर, एम. (1994). 'द साइकोलॉजी ऑफ वोटिंग एक्शन ऑन द साइकोलॉजिकल ओरिजिन्स ऑफ इलेक्टोरल रिसर्च, 1939-1964'. *जर्नल ऑफ द हिस्ट्री ऑफ द बिहेवियरल साइंसेज,* 30(1),43-52.

यिन, आर.के. (2011). *क्वालिटेटिव रिसर्च फ्रॉम स्टार्ट टू फिनिश.* गिलफोर्ड प्रेस.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 100-121)
UGC-CARE (Group-I)

उत्तर प्रदेश से एशियाई देशों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में सोशल नेटवर्क की भूमिका: गोरखपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में

नरेन्द्र कुमार शर्मा*

भारत से अकुशल, अर्धकुशल प्रवासन कोई नयी परिघटना नहीं है। वर्तमान विश्व में भारत अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासियों का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत देश है। प्रस्तुत अध्ययन में भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के गोरखपुर जनपद से होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में सोशल नेटवर्क की भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है। यह एक अनुभवपरक अध्ययन है, इसमें प्राथमिक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। सर्वे प्रविधि का प्रयोग कर अनुसूची के माध्यम से गुणात्मक आंकड़े संगृहीत किये गये हैं। गुणात्मक आंकड़ों की प्राप्ति के लिए विशेषत: साक्षात्कार, गहन साक्षात्कार, केस स्टडी, समूह चर्चा, सहभागी, गैर-सहभागी अवलोकन आदि का उपयोग कर तथ्य संकलन किया गया है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में नेटवर्क की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है।

बीज शब्द - अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास, प्रवासी, बेरोजगार, श्रमिक, सामाजिक सम्बन्ध।

---

*सीनियर रिसर्च फेलो, जी.बी. पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान (इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय का एक संघटक संस्थान, प्रयागराज (उ.प्र.). E-mail: **kumarnarendra.au@gmail.com**

प्राक्कथन

सीमा पार प्रवासन वैश्विक स्तर पर एक प्रमुख जनसांख्यिकीय परिघटना है जिसने मानव इतिहास के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 2020 के आंकड़ों के अनुसार विश्व के 28.1 करोड़ प्रवासी अपने मूल देश से प्रवास कर विदेश में रहते हैं (राजन और अरोक्कियाराज, 2020)। वर्तमान में भारतीय प्रवासी 199 देशों में रहते हैं (विदेश मन्त्रालय, 2018)। अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन के मामले में प्रथम स्थान पर चीन एवं द्वितीय स्थान पर भारत है। भारत से अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन कोई नवीन घटना नहीं है। भारत का दक्षिण पूर्व एशिया के साथ 2000 वर्ष से भी अधिक पुराना ऐतिहासिक सम्बन्ध है (कोएडस, 1968)। प्रवासन की यह प्रक्रिया 19वीं सदी के शुरूआती दशक से अनवरत चलती आयी है। सन 1833 में पाश्चात्य जगत से दास प्रथा की समाप्ति के पश्चात ब्रिटिश बागान मालिकों को सस्ती दर पर अधिक काम करने वाले श्रमिकों को खोजने का प्रयास भारत में सफल रहा। परिणामस्वरूप भारत एवं उत्तर प्रदेश से 19वीं सदी के शुरूआती दशक में गिरिमिटिया मजदूर बड़ी संख्या में खेतिहर मजदूर, कारीगर और किसान गयाना, सूरीनाम, त्रिनिडाड एवं टोबैगो, मारीशस और फिजी जैसे विभिन्न ब्रिटिश उपनिवेशों और गन्ना उगाने वाले क्षेत्रों में अंग्रेजों द्वारा ले जाये गये थे (जयराम, 2011)। यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो दास प्रथा और गिरिमिटिया में सिर्फ नाम का अन्तर था शेष कोई अन्तर नहीं था। इन प्रवासियों को गन्तव्य स्थलों पर कुली की भी संज्ञा दी जाती थी। उपर्युक्त देशों में गिरिमिटिया मजदूर के रूप में प्रवास करने वाले मजदूर अधिकांश उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में स्थित जिलों सिद्धार्थनगर, कुशीनगर, देवरिया, गोरखपुर, सन्तकबीरनगर, आजमगढ़, बलिया आदि क्षेत्रों से थे। वहीं बिहार राज्य के पश्चिमांचल क्षेत्र के निवासी थे (चौहान, 2018)।

वैसे यदि उत्तर प्रदेश या भारत से दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों खासकर थाईलैण्ड, सिंगापुर, इण्डोनेशिया की बात करें तो यह बहुत पहले समय से चलता आया है (कोएडस, 1968)। गौरतलब है कि 19वीं सदी में थाईलैण्ड में भारतीय मूल के लोगों की संख्या 1,00,000 से 1,50,000 के मध्य थी (अग्रवाल 2014)। व्यापार और धर्म शुरूआती दो कारक थे जिन्होंने भारतीयों को समुद्र पार यात्रा करने के लिए प्रेरित किया। कई प्रवासी एक से अधिक पीढ़ियों से रह रहे हैं। थाईलैण्ड में भारतीय प्रवासियों की बसाहट विभिन्न धार्मिक एवं क्षेत्रीय एवं भाषाई समूहों पर आधारित है। यहाँ पर रहने वाले 85 प्रतिशत भारतीय प्रवासी हिन्दू धर्म से सम्बन्ध रखते हैं (वर्टोवेक, 2000; पारेख, 1993)। यहाँ थाईलैण्ड के भारतीय प्रवासी पंजाब, तमिलनाडु, गुजरात, और उत्तर प्रदेश में खासकर गोरखपुर से सम्बन्धित हैं। पश्चिमी देशों, खासकर खाड़ी देशों (संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, कुवैत, कतर, ओमान, बहरीन) में प्रवास इन देशों में तेल की खोज के साथ शुरू हुआ। 1970 में तेल की कीमतों में तेजी के साथ खाड़ी सहयोगी देशों में श्रम की माँग में काफी वृद्धि हुई। इन देशों में प्रवास करने वाले भारतीय अधिकांशत: अकुशल और अर्धकुशल प्रकृति के होते हैं। अकुशल और अर्धकुशल प्रकृति के होने की वजह अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास पूर्व अपेक्षित रोजगार

प्रशिक्षण संस्थान की अनुपलब्धता है। अरब प्रायद्वीप की भारत से भौगोलिक और ऐतिहासिक निकटता इसे भारतीयों के लिए सुविधाजनक बनाती है। पश्चिमी देशों में, खासकर खाड़ी देश भारत और अन्य दक्षिणी देशों से अधिक श्रमिकों को अपने यहाँ स्वीकारने में विशेष रूचि रखते हैं, क्योंकि भारत सहित दक्षिण एशिया के श्रमिक कम वेतन वाली कम कुशल नौकरियों को सहज ढंग से स्वीकार कर लेते हैं। वैश्वीकरण के युग में मातृभूमि और प्रवासी भारतीयों में एक नये प्रकार का रिश्ता उभरकर आया है। वे मेजबान और मातृभूमि के बीच सम्बन्धों को आकार देने वाले गतिशील कारक के रूप में उभरे हैं (जैन एवं गुप्ता, 2013)। सामान्यत: इन देशों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन को अस्थाई कहा जाता है। परन्तु व्यवहार में अनेकों श्रमिक कई वर्षों तक इन खाड़ी देशों में रहते हैं। जिससे एक से अधिक पीढ़ी के प्रवासियों को गन्तव्य स्थल पर प्रवास करने पर सहजता होती है (सिंह और अरिम्ब्रा, 2019)।

शोध प्रश्न

अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में सोशल नेटवर्क की क्या भूमिका है?

शोध का उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में सोशल नेटवर्क की भूमिका को समझना।

शोध प्रविधि और आंकड़ों का स्रोत

गोरखपुर, उत्तर प्रदेश से देशों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास विषयक यह शोधकार्य मूलत: अनुभवजन्य अन्वेषणात्मक प्रकृति का है। प्रस्तुत शोध कार्य में गोरखपुर, उत्तर प्रदेश से देशों में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में सोशल नेटवर्क की भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, द्वितीयक आंकड़ों की प्राप्ति भारत सरकार के विदेश मन्त्रालय, ऑनलाइन स्रोतों आदि से लिया गया है, जबकि प्राथमिक आंकड़ों की प्राप्ति क्षेत्रीय सर्वे से की गयी है। प्रस्तुत अध्ययन में अन्वेषणात्मक सह मिश्रित अर्थात् गुणात्मक और मात्रात्मक शोध प्रविधि का उपयोग किया गया है। सर्वप्रथम सोद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन का उपयोग करते हुए भारत के उत्तर प्रदेश में गोरखपुर जनपद का चयन किया गया है।

सर्वेक्षण के लिए गोरखपुर जनपद से कुल 200 परिवारों का चयन स्नोबॉल प्रतिचयन के माध्यम से किया गया है, जिसमें दक्षिण पूर्व एशिया में प्रवास करने वाले परिवारों की संख्या 100 और पश्चिम देशों में प्रवास करने वाले परिवारों की संख्या भी 100 थी। अर्थात् कुल 200 परिवारों का चयन करते हुए, प्राथमिकता के आधार पर प्रवासी, पारिवारिक मुखिया, प्रबुद्ध/निर्णायक/जिम्मेदार व्यक्ति से संरचित अनुसूची के आधार पर साक्षात्कार करते हुए आंकड़े प्राप्त किये गये हैं। इस अनुसूची में संरचित और असंरचित प्रकार के प्रश्न शामिल थे। संरचित प्रकार के प्रश्नों द्वारा साक्षात्कार के माध्यम से मात्रात्मक प्रकृति के आंकड़े प्राप्त

किये गये जबकि अनुसूची के असंरचित प्रश्नों से गहन साक्षात्कार, समूह चर्चा, केस स्टडी, सहभागी अवलोकन के माध्यम से गुणात्मक आंकड़े प्राप्त किये गये हैं।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र भारत के सर्वाधिक जनसंख्या वाले राज्य उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल क्षेत्र का प्रमुख जनपद गोरखपुर है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के लिए जाना जाता है। इस जनपद का कुल क्षेत्रफल 3321 वर्ग किलोमीटर है (गोरखपुर जनपद जनगणना, 2011)। चयनित जनपद की कुल जनसंख्या 4,440,895 है, जो उत्तर-प्रदेश की कुल जनसंख्या का 2.22 प्रतिशत है। जनपद में प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 950 है, जनपद का जनसंख्या घनत्व 1337 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। जनपद की 68.02 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में तथा 32.39 प्रतिशत जनसंख्या शहरी या नगर क्षेत्र में रहती है (जनगणना, 2011)। गोरखपुर जनपद को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयन का आधार विषय विशेषज्ञों (राजन, 2019; राय और भगत, 2021; प्रनव, 2008; सिन्हा, 2011) के लिखे विद्वत् लेखों और आई.एम.ओ. प्रमुख एस. अवस्थी द्वारा 17 अगस्त 2022 को दिये गये वक्तव्य में इस तथ्य को प्रमुखता के साथ उल्लेख करने तथा उत्तर प्रदेश के जनपदों में विशिष्ट गोरखपुर जनपद से दो दिशाओं में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास को जाता है। प्राप्त आधारभूत जानकारी की वैधता का परीक्षण पायलट सर्वे के माध्यम से प्रवासी, गैर प्रवासी परिजनों, एवं स्थानीयजनों से साक्षात्कार, गहन साक्षात्कार प्रविधि से किया गया।

उत्तरदाताओं की नमूना आधारित विशेषताएँ

1. लिंग के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन और लिंग का गहरा सम्बन्ध होता है, अनादि काल से भारतीय समाज इस धारणा का वरण करके बढ़ता आ रहा है कि घरेलू कार्यों का सम्बन्ध महिलाओं और घर से बाहर के कार्यों का सम्बन्ध पुरुष वर्ग से रहा है। अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि गोरखपुर जनपद से दक्षिण पूर्व देशों और पश्चिम देशों में होने वाला प्रवासन पुरुष प्रधान है। महिलाओं की स्थिति नगण्य है। यह स्थिति इस प्रत्यय का समर्थन करती है कि प्रवास में दूरी बढ़ने के साथ महिलाओं की संख्या कम होती जाती है।

तालिका 1

लिंग के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

लिंग	दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश (प्रतिशत)	पश्चिमी एशियाई देश (प्रतिशत)
पुरुष	100	100
महिला	00	00
कुल	100	100

स्रोत: फरवरी - जून 2022 में किये गये प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण से शोधार्थी की गणना पर आधारित

2. आयु के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

भारत में 15-59 आयु वर्ग की जनसंख्या को क्रियाशील या सक्रिय रूप में जाना जाता है, किसी भी प्रकार की आर्थिक गतिविधि को करने में आयु की भूमिका अतिमहत्वपूर्ण होती है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन की प्रक्रिया का विश्लेषण करने के लिए आयु एक महत्वपूर्ण कारक होती है। अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त आंकड़ों को आयु के आधार पर तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहली श्रेणी उन प्रवासियों की है जो 18 से 35 वर्ष की उम्र के मध्य के हैं इसी श्रेणी के अन्तर्गत दक्षिण पूर्व देशों में प्रवास करने वाले प्रवासियों की संख्या या प्रतिशत 33 है। जबकि पश्चिम देशों में प्रवास करने वाले प्रवासियों की संख्या या प्रतिशत 30 है। दूसरी श्रेणी 35 से 50 वर्ष के मध्य के प्रवासियों की है जिनमें दक्षिणी पूर्वी देशों में प्रवास करने वाले प्रवासियों की संख्या या प्रतिशत 40 है, किन्तु पश्चिम देशों में जाने वाले प्रवासियों की संख्याा या प्रतिशत 46 है। तीसरे श्रेणी 50 वर्ष की उम्र से अधिक वाले प्रवासियों की है। इसके अन्तर्गत दक्षिण पूर्व एशिया में प्रवास करने वालों की संख्या और प्रतिशत 27 है, जबकि दूसरी ओर पश्चिम देशों में प्रवास करने वाले प्रवासियों की संख्या प्रतिशत 24 है।

तालिका: 2 आयु पर आधारित प्रवासियों की स्थिति

उम्र समूह	दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश (प्रतिशत)	पश्चिमी एशियाई देश (प्रतिशत)
18 से 35	33	30
35 से 50	40	46
50 से ऊपर	27	24
कुल	100	100

स्रोत: फरवरी - जून 2022 में किये गये प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण से शोधार्थी की गणना पर आधारित

3. शिक्षा के आधार पर प्रवासी

शिक्षा बेहतर जीवन और सशक्तीकरण का एक महत्वपूर्ण कारक है, शिक्षा एक स्वस्थ और सन्तुलित जीवन व्यतीत करने के लिए अपेक्षित रोजगार का भी सृजन करती है, शिक्षा मानव विकास सूचकांकों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अध्ययन के अन्तर्गत दक्षिण पूर्व देशों में जाने वाले गोरखपुर जिले के प्रवासियों में सबसे अधिक हाई स्कूल उत्तीर्ण 32 प्रतिशत, इण्टरमीडिएट 21 प्रतिशत, स्नातक 15 प्रतिशत, जूनियर हाई स्कूल और स्नातकोत्तर उत्तीर्ण 8 प्रतिशत थे, पाँचवी उत्तीर्ण 8 प्रतिशत तथा निरक्षर प्रवासी 4 प्रतिशत दिखे। जबकि पश्चिम देशों में प्रवास करने वाले सबसे अधिक हाई स्कूल 35 प्रतिशत, इण्टरमीडिएट 20 प्रतिशत, स्नातक 18 प्रतिशत, स्नातकोत्तर 10 प्रतिशत, जूनियर हाई स्कूल 8 प्रतिशत, पाँचवी उत्तीर्ण 7 प्रतिशत तथा निरक्षर 2 प्रतिशत प्रवासी पाये गये।

तालिका 3
शिक्षा पर आधारित प्रवासियों की स्थिति

शिक्षा	दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश (प्रतिशत)	पश्चिमी एशियाई देश (प्रतिशत)
निरक्षर	4	2
1 से 5	8	7
6 से 8	12	8
9 से10	32	35
11 से12	21	20
स्नातक	15	18
स्नातकोत्तर	8	10
कुल	100	100

स्रोत: फरवरी-जून 2022 में किये गये प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण से शोधार्थी की गणना पर आधारित

4. श्रेणी के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

जनसंख्या अध्ययन के सामाजिक पक्ष के संकेतक के रूप में श्रेणी या वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान है। अध्ययन क्षेत्र से एकत्रित आंकड़ों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि गोरखपुर जनपद से दक्षिण पूर्वी देशों में प्रवास करने वाले 60 प्रतिशत प्रवासी पिछड़ी जाति से सम्बन्धित हैं, जबकि सामान्य श्रेणी के प्रवासियों का प्रतिशत 36 और अनुसूचित जाति से सम्बन्धित प्रवासियों की संख्या 4 प्रतिशत है। वहीं दूसरी ओर इसी अध्ययन क्षेत्र से पश्चिम देशों में प्रवास करने वाले प्रवासियों में भी सर्वाधिक पिछड़े समुदाय 65 प्रतिशत, अनुसूचित जाति से 20 प्रतिशत और सामान्य जाति से 15 प्रतिशत प्रवासी प्रवास किये हैं।

तालिका 4
श्रेणी के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

वर्ग	दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश (प्रतिशत)	पश्चिमी एशियाई देश (प्रतिशत)
अनुसूचित जाति	4	20
पिछडा वर्ग	60	65
सामान्य	36	15
कुल	100	100

स्रोत: फरवरी-जून 2022 में किये गये प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण से शोधार्थी की गणना पर आधारित

5. धर्म के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

धर्म मान्यताओं, प्रथाओं एवं मूल्यों का समूह होता है जिस पर समाज में रहने वाले व्यक्तियों का एक विशिष्ट समूह प्राथमिक रूप से सहमत होता है। जनपद गोरखपुर अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र से दक्षिण पूर्वी देशों में प्रवास करने वाले शत प्रतिशत प्रवासी हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं। जबकि दूसरी ओर पश्चिम देशों को प्रवास करने वालों में 70 प्रतिशत इस्लाम और 30 प्रतिशत हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं।

तालिका 5
धर्म के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

धर्म	दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश (प्रतिशत)	पश्चिमी एशियाई देश (प्रतिशत)
हिन्दू	100	30
मुस्लिम	00	70
कुल	100	100

स्रोत: फरवरी-जून 2022 में किये गये प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण से शोधार्थी की गणना पर आधारित

6. वैवाहिक स्थिति के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

गोरखपुर जनपद से पहले गन्तव्य स्थल दक्षिण पूर्वी देशों की ओर जाने वाले प्रवासियों में 82 प्रतिशत विवाहित, 15 प्रतिशत अविवाहित एवं 3 प्रतिशत विधुर हैं, जबकि पश्चिमी देशों में प्रवास करने वाले प्रवासियों में 70 प्रतिशत विवाहित, 24 प्रतिशत अविवाहित एवं 6 प्रतिशत विधुर हैं।

तालिका 6
वैवाहिक स्थिति के आधार पर प्रवासियों की स्थिति

वैवाहिक स्थिति	दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश (प्रतिशत)	पश्चिमी एशियाई देश (प्रतिशत)
विवाहित	82	70
अविवाहित	15	24
विधुर	3	6
कुल	100	100

स्रोत: फरवरी-जून 2022 में किये गये प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण से शोधार्थी की गणना पर आधारित

7. अध्ययन क्षेत्र से देशों में अन्तराष्ट्रीय प्रवास के निर्धारक

तालिका 7 से स्पष्ट है कि गोरखपुर जनपद से होने वाले दक्षिण पूर्व देशों और पश्चिम देशों में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के नकारात्मक निर्धारक प्रेरक तत्वों में सर्वाधिक प्रभावी स्थानीय स्तर पर कम मजदूरी या कम वेतन या न्युनतम अवसर का प्राप्त होना है, जबकि दूसरे ढंग से यदि हम तालिका पर गौर करें तो पाते हैं कि सकारात्मक, पुल निर्धारक तत्वों में अधिक मजदूर, अधिक वेतन और अधिक अवसर की उपलब्धता है।

तालिका 7
प्रस्थान स्थल पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के निर्धारक

प्रवास के निर्धारक	दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश (प्रतिशत)	पश्चिमी एशियाई देश (प्रतिशत)
कम मजदूरी/वेतन	70	70
कम बेहतर रोजगार	16	18
बेरोजगारी	10	10
अन्य	4	5
कुल	100	100

स्रोत: फरवरी-जून 2022 में किये गये प्राथमिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण से शोधार्थी की गणना पर आधारित

ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि अध्ययन क्षेत्र से बाहर दूसरे देशों में प्रवास करने वाले प्रवासी अधिकांशत: दक्षिण पूर्व एशिया के देशों, यथा - थाईलैण्ड, सिंगापुर, आदि में एवं खाड़ी देशों, यथा - संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, कतर, कुवैत, ओमान, बहरीन आदि देशों में ही क्यों जाते हैं, इसके अलावा एशिया के अन्य देशों में क्यों नहीं? इस सवाल का उत्तर ढूँढने पर हम पाते हैं कि दक्षिण पूर्व एवं पश्चिम एशिया के देशों में होने वाले प्रवास में प्रमुख भूमिका धर्म के साथ-साथ इन क्षेत्रों में प्रवास करने वालों को अपेक्षाकृत प्राप्त होने वाली सहज सुविधाओं की रही है। भारत से इन दोनों क्षेत्रों में प्रवास करने वाले प्रवासियों में बहुसंख्यक प्रवासी अकुशल और अर्धकुशल प्रकृति के होते हैं, इन प्रवासियों में कुछ प्रतिशत प्रवासी ही पढ़े लिखे और जागरूक होते हैं। इन प्रवासियों के अंग्रेजी में बोल, लिख या समझ नहीं सकने के कारण ये अमेरिका या यूरोपीय महाद्वीप के देशों की अपेक्षा एशिया महाद्वीप के दक्षिणी पूर्व एवं पश्चिमी देशों में नौकरी पाना अपेक्षाकृत सहज समझते हैं (शोधार्थी के क्षेत्रीय सर्वेक्षण से फरवरी-जून 2022)। यदि दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की बात करें तो थाईलैण्ड और सिंगापुर की अधिकांश जनसंख्या बौद्ध धर्म में विश्वास करती है (शोधार्थी के क्षेत्रीय सवेक्षण से फरवरी-जून 2022)। बौद्ध धर्म की उत्पत्ति को भारत भूमि से जोड़कर देखा जाता है (अग्रवाल, 2011; शोधार्थी के क्षेत्रीय सर्वेक्षण से फरवरी-जून 2022)। साथ ही थाईलैण्ड के नागरिकों का मानना है कि एक समय दुनिया में सिर्फ बौद्ध धर्म के मानने वाले ही लोग थे, जिसकी वजह से भारत के लोगों को प्राचीन समय से जोड़कर ये लोग बौद्ध धर्मावलम्बी होने के नाते भाई-बन्धु ही मानते हैं, साथ ही भारतीयों के प्रति विशिष्ट अनुराग रखते हैं।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इन देशों के नागरिकों की आस्था और संस्कृति में भगवान बुद्ध के साथ ही भगवान श्रीराम का विशिष्ट स्थान है, जिसकी विशिष्टता को यहाँ के मुख्यमार्गों के नामकरण में राम के नाम के होने से समझा जा सकता है। राम की अयोध्या इस देश में भी है। समय-समय पर यहाँ के स्थानीय कलाकारों के द्वारा राम लीला का मंचन भी किया जाता है। इन सभी प्रमाणों के आलोक के साक्ष्य में ये माना जा सकता है कि यहाँ के निवासियों का भारतीयों के प्रति व्यवहार अपेक्षाकृत उदार हैं (शोधार्थी के क्षेत्रीय सवेक्षण से फरवरी-जून 2022)।

भारत से दक्षिण पूर्व देशों में होने वाले प्रवास का ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध बहुत पुराना है। भारत से थाईलैण्ड, सिंगापुर, आदि देशों में बहुत पहले से आने जाने वाले अधिकांशत: हिन्दू धर्म के लोग ही रहे हैं। इन प्रवासियों में सिक्ख और इस्लाम धर्म के प्रवासी अल्पसंख्यक स्थिति में हैं। हजारों वर्ष पूर्व प्रवास करने वाले प्रवासियों के अभी भी अपनी जड़ों से जुड़ाव के कारण इस क्षेत्र में प्रवास की प्रक्रिया लम्बे समय से चलती चली आ रही है। जड़ों से जुड़ाव के कारण ही स्रोत क्षेत्र में प्रवास के प्रति अनुकूल वातावरण की स्थिति में ही अध्ययन क्षेत्र के नवप्रवासी प्रवास करने को प्रेरित होते हैं। अध्ययन क्षेत्र से परदेश जाने पर पूर्व में गये प्रवासियों से जो अपनापन प्राप्त होता है वह सहजता, अपनापन कहीं और जहाँ पर उनके समूह या निकट सम्बन्धी लोग नहीं हैं वहाँ नहीं

प्राप्त हो सकता है, जो इस विशेष क्षेत्र या देश में प्रवास के लिए गन्तव्य चुनने के प्रेरित करने वाले कारकों में एक महत्वपूर्ण कारक है। सर्वे के माध्यम से ज्ञात होता है कि बहुत पहले से हिन्दू समुदाय के लोगों ने हिन्दू संस्कृति को वहाँ पर अपनी जीवनचर्या में सहजता के साथ अनुपालन करते हुए पुष्पित और पल्लवित या समृद्ध किया। थाईलैण्ड में स्थित भारतीय प्रवासियों की आबादी से जुड़े हिन्दू देवी, देवताओं के कई मंदिर स्थापित हैं। इन मंदिरों के प्रमुख पंडित, पुरोहित भारतीय प्रवासी ही हैं। यहाँ समय-समय पर हिन्दू विधि-विधान से पूजन-अर्चन भी होता है, भारतीय प्रवासियों के प्रवास स्थल पर विविध कार्यक्रम या बैठकों के लिए भी इन मंदिरों का उपयोग किया जाता है। इन गन्तव्य देश में सभी हिन्दुस्तानियों को एक सूत्र में बाँधने का काम उनकी संस्कृति, यथा - भाषा विशेषकर भोजपुरी, हिन्दी, जीवन जीने सम्बन्धी मान्यताएँ होती हैं जो हजारों किलोमीटर दूर भी अपनेपन, भारतीयता या भारतीयपन का सहज एहसास कराती हैं। यहाँ पर रहने वाले प्रवासियों द्वारा रहन सहन, खान-पान सहित भारतीय उत्सवों को प्रत्येक सम्भव भव्यता के साथ मनाते और जीते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषित लगभग सभी तथ्य प्रस्थान बिन्दु या उद्गम क्षेत्र से नव प्रवासियों को प्रवास करने के लिए आकर्षित करते हैं। दूसरी ओर अध्ययन क्षेत्र से संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, कतर, कुवैत, ओमान, बहरीन आदि देशों में प्रवास करने वालों में सर्वाधिक संख्या मुस्लिम समुदाय के लोगों की है, भारतीय मुस्लिम समुदाय के प्रवासियों के खाड़ी देशों को प्रवास के गन्तव्य रूप में चयनित करने का प्रमुख कारण इन पश्चिमी देशों में बहुसंख्यक आबादी की इस्लाम धर्म में आस्था होना है। इस्लाम धर्म में आस्था होने के कारण यहाँ की संस्कृति में घुलना मिलना अन्य देशों की अपेक्षा सहज होता है। साथ ही यहाँ पर बोली जाने वाली भाषा उर्दू, अरबी होती है जिसे भारतीय प्रवासी अपेक्षाकृत अन्य देशों की भाषाओं से सहजता के साथ सुन, समझ और बात कर लेते हैं। खाड़ी देशों के रहने वाले अरबवासियों के रहन-सहन, खान-पान, पूजा पद्धति, आदि जीवनचर्या में अपने आपको ढालना अपेक्षाकृत अन्य देशों की व्यवस्था में ढलने से कहीं अधिक सहज, सुलभ और सुरक्षित पाते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास की प्रक्रिया को आरम्भिक समय 1960 से अनवरत प्रभावित करता रहा है।

उत्तर प्रदेश से एशियाई देशों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में सोशल नेटवर्क की भूमिका

प्रस्थान बिन्दु या उद्गम क्षेत्र से गन्तव्य तक अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास की सम्पूर्ण प्रक्रिया में सोशल नेटवर्क की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। सामाजिक सम्बन्धों के जाल को समाज कहते हैं (मैकाइवर एंड पेज, 1959)। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है - अरस्तु (असिकोगु, 2019)। समाज के बगैर मनुष्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती, मनुष्य के अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समाज का बड़ा महत्व होता है, मनुष्य के इस समाज की निर्मिति घर परिवार के सदस्यों, प्रियजनों, मित्रों और सम्बन्धियों से मिलकर होती है। सर्वमान्य सत्य यह है कि सुख बाँटने से बढ़ता है जबकि दु:ख बाँटने से कम होता है। समाज के ये सदस्य भी

एक-दूसरे के व्यक्तित्व विकास के प्रति संवेदनशील होते हैं। मनुष्य जीवन की विविध आवश्यकताओं के सन्दर्भ में अपने निकट सम्बन्धियों से सहयोग प्राप्त करता है। अध्ययन क्षेत्र में प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि मानव प्रवास चाहे वह आन्तरिक हो या अन्तर्राष्ट्रीय, दोनों में इसकी भूमिका प्रमुखता के साथ रहती है। इस शोध विषयक कार्य की अनुभवजन्य प्रक्रिया से ज्ञात होता है कि मनुष्य में प्रवास करने की भावना या विचार का जन्म प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज की देन होता है। क्योंकि व्यक्ति को अच्छे-बुरे, सही-गलत, छोटे-बड़े, सामान्य-विशिष्ट का ज्ञान या एहसास समाज ही कराता है।

व्यक्ति स्वाभावत: अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी होता है। अपनी बहिर्मुखी दृष्टि से समाज में घटित हो रही घटनाओं से अनुभव प्राप्त करता है और प्राप्त अनुभवों की कसौटी पर अपने आपको कसने का प्रयास करता है। मानक कसौटी पर व्यक्ति जब अपने आपकी स्थिति को बेहतर नहीं पाता तो वह अधिक बेहतर करने का प्रयास करता है। यदि व्यक्ति के बेहतर बनने के विचार को पंख स्थानीय या देश के आन्तरिक भागों में रहकर मिलते हुए नहीं दिखायी देते तो वह दूसरे देश में जाकर अपने स्वप्नों एवं विचारों को पंख देने की कोशिश करता है। प्रवास का विचार मन में आने के पश्चात जीवन की अन्य गतियों के समानान्तर उससे सम्बन्धित जानकारी जुटाने में लग जाते हैं, जैसे - कौन-कौन जा सकता है कौन नहीं? पासपोर्ट, वीजा, मेडिकल, हवाई टिकट आदि क्या-क्या हैं? इनका क्या उपयोग है इस प्रवास की प्रक्रिया में कहाँ बनता है कौन बनाता है, कितना समय, श्रम एवं धन लगता है, इस कार्य में किससे हमें सहायता मिल सकती है? कौन हमारा सहायक हो सकता है? अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में सोशल नेटवर्क की भूमिका को तीन स्वरूपों में रखा जा सकता है।

1. प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास की पूर्व अवस्था

अध्ययन से ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास सम्बन्धी विचार को व्यक्ति के मन में बीजारोपण करके प्रवासी बनाने की भूमिका में अधिकांशत: गाँव, समाज, नातेदार, रिश्तेदार और करीबियों की ही होती है। इन्हीं के द्वारा सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों पर गहन विचार के परिणामस्वरूप विदेश जाने सम्बन्धी निर्णय लिये जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के निर्णयोपरान्त इच्छुक प्रवासी का पहला कदम, पासपोर्ट बनवाना होता है। इच्छुक प्रवासी अपनों अर्थात् परिजन, गाँववालों, रिश्तेदार, नातेदार, अन्य मित्र, आभासी संसार के मित्रों से पासपोर्ट बनवाने के सन्दर्भ में जानकारी जुटाते हैं। जानकारी जुटाने की प्रक्रिया में कोई न कोई करीबी विश्वासपत्र बन जाता है। तत्पश्चात इच्छुक प्रवासी उसके बताये अनुसार कार्य करने लगता है। इस सन्दर्भ में लिये गये सभी निर्णयों में उसका हस्तक्षेप अभीष्ट हो जाता है। अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश प्रवासियों ने अपने पासपोर्ट सम्बन्धी दस्तावेजों का निर्माण परिजन, गाँववालों, रिश्तेदार, नातेदार, मित्र, आभासी संसार के मित्रों के सहयोग से करवाया। इन प्रवासियों में कुछ ही ऐसे प्रवासी थे जो भ्रष्टाचार की भेंट नहीं चढ़े, इस सन्दर्भ को इस दृष्टान्त के माध्यम से सहजता के साथ समझा जा सकता है।

थाईलैण्ड से वापस लौटे प्रवासी देवेन्द्रजी ने फील्ड सर्वे के दौरान साक्षात्कार में बताया कि उन्होंने पासपोर्ट के लिए आवेदन तो स्वयं से कर लिया। कागजात सत्यापित कराने की ली गयी तिथि में सत्यापन स्थल पर पहुँचकर सत्यापन की प्रक्रिया को पूरा करवाया। सत्यापन की प्रक्रिया के कुछ दिन पश्चात स्थानीय थाने के बुलावे पर थाना स्तर पर कागजात सत्यापन के लिए पहुँचने पर एक सिपाही ने दस्तावेज की ओर इशारा करते हुए कहा कि इस पर यहाँ हस्ताक्षर कर दीजिए और तीन हजार रुपये भी जमा कर दीजिए तो उसने कहा कि सर हम इतना पैसे तो लाये नहीं हैं तो सिपाही ने कहा इतना पैसा लगता ही है। तो उस अभ्यर्थी ने पुलिस विभाग में कार्यरत एक करीबी को पूरी बात बतायी, तत्पश्चात करीबी ने सिपाही से बात की और अभ्यर्थी से सत्यापनकर्ता सिपाही को 100 रुपये चाय-पानी के लिए देने को कहा, अभ्यर्थी ने ऐसा ही किया। तत्पश्चात सत्यापनकर्ता सिपाही ने कहा कि ठीक है आपका काम हो जायेगा।

दूसरा प्रकरण स्वयं शोधार्थी के प्रतिभागी अवलोकन पर आधारित है। शोधार्थी ने प्राथमिक स्तर पर स्वयं से ही पासपोर्ट के लिए आवेदन किया। नियत तिथि पर स्वयं एवं कागजात का सत्यापन करवाया। इसके लगभग 10 दिन की समयावधि पर स्थानीय थाने ने एक फोन काल कर बताया कि आपके पासपोर्ट से सम्बन्धित कागज सत्यापन के लिए आये हैं। कल आ जाइये कागजात के सत्यापन के लिए, तो मैंने कहा कुछ अकादमिक कारणों से मैं तो कल आ नहीं सकूँगा, तो सिपाही ने कहा कि परिवार के किसी सदस्य को भेज दीजिए, काम हो जायेगा। ठीक है कहकर हमने फोन रख दिया, अगले दिन सुबह लेखक ने सिपाही के व्हाटसैप पर एक फोटो भेजते हुए लिखा कि अमुक सर आपके सेवारत जनपद में अभी सेवारत हैं, किन्तु उधर से कोई प्रति उत्तर नहीं प्राप्त हुआ, अगले दिन लेखक के बड़े भाई ने थाने पर पहुँचकर सम्बन्धित सिपाही से मिले तो, सिपाही ने कागजात को दिखाते हुए कहा कि यहाँ पर हस्ताक्षर कर दीजिए, वैसे इस प्रक्रिया में 2500-3000 रुपये लगते हैं, पर आप कम से कम 2200 रुपये दीजिए। यह सुनकर भैया ने कहा हम तो जल्दी में चले आये, इतने पैसे तो लाये नहीं हैं, तो सिपाही ने कहा कि शाम तक का समय है लाकर दे दीजिए, लेकिन किसी बड़े अधिकारी से सिफारिश न कराइयेगा, क्योंकि सभी जानते हैं कि इतना खर्च तो लगता ही है, तो सिफारिश कराने का क्या फायदा। उसने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि भैया के जाने के पहले मैंने सम्बन्धित सिपाही के व्हाटसैप पर फोटो शेयर करते हुए जानना चाहा था कि अमुक सर की तैनाती अभी इसी जनपद में है या नहीं, ऐसी स्थिति में भैया वापस चले आये। उन्होंने फोन पर पूरा प्रकरण बताया, मैंने ठीक है कहते हुए, फोन रख दिया।

दो दिन पश्चात शोधार्थी ने थाने पर पहुँचकर सम्बन्धित सिपाही से सम्पर्क किया तो सिपाही ने कहा अच्छा हुआ कि आप ही चले आये, इसके लिए तीन दिन का ही समय मिलता है। अच्छा कहते हुए शोधार्थी ने पूछा कि हस्ताक्षर कहाँ करना है, तो सिपाही ने कागजात पर हाथ की अंगुलियों से इशारा करते हुए बताया कि इन्हीं स्थानों पर करने हैं, अत: मैंने उन दो स्थानों पर हस्ताक्षर कर दिये। उन दोनों स्थानों पर हस्ताक्षर करने के पश्चात मैंने

कहा कि और कुछ? तो सिपाही ने कहा कि नहीं कागजात सम्बन्धी काम तो इतना ही था। इस सत्यापन की प्रक्रिया में ढाई से तीन हजार का खर्च लगता है। लेकिन आपस की बात है तो आप सिर्फ दो हजार रुपये ही दे दीजिए, आपका काम 2000 में ही करवा देंगे। आप स्टूडेन्ट हो। तो मैंने प्रति उत्तर में उस सिपाही से कहा कि सर और कुछ कम में सम्भव नहीं हो पायेगा, तो सिपाही ने कहा कि आप स्टूडेंट हैं यही समझकर मैं आप से सिर्फ 2000 ले रहा हूँ। आपका काम सिर्फ 2000 हजार में करवा रहा हूँ। कोई और होता तो ढाई हजार से कम में इस काम के होने का कोई सवाल ही नहीं उठता। तो प्रति उत्तर में मैंने कहा कि सर मैं पीएच.डी. स्टूडेंट हूँ और हमारा पीएच.डी. का कार्य भी इण्टरनेशनल माइग्रेशन पर आधारित है। इसलिए जिन सन्दर्भों की बात आप कर रहे हैं, उनकी जानकारी हमें भी है। पहली बात, कागजात सत्यापन की जो अवधि आप केवल 3 दिन बता रहे हैं वह अवधि 21 दिनों की होती है। 21 दिनों की अवधि में सम्बन्धित थाने को अपनी रिपोर्ट लगाकर भेजना होता है। जबकि दूसरी बात, जो आप कह रहे हैं कि कागजात के सत्यापन के लिए ढाई से तीन हजार का खर्च लगता है ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। यह प्रक्रिया पूरी तरह नि:शुल्क है। इसमें सम्बन्धित विभाग कागजात सत्यापन के खर्च को आवेदक द्वारा पासपोर्ट फार्म भरने के दौरान जमा की गयी पासपोर्ट शुल्क से स्वयं भेजता है। इससे अधिक विस्तृत जानकारी चाहें तो आप जनपद स्तरीय सम्बन्धित विभाग के जानकारों से आप बात कर लें या मैं स्वयं करवा दूँ, या प्रदेश स्तर के विशेषज्ञ व्यक्तियों व अधिकारियों से, इस तरीके से हमारी बात सुनकर उसके सुर पलक झपकते ही बदल गये उसने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं सर, हमारी बात को आप अन्यथा में मत लीजिएगा। माफ कीजिएगा।

अध्ययन में सामने आया कि इस प्रक्रिया में कुछ मात्र को छोडकर अधिकांश प्रवासी भ्रष्टाचार की भेंट चढ़कर ही यह प्राथमिक दस्तावेज प्राप्त कर पाते हैं। अर्थात् उन्हें पासपोर्ट के नाम पर सुविधा शुल्क देना ही पड़ता है। इसमें कुछ उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्होंने पहले अपने करीबी जनसेवा केन्द्र से पासपोर्ट के लिए आवेदन किया। प्राप्त जानकारी के अनुसार जनसेवा केन्द्र संचालकों ने किसी से 1800 रुपये तो किसी से दो हजार या पच्चीस सौ रुपये आवेदन करने के एवज में लिए। इसके पश्चात इस प्रकृति के प्रवासियों ने जनपद मुख्यालय के मुख्य डाकघर पर होने वाले कागज की जाँच तो स्वत: या किसी के साथ जाकर करवायी, पर पुलिस की जाँच प्रक्रिया की कड़ी में इन लोगों के एक हजार से पाँच हजार रुपये तक खर्च करने पड़े, तत्पश्चात इन्हें कुछ महीनों के इन्तजार के पश्चात पासपोर्ट प्राप्त हुए।

कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने अन्य किसी की मध्यस्थता से ही पासपोर्ट बनवाने की पूरी प्रक्रिया की। ऐसे प्रवासियों के इस प्रक्रिया में 5 से 10 हजार रुपये तक खर्च हुए, इस प्रक्रिया में शामिल लोगों से जुड़ी महत्वपूर्ण बात यह है कि मध्यस्थता करने वालों में भी अधिकांशत: परिजन, गाँववालों, रिश्तेदार, नातेदार, मित्र, आभासी संसार के मित्र या इन सभी के मित्र या इन सभी के मित्र के मित्र ही होते हैं। मध्यस्थता की आवश्यकता प्रवास के इच्छुकों में शिक्षा

और जागरूकता का अभाव के साथ ही मनुष्य का व्यक्तिनिष्ठ होना है। वर्तमान परिदृश्य में लोगों की लोगों पर से मान्यता, विश्वास के कम होने से है। इस तथ्य को अध्ययन क्षेत्र के 40 वर्षीय उत्तरदाता के द्वारा कही गयी बात से समझा जा सकता है कि "क्षेत्र में एक व्यक्ति ऑनलाइन सेवाएँ उपलब्ध कराता था। लम्बे समय तक कार्य करते हुए वह क्षेत्रीय लोगों का विश्वासपात्र बन गया। विश्वासपत्र बनकर लोगों की व्यक्तिगत जानकारियाँ विदेशों में भेज कर पैसा कमाने लगा, इसके काले कारनामों का खुलासा एक प्रकरण में इस ऑनलाइन केन्द्र और उसके संचालक के नाम आने से हुआ। इस प्रकरण से ज्ञात हुआ कि वह क्षेत्रीय लोगों की व्यक्तिगत जानकारी को नाइजीरिया भेजता था, भेजे गये आंकड़ों का उपयोग करते हुए हैकर नाइजीरिया में बैठकर यहाँ के लोगों को ठगते थे। इस प्रकरण के तार करोड़ों रुपये के घोटाले से जुड़े हुए थे।"

कागजात की जाँचोपरान्त पासपोर्ट बनवाने की प्रक्रिया में अगला अभीष्ट पुलिस सत्यापन का होता है, सत्यापन की इस प्रक्रिया में अपवाद को छोड़कर लगभग सभी इसे लाभ के अवसर के रूप में देखते हैं। इस प्रक्रिया में पुलिस मनमाना पैसा वसूलती है। शीघ्रताशीघ्र प्राप्त करने की आवश्यकता वाले अभ्यर्थी तो इनको बड़े अवसर प्रदान करने वाले होते हैं। जो अशिक्षित, अजागरूक हैं उनको डरा-धमकाकर, जो थोड़ा पढ़े-लिखे हैं उनसे भी यह कहते हुए कि इस कार्य में इतना खर्च लगता ही है इसलिए आपको भी देना होगा, लोग परेशानी और संघर्ष करने से बचने के लिए देते भी हैं। पासपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात अगला अभीष्ट वीजा प्राप्त करने के साथ-साथ जाने की प्रक्रिया में लगने वाले खर्च की व्यवस्था करना होता है। अध्ययन में पाया गया कि जिन परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बेहतर थी, साथ ही जिनके परिजन या करीबी पहले से इन दक्षिण पूर्व एवं पश्चिमी देशों में थे उन्हें अपेक्षाकृत कम समस्याओं का सामना करना होता है।

क्षेत्रीय सर्वेक्षण में मैंने पाया कि वीजा प्राप्त करने के भी तीन स्वरूप सामान्य रूप से प्रचलित हैं जो अग्रलिखित हैं -

पहले स्वरूप के अन्तर्गत विदेशी, संस्था, कम्पनी से सीधे वीजा प्राप्त करने की प्रक्रिया होती है, इस प्रक्रिया के अन्तर्गत वीजा प्राप्त करने वालों की संख्या बहुत कम थी, इसके अन्तर्गत खासकर ऐसे प्रवासी शामिल रहे जिन्होंने अपेक्षाकृत उच्च स्तर की पढ़ाई की थी। ऐसे प्रवासियों ने भर्ती की प्रक्रिया को ऑनलाइन मोड में ही पूरा किया था, इस प्रक्रिया के तहत सेवा अर्जित करने वालों के लिए भी परिवारजन, सगे-सम्बन्धियों का नैतिक, सामाजिक, आर्थिक सहयोग उनके प्रवास की प्रक्रिया में सहयोग करता मिला।

द्वितीयक स्वरूप में विदेशों में पहले से रह रहे परिजन या करीबी सदस्य क्रमशः प्रथम और द्वितीय दोनों तरीके में विश्वसनीयता का स्तर सर्वाधिक है। द्वितीयक स्तर की इस प्रक्रिया में परिजनों, गाँववालों, रिश्तेदारों, नातेदारों की भूमिका अतिमहत्वपूर्ण होती है, ऐसे प्रवासी परिजन जो पहले से विदेश में रहते हैं, अपनी कम्पनी या अपने सम्पर्क के स्थान में रोजगार के अवसर की जानकारी होने पर सम्बन्धित सक्षम व्यक्ति या अधिकारी से बात कर

इच्छुक प्रवासी के विषय में पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हुए सक्षम व्यक्ति या अधिकारी को अपेक्षित रुचि का व्यक्ति मिलने पर, इस सन्दर्भ में विस्तृत बात कर लेता है। तत्पश्चात निश्चित प्रक्रिया के अन्तर्गत सम्बन्धित कम्पनी से वीजा प्राप्त कर लेता है। वीजा प्राप्त कर उसे ऑफलाइन या ऑनलाइन माध्यम से भिजवाता है। गन्तव्य से वीजा प्राप्त कर इच्छुक प्रवासी दिये गये निश्चित समय में प्रवास से सम्बन्धित सभी आवश्यकताओं को पूरा कर लेता है।

तृतीयक स्वरूप में विदेशी कम्पनी के भारत में स्थापित एजेन्सीज, सेन्टर या इन एजेन्सी या सेन्टर से सम्बद्ध पंजीकृत गैर पंजीकृत संस्थाएँ या व्यक्ति अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक प्रवासियों के वीजा प्रदाता हैं। महत्वपूर्ण यह है कि अध्ययन क्षेत्र में वीजा प्राप्त करने के माध्यमों में इसकी स्थिति सर्वोपरि है, पर विश्वसनीयता में क्रमशः प्रथम, द्वितीय स्वरूपों की अपेक्षा सर्वाधिक कम। अध्ययन क्षेत्र के एक 50 वर्षीय दुबई से वापस लौटे उत्तरदाता ने बताया कि हम गन्तव्य पर जिस कार्य में संलग्न थे उस क्षेत्र में गैर पंजीकृत व्यक्तियों समेत एजेन्सीज, और केन्द्रों की संख्या सैकड़ों है, जिनकी वजह से सही काम करने वाला पंजीकृत सेवा प्रदाता बदनाम होता है। उसने कहा कि जैसे 'गेहूँ के साथ घुन भी पीसा जाता है' अर्थात् एक समान क्षेत्र और प्रकृति में काम करने वालों में से किसी एक के द्वारा किये गये कार्य का गलत प्रभाव अन्य सभी पर पड़ता है। एक दूसरे उत्तरदाता ने कहा कि 'एक ही मछली पूरे तालाब को गन्दा कर देती है', अर्थात् किसी एक की गलती की सजा का नुकसान, जो गलती नहीं किये होते हैं उन्हें भी उठाना पड़ता है। इन एजेन्सीज तक प्रवासियों की पहुँच का काम परिजन, गाँववाले, रिश्तेदार, नातेदार, मित्र या इन सभी के मित्र या इन सभी के मित्र के मित्र करते हैं।

इन इच्छुक प्रवासियों और स्थानीय स्तर की एजेन्सीज के मध्य पुल का काम गाँव-गाँव में उपस्थित मध्यस्थता करने वाले हैं। ये मध्यस्थता करने वाले लोग स्थानीय स्तर पर प्रवास से सम्बन्धित प्राथमिक जानकारी के स्रोत के रूप में होने के साथ ही स्थानीय स्तर पर एजेन्सीज के घोषित, अघोषित प्रतिनिधि के रूप में होते हैं। इनकी कमाई का जरिया स्थानीय स्तर के इच्छुक प्रवासी ही होते हैं जिन्हें ये एजेन्सी या सेन्टर के बारे में प्राथमिक जानकारी देने के साथ ही एजेन्सीज के कार्यस्थल तक पहुँचाते भी हैं। इच्छुक प्रवासियों को अपने स्थानीय स्तर के व्यक्ति द्वारा इनकी ही भाषा में प्रवास से सम्बन्धित पूरी जानकारी उपलब्ध हो जाती है, इच्छुक प्रवासी अपनी प्राथमिकताओं से सम्बन्धित बातें अपने स्थानीय स्तर के व्यक्ति को बताता है, प्रति उत्तर में मध्यस्थता करने वाला सम्बन्धित से उपयुक्त काम और देश के बारे में बताता है, साथ ही मध्यस्थता करने वाला कागजी प्रक्रिया के बारे में जानकारी देने के साथ खर्चों के बारे में भी उससे बताता है। फिर ये एक-दूसरे के सम्पर्क में रहना शुरू कर देते हैं, इसके पश्चात जानकारियों के आदान-प्रदान का प्रवाह चलता रहता है। जानकारियों के आदान-प्रदान करने की प्रक्रिया में मध्यस्थता करने वाला प्रवासी से ये भी बता देता है कि कब वैकेन्सी या विज्ञप्ति या भर्ती आयेगी या होगी।

उसके पहले इस प्रक्रिया में लगने वाले खर्च को आप जुटा लीजिए, जिससे ससमय काम करके आप आगे बढ़ जाएँ। इस तरह की भर्ती प्रक्रिया में अमूमन दो स्वरूप प्रचलित हैं, इसमें प्रथम स्वरूप के अन्तर्गत कम्पनी का एच.आर. (ह्यूमन रिसोर्स) जिसका कार्यालय अमूमन मुम्बई, दिल्ली या कोलकाता में होता है। वह यहाँ अधिकृत एजेन्सी या सेन्टर पर आता है। कम्पनी को अपेक्षित भर्ती प्रक्रिया में शामिल अभ्यर्थियों का शारीरिक मानसिक अभिक्षमता के साथ ही साथ कौशल का परीक्षण करता है। इसके अन्तर्गत इच्छुक प्रवासियों में इलेक्ट्रीशियन, फिटर, पाइप फिटर, वेल्डर, गैस वेल्डर, बढ़ई, ए.सी. रिपेयरिंग करने वाला मैकेनिक, मेसन या मिस्त्री, आदि कौशल आधारित कार्यों में रुचि वाले होते हैं। अभ्यर्थियों के शारीरिक मानसिक अभिक्षमता के साथ-साथ कौशल परीक्षण करने की प्रक्रिया में सुविधा शुल्क का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान होता है। जितने अधिक सुविधा शुल्क इच्छुक प्रवासी के द्वारा देय होता हैं, उतने अधिक उस प्रवासी के चयनित होने की सम्भावना बनी रहती है। इस प्रक्रिया में शामिल अधिकांशत: अर्द्धकौशल, गैरकौशल और कुछ कौशल वाले श्रमिक ही होते हैं। दूसरा स्वरूप ऐसे इच्छुक प्रवासियों का होता है जो घरेलू कार्यों में सहायक, कार्यालय सहायक, अनुचर, प्रेसमैन, हेयर कटिंग, दर्जी, होटल उद्योग कर्मी, ड्राइवर, दुकानदार, आदि से सम्बन्धित कार्यों में रुचि रखने वाले प्रवासी शामिल होते हैं। इस द्वितीयक स्वरूप में अधिकांशत: व्यक्तिगत सम्पर्कों के जो मुख्यत: परिजनों, गाँव, रिश्तेदार, नातेदार, मित्र के रूप में जुड़े लोग ही होते हैं। जिनके माध्यम से प्रवास से जुड़ी सम्पूर्ण प्रक्रिया हो पाती है।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह प्रक्रिया भी पूर्णत: विश्वसनीय नहीं है। क्योंकि ये प्रवासी अधिकांशत: अर्द्धकुशल, अकुशल, कम शिक्षित और कम जागरूक होते हैं। ये भी गन्तव्य स्थल पर पहुँच गये जरूर होते हैं, पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास की जटिल सम्पूर्ण प्रक्रिया की जानकारी इन्हें भी बेहतर तरीके से नहीं होती, अत: यात्रा से पूर्व, दौरान और गन्तव्य स्थल पर इनके शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, जागरूकता के स्तर के जैसे ही मित्र बन पाते हैं क्योंकि इच्छुक प्रवासियों के जो भी सम्पर्क के प्रवासी हैं, अमूमन वे जिस प्रक्रिया के तहत गये होते हैं वही प्रक्रिया इच्छुक प्रवासी को भी बताते हैं। जबकि कुछ प्रवासी उनके गन्तव्य स्थलों पर जाने से बने गन्तव्य स्थल के अन्य प्रवासी मित्रों, यात्रा की प्रक्रिया में बने प्रवासियों के द्वारा दिये गये अवसरों, सुझावों या बताये गये रास्तों के अनुसार बताते हैं। इन्हें कार्यदायी संस्था के शीर्ष स्तर के अधिकारियों एवं भर्ती करने वाली कम्पनी की वास्तविक मंशा की जानकारी तो होती नहीं है। ये प्रवासी गलत सही का आकलन सूचना देने वाले व्यक्ति से सम्बन्धों की घनिष्ठता के आधार पर करते हैं न कि कार्यदायी संस्था और भर्ती करने वाली कम्पनी के अतीत की जानकारी कर, ऐसी स्थिति में इच्छुक प्रवासी की स्थिति जाने-अनजाने भगवान भरोसे हो जाती है। इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास की प्रक्रिया में यदि सब कुछ अच्छा-अच्छा रहा तो बहुत सुखद-बहुत बेहतर, यदि नहीं तो नहीं के स्वरूप के विविध स्तर आपको दिखायी पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में मध्यस्थता करने वाले प्रवासी से नवागन्तुक प्रवासी एवं उनके परिवार से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है।

1.1 अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास की अर्थव्यवस्था में सोशल नेटवर्क की भूमिका

किसी भी देश, या समाज की व्यवस्था में अर्थ की केन्द्रीय भूमिका होती है, अध्ययन क्षेत्र के प्रवासियों की अर्थव्यवस्था को समझने का प्रयास किया तो ज्ञात हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के लिए आवश्यक धन प्रवासियों को उनके परिजनों, रिश्तेदारों, गाँववालों, नातेदारों एवं मित्रों से प्राप्त होता है। इन सब में परिजनों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण देखी गयी, दूसरे स्तर पर आर्थिक रूप से सहयोग करने वालों में रिश्तेदार या नातेदार होते हैं। कुछ उत्तरदाता ऐसे भी मिले जिन्होंने आर्थिक सहयोग अपने रिश्तेदारों से न लेकर अपने मित्रों, दोस्तों से लेने को तरजीह दी। इस आर्थिक सहयोग लेने के मामले में तीसरे क्रम में मित्र और दोस्त आते हैं। प्रवासियों ने आर्थिक सहयोग लेने के प्राथमिकता के मामले में गाँववालों को सबसे अन्तिम पायदान पर रखा। इसके कारणों के सन्दर्भ में जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि गाँव के किसी भी व्यक्ति से आर्थिक सहयोग लेने पर अनेक व्यावहारिक दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। एक बात तो यह है कि गाँव के व्यक्ति से लेन-देन करने पर लेन-देन की गोपनीयता बनाये रखना बहुत मुश्किल हो जाता है। कई प्रवासी इस तरह के भी मिले जिनको यात्रा में लगने वाले खर्च को साहूकार से ब्याज पर पैसा लेकर जाना पड़ा, तो कुछ को अपने खेत एवं जेवर गिरवी रखकर इस वायदे के साथ कि जब हम वहाँ गन्तव्य या परदेश पहुँच जाएँगे, वहाँ पैसा कमाकर अपने गिरवी रखे खेत और जेवरों को छुड़ाएँगे। जबकि कुछ प्रवासियों को प्रवास करने के लिए अपना खेत तक बेचना पड़ा है।

1.2 अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास और सामाजिक व्यवस्था में सोशल नेटवर्क की भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास से पूर्व प्रवासी को अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास से सम्बन्धित सभी प्रकार के सामाजिक प्रशिक्षण अनौपचारिक रूप से समाज से समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से सहजता से प्राप्त हो जाता है। इसमें भी सोशल नेटवर्क के प्रमुख तत्वों परिजन, गाँववालों, रिश्तेदारों, नातेदारों की भूमिका अति महत्वपूर्ण होती है। जब प्रवासियों को नैतिक सहयोग देने की बात होती है, उसमें आपसी सगे-सम्बन्धी पूरी तरह से आगे आकर प्रवासी से कहते हैं कि आप खुशी-खुशी जाइये 'चिन्ता मत करिहा, इहां के लिए एकदम चिन्तित न रहिहा, इहां घर पर तौ हमरे सबै हइयै बानी'। अपने सगे सम्बन्धियों के मुँह से प्रवासी जब ऐसी बातों को सुनता है तो उसके मन को बहुत अच्छा लगता है, उसमें अधिक विश्वास आता है, उसको दिली प्रेरणा प्राप्त होती है। फिर वह अपने प्रवास करने के फैसले पर पुनः दुगने मनोयोग के साथ संकल्पित हो जाता है। आस-पास के सगे-सम्बन्धी से बात करने पर प्रवासियों को अपने लिए उपयुक्त रोजगार, गन्तव्य के चयन में मदद मिलती है। घर सें निकलने के साथ ही यात्रा सम्बन्धी दुविधाओं या प्रतिकूल स्थिति में अनुकूल स्थिति बना लेने का कौशल भी प्रवासी को समाज से समाजीकरण के माध्यम से सहज ढंग से प्राप्त हो जाता है। घर से गन्तव्य के लिए निकलने से पूर्व की तैयारियों को सगे-सम्बन्धी मिलकर सहजता के साथ पूरा करवाते हैं। उस घड़ी में जब प्रवासी अपने घर-परिवार से गन्तव्य के लिए निकल रहा होता है तो उस समय भी

सगे-सम्बन्धी आकर विदाई के दु:खद वातावरण को भी सुखद और प्रेरणादायी बनाने का कार्य करते हैं। वे प्रवासी और प्रवासी परिवार को भी समझाते हैं, प्रवासी परिवार को समझाते हुए कहते हैं कि 'धीरज रखिं हँसी-खुशी के साथ बाबू को विदा कीजिए, आशीर्वाद दीजिए कि जहाँ रहें हँसी-खुशी के साथ रहें, स्वस्थ्य रहें, सुखी रहें, अच्छे से काम करें'। इसके साथ ही प्रवासी को समझाते हुए कहते हैं कि 'परदेश जाके पहुँचय के खबर हम सबके दै दीहा, घर परवार के चिन्ता न किहा, मन लगा के काम कीहा'। इन सब से बने वातावरण के मध्य प्रवासी विदाई की घड़ी में उपस्थित सभी बड़ों के चरणस्पर्श कर आशीर्वाद लेते हुए, साथ ही अपने से कनिष्ठों को आशीर्वाद देते हुए घर से विदा लेता है। विदा की इस बेला में घर वालों के अन्तिम शब्द यही रहते हैं कि पहुँचने के बाद फोन जरूर कीजिएगा, किसी तरह की चिन्ता न कीजिएगा। परिजनों के साथ प्रवासी के सगे-सम्बन्धी भी उसके बैग आदि लेकर उसे पहुँचाने नजदीकी बड़े स्टेशन या हवाई अड्डा जाते हैं। परिजनों और प्रवासियों का साथ बस या ट्रेन में सीट पर बैठाने तक का होता है, जबकि हवाई जहाज के सन्दर्भ में हवाई अड्डे के गेट से बाहर तक का ही होता है। फिलहाल अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के माध्यम में सर्वाधिक भूमिका हवाई परिवहन की ही रही है।

2. द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के दौरान सोशल नेटवर्क की भूमिका

परिजनों को स्नेह और आशीर्वाद प्राप्त कर जब प्रवासी जहाज पर सवार होता है। यह पहली हवाई जहाज की यात्रा प्रवासी के लिए सदैव के लिए अविस्मरणीय होती है। अध्ययन में पाया गया कि वे अपनी पहली यात्रा किसी पूर्व प्रवासी के साथ ही करने का प्रयास करते हैं। जिससे प्रवास में होने वाली दुश्वारियों या समस्याओं से बचा जा सके, जैसे - एक उत्तरदाता ने बताया कि जब हम हवाई जहाज पर बैठे तो हमारे साथ में एक हमारे रिश्तेदार बगल वाली सीट पर बैठे थे जिनके साथ हम गन्तव्य स्थल पर जा रहे थे, पहली बार इतनी लम्बी दूरी के लिए निकले थे और वह भी पहली बार जहाज से, तो मन व्यथित था और चिन्तित भी था। बहुत घबड़ाहट हो रही थी तो उन्होंने हमें सान्त्वना देते हुए, सँभालते हुए कहा कि जब घर पर रहकर काम-धाम करते रहते तो भीड़ का हिस्सा आप भी बने रहते, कोई दिक्कत ही नहीं आती। सब बारी-बारी आपकी कुशलता पूछा करते तो आपको अकेलेपन का एहसास भी न होता। मैं जान रहा हूँ, गन्तव्य के इस मार्ग पर, परदेश के इस सफर पर अकेले पड़ गये फिर भी भैया आप विचलित या चिन्तित न होइए, घर से दूर जाने का निश्चय किये हो, तो तकलीफ तो आयेगी ही। एक दूसरे उत्तरदाता ने कहा कि कुछ पाने के लिए तो कुछ खोना भी पड़ता है, एक अन्य उत्तरदाता ने कहा कि कहीं पहुँचने के लिए कहीं से निकलना तो पड़ेगा ही। गन्तव्य की इस यात्रा पर अकेले भले पड़ गये हों, पर पीछे हटना मत आपके सामने परेशानियाँ कितनी भी आएँ हारना मत, लगातार डटे रहना, देखना एक दिन यह फैसला पहचान बनेगा। उपर्युक्त बातें किसी एक प्रवासी की नहीं अपितु लगभग प्रत्येक प्रवासी की हैं। साथ में जहाज में बैठे अन्य सहयात्री प्रवासी भी अपने अन्य साथियों को याद दिलाते हैं कि इस प्रक्रिया में

आप ही नहीं वरन् हम सभी हैं। आप हैरान, परेशान न हों, साथ के अन्य यात्रियों के इस तरह बताने और जताने पर प्रवासी को बड़ी राहत के साथ ही साथ विश्वास प्राप्त होता है। वह अपने मन को स्थिर रख पाता है, ढाँढस बँधा पाता है। इसके परिणामस्वरूप उसके अन्त:मन में एक अलग प्रकार की ऊर्जा और आत्मविश्वास का संचार होता है। इस तरह अनेकों विचारों के अन्तर्द्वन्द्व के बीच प्रवासियों की मंजिल आ जाती है।

3. तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के पश्चात सोशल नेटवर्क की भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास की तृतीयक अवस्था में गन्तव्य स्थल के हवाई अड्डे पर जब प्रवासी का हवाई जहाज पहुँचने वाला होता है, तो जिन नवप्रवासियों के साथ पूर्वप्रवासी रहते हैं वे अपनी सुविधानुसार साधन का प्रबन्धन करके प्रवासी को अपेक्षित गन्तव्य स्थल तक बगैर किसी परेशानी के पहुँचा देते हैं, तो ऐसे में किसी अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ जाने में आसानी होती है, जबकि इसी यात्रा की प्रक्रिया में जो अकेले गये हुए होते हैं उनके लिए खाड़ी देशों के मामले में कम्पनी के प्रतिनिधि या अरबाब के प्रतिनिधि तख्ती पर नाम लिखकर लेकर आते हैं। हवाई अड्डे के यात्रियों के बाहर निकलने वाले गेट पर खड़े रहते हैं। प्रवासी अपने नाम की तख्ती लिए हुए व्यक्ति को खोजकर उसके साथ कम्पनी या रूम जहाँ उसे निर्देश प्राप्त रहता है, वहाँ चला जाता है। जबकि इन यात्रियों में ऐसे भी प्रवासी थे जिनको लेने के लिए कोई नहीं आता। इन्हें सम्बन्धित अरबाब या कम्पनी के द्वारा दिये गये, गूगल पते या ऑफलाइन मोड में दिये गये पते पर जाना होता है, जो नवप्रवासियों के लिए समस्या का सबब होता है।

खाड़ी देशों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास करने वाले प्रवासियों के सापेक्ष हम यदि दक्षिण पूर्व एशिया में प्रवास करने वाले प्रवासियों की बात करें तो उनमें लगभग शत-प्रतिशत सोशल नेटवर्क की भूमिका पायी गयी है। ये प्रवासी अपने किसी न किसी सगे सम्बन्धी के साथ ही घर से निकलते हैं। हवाई जहाज की यात्रा करके जब ये अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँचते हैं तो इन्हें कोई लेने नहीं आता है। इनके साथ में जो पूर्वप्रवासी है वह अपना प्रबन्धन करके इन्हें हवाई अड्डे से अपने गन्तव्य स्थल पर स्थित आवास पर ले जाता है। कुछ दिनों तक अपने ही कमरे पर या आस-पास अतिरिक्त कमरा लेकर रहता है। यहाँ दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रवास करने वाले प्रवासी अधिकांशत: अपने स्वयं के व्यवसाय में संलग्न हैं। ये पूर्व में गये प्रवासी व्यवसायी इन्हें अपने पास ले जाते हैं। उन्हें प्राथमिक स्तर पर कार्य की प्रकृति के बारे में प्रशिक्षित करते हैं, बताते हैं। जब साथ में गया प्रवासी पूरी तरह से प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता है तो वह उनके व्यवसाय में सहायक के रूप में काम करने लगता है। जब प्रवासी गन्तव्य स्थल पर पहुँचता है तो उसके प्रवास काल के आरम्भिक समय में प्रत्येक स्तर पर प्रवासियों के सामाजिक सम्बन्धों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। प्रवासियों के शुरूआती समय की प्रतिकूल परिस्थिति सामाजिक सम्बन्ध 'सहारे की लाठी बनते' हैं। दो-तीन दिन लगभग यही

गतिविधि सक्रिय रहती है। फिर धीरे-धीरे नवप्रवासी पुराने गये प्रवासियों से जुड़ी गतिविधियों को समझकर उस पर खुद आगे बढ़ने के मार्ग में अग्रसर हो जाता है।

प्रवासियों के मामले में एक सर्वमान्य बात निकलकर सामने आई है कि प्रवासी को शुरूआती दिनों में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये शुरूआती समस्याएँ कुछ प्रवासियों के लिए कहीं अधिक गम्भीर या बड़ी होती हैं। अधिक समस्याओं का सामना करने की स्थिति में कोई अपना यदि गन्तव्य स्थल पर होता है तो वह सहारे की लाठी बनकर खड़ा हो जाता है। जिससे प्रवासी को अनजान देश में बहुत बल और विश्वास प्राप्त होता है। इस तथ्य को दुबई से वापस लौटे एक 57 वर्षीय पुरुष प्रवासी ने साक्षात्कार के दौरान कही बात से समझा जा सकता है। वे कहते हैं कि जब हम नवागन्तुक प्रवासी के रूप में दुबई में गये थे तो हमें रहने खाने के साथ-साथ वहाँ समायोजित होने में अनेकों प्रकार की दिक्कतें आ रही थीं। ऐसी स्थिति में हमारे परिचित के भैया जी हमारे कमरे पर आये, उन्होंने कहा कि देखो मित्र एक दिन में कुछ नहीं होता, लेकिन एक दिन जरूर हो जाता है। तुम्हें यदि कुछ प्राप्त करना है तो प्रत्येक दिन आपको तपना पड़ेगा, मन हो या न हो, तुम्हें अपने कार्य के प्रति हमेशा पूरी लगन के साथ समर्पित रहना होगा। क्योंकि इस धरा पर जिसने भी अलग रास्ता चुना है उसे आराम को पीछे छोड़ना ही पड़ा है। कहा भी गया है कि 'लीक-लीक कायर चलै, लीकहिं चलै कपूत और लीक छांड़ि तीनों चले शायर, सिंह, सपूत' अर्थात् बने बनाये रास्तों पर कायर, जो संघर्ष से विचलित होते हों और कपूत ही चलते हैं, जबकि खुद के बनाये रास्तों पर चलने वाले ही शायर, सिंह और सपूत हो सकते हैं। उनके द्वारा अनजान शहर में अपनापन दिखाते हुए कही गयी इन बातों से हमारे अन्दर एक अजब आत्मविश्वास का संचार हुआ। थाईलैण्ड में प्रवास करने वाले लगभग 60 वर्षीय प्रवासी उत्तरदाता ने साक्षात्कार के दौरान बताया कि जब हम पहली बार थाईलैण्ड में गये तो हम अपने रिश्तेदार के साथ रहे, कुछ दिनों के बाद जब हमारे रिश्तेदार कुछ घरेलू काम से घर चले आये तो हमें काम करने में पूरी तरह अरुचि होने लगी। इन्हीं दिनों हमारे कमरे में आग लग गई। किसी तरह आस-पास के लोगों के सहयोग से आग पर काबू पाया गया। उसके बाद वहाँ रहना हमारे लिए और अधिक कठिन होने लगा। भाग कर वापस आ नहीं सकते थे। तब फोन की कोई सुविधा भी नहीं थी कि अपने रिश्तेदारों को पूरी बात बता सकें, घर पर बात करके कुछ हल्का हो लें। इस स्थिति में काफी घबराहट, बेचैनी हो रही थी, ऐसे में कुछ दूरी पर एक और रिश्तेदार रहते थे जिन्होंने थाईलैण्ड में सहारा दिया, जिससे हम आग लगने के पश्चात की बेहद प्रतिकूल स्थिति में रह सके। डेढ-दो महीने का समय किसी तरह बड़ी मुश्किल से काटना पड़ा। दो महीने के पश्चात जब घर से वापस गन्तव्य स्थल पर रिश्तेदार आये तो उन्हें डरते हुए पूरा प्रकरण बताया। उन्होंने कहा कि आप स्वस्थ हो तो कोई दिक्कत नहीं, हम लोग मिलकर कमाएँगे। फिर सबकुछ पहले जैसा बेहतर हो जायेगा। आप इस बारे में बिलकुल भी चिन्ता न करिये, तब हमारी जान में जान आई, अर्थात् मैंने राहत की साँस ली।

अध्ययन से पता चलता है कि प्रवासी की समाज में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये प्रवासी अपने परिवार के साथ ही समाज के लिए गतिशीलता के प्राथमिक चालक होते हैं। अध्ययन में पाया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन और रोजगार का निर्णय किसी व्यक्ति द्वारा लिये जाने वाले सबसे महत्वपूर्ण निर्णयों में से एक होता है। इन निर्णयों को प्रभावित करने में सोशल नेटवर्क की भूमिका अति महत्वपूर्ण देखने को प्राप्त हुई। प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन सभी प्रक्रियाओं में पहले सर्वाधिक दायित्व सगे-सम्बन्धियों का था। डिजिटल मीडिया के आने के पश्चात नव प्रवासियों को अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास के पूर्व, दौरान और पश्चात के लगभग समस्त पक्षों पर जानकारी प्राप्त करना अपेक्षाकृत सहज और सुलभ हो गया है। प्रवासियों को जाने के पूर्व की प्रक्रिया, प्रवासियों को प्रवास के मार्ग से जुड़ी चुनौतियों, समस्याओं के बारे में एवं गन्तव्य स्थल पर जीवन और जीवन जीने की संस्कृति के बारे में डिजिटल मीडिया के माध्यम से बहुत सहज ढंग से जानकारी प्राप्त हो जाती है जिससे प्रवासी प्रवास प्रक्रिया से पूर्व ही प्रवास से जुड़ी गतिविधियों के लिए कई स्तरों पर रणनीति बना लेता है। जिसका सीधा असर प्रवासियों पर पड़ता है। परिणामस्वरूप प्रवास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत अधिक सहज, सरल और सुरक्षित हुई।

निष्कर्ष

अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि दक्षिण पूर्व एवं खाड़ी देशों में होने वाले प्रवास की सम्पूर्ण प्रक्रिया में सोशल नेटवर्क की अहम् भूमिका होती है (राय और भगत, 2021; ची गुआंगहुआ, 2020; तौकीर एम., 2017; ब्वायड और नोवाक, 2018; पोरोस 2011)। इस सोशल नेटवर्क में परिजनों, रिश्तेदार, दूर के रिश्तेदार, मित्र, गाँव के लोग शामिल रहते हैं। ये तथ्य अभी तक खाड़ी देशों पर केन्द्रित अध्ययनों में प्रमुखता से सामने आये हैं, यह अध्ययन इस मामलों में अभी तक हुए अध्ययनों से भिन्न है कि दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों, यथा - थाईलैण्ड, सिंगापुर में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में भी सोशल नेटवर्क की महत्वपूर्ण भूमिका अध्ययन में पायी गयी है। अध्ययन क्षेत्र से दोनों क्षेत्रों या दिशाओं में प्रवास करने वाले प्रवासियों को प्रवास सम्बन्धी विविध निर्णय लेने, पासपोर्ट बनवाने, प्रवास की प्रक्रिया एवं गन्तव्य स्थल पर सहज ढंग से रहते हुए, सुचारू रूप से कार्य करते रहने की प्रक्रिया में सोशल नेटवर्क अर्थात् सगे सम्बन्धियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अध्ययन में पाया गया कि दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में प्रवास करने वाले प्रवासियों को गन्तव्य स्थल पर शत-प्रतिशत रोजगार की जानकारी अपने सगे-सम्बन्धियों के माध्यम से ही हुई है। दूसरी ओर पश्चिमी एशियाई देशों में प्रवास करने वाले प्रवासियों को नौकरियों की जानकारी और वर्क परमिट प्राप्त करने के सबसे बड़े स्रोत के रूप में क्रमशः परिजनों, नाते-रिश्तेदारों, मित्रों, रिक्रूटमेंट एजेन्सियों, ठेकेदारों एवं एजेन्ट्स की रही, अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास में प्रवास की वित्तीय लागत की व्यवस्था अधिकांशतः परिजनों, रिश्तेदारों, मित्रों, गाँव वालों से ही प्राप्त की, यात्रा के दौरान की बात की जाये तो दक्षिण पूर्व एशिया में प्रवास करने

वाले प्रवासियों को शत-प्रतिशत अपने सगे सम्बन्धियों का साथ मिला, उन्होंने किसी न किसी सगे सम्बन्धी के साथ ही प्रवास किया, जबकि पश्चिम एशियाई देशों की ओर यदि प्रवास की बात करें तो पाते हैं कि इस दिशा में प्रवास करने वालों में अधिकांश को यात्रा के दौरान अपने सगे-सम्बन्धियों का साथ प्राप्त हुआ, कुछ प्रतिशत प्रवासी ऐसे भी थे जो रिक्रूटमेंट एजेन्सियों, एजेन्ट और ऑनलाइन माध्यम से, अपनों के माध्यम से अपनी प्रवास प्रक्रिया पूरी की।

सन्दर्भ

असिकोगु (2018) 'अ क्रिटिकल रिव्यू ऑफ एरिस्टोटल व्यू ऑन ह्यूमन सोसाइटी', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमिनिटी एंड सोशल साइंसेज,* अंक 2.

चौहान, आइ.एस (2018) 'फीजी के भारतवंशी या भारतवंशी फीजियन कतिपय ऐतिहासिक पक्ष', *मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल,* 17-30.

भारत सरकार जनगणना 2011.

भारत सरकार का विदेश मन्त्रालय, भारत सरकार 2014-2015.

भारत सरकार का विदेश मन्त्रालय, भारत सरकार 2018.

कोएड्स, (1968) द इंडियनाइज्ड स्टेट्स ऑफ साउथ ईस्ट एशिया, होनोलुलु, कुआलालम्पुर, सिंगापुर, यूनिवर्सिटी ऑफ मलाया प्रेस.

गुलाटी (1983) 'मेल माइग्रेशन टू मिडिल ईस्ट एंड द इम्पैक्ट ऑन द फैमिली - सम एविडेंस फ्रॉम केरला', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली.*

जॉन, (2018) सोशल नेटवर्क एंड इंटरनेशनल माइग्रेशन, एम्सटर्डम यूनिवर्सिटी प्रेस, एम्सटर्डम

जयराम (2011) *डायवर्सिटीज इन द इंडियन डायस्पोरा - नेचर इम्प्लिकेशन, रेस्पोंसेस,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीज प्रेस, नई दिल्ली.

जैन एंड गुप्ता (2013) *इंडियन डायस्पोरा इन द एरा ऑफ ग्लोबलाइजेशन, एशियन एथनिसिटी,* रूटलेज, लन्दन.

तौकीर, (2017) नेचर एंड कांसिक्वन्सेज ऑफ माइग्रेशन टू गल्फ कन्ट्रीज : अ स्टडी ऑफ सिलेक्टेड रूरल एरियाज ऑफ अल्लाहाबाद डिस्ट्रिक्ट इन इंडिया.

नायडू (1991) 'इन्डियाज लेबर माइग्रेशन टू द किंगडम ऑफ सऊदी अरेबिया', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली.*

पारेख (1993) 'सम रिफ्लेशन्स ऑन द इंडियन डायस्पोरा', *जर्नल ऑफ कंटेम्परेरी थॉट,* वॉल्यूम 3, पेज 105-151.

प्रणव (2008) इंडियन डायस्पोरा इन थाई-इंडिया कोऑपरेशन, इंस्टिट्यूट ऑफ पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट स्टडीज.

पोरोस, एम. (2011) 'माइग्रेशन सोशल नेटवर्क्स : व्हीकल्स फॉर माइग्रेशन', *इंटीग्रेशन एंड डेवलपमेंट द ऑनलाइन जर्नल ऑफ द माइग्रेशन पॉलिसी इंस्टीट्यूट.*

मैकाइवर एंड पेज (1959) *सोसाइटी, एन इंट्रोडक्टरी एनालिसिस.* मैकमिलन को. लिमिटेड, लन्दन.

राजन (2019) *केरला एमिग्रेन्ट्स इन द गल्फ,* स्प्रिंगर, सिंगापुर 189-205.

राजन, (2020) 'रिसर्च ऑन इंटरनेशनल माइग्रेशन फ्रॉम इंडिया नीड अ फ्रेश स्टार्ट', *इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली.*

रॉय एंड भगत (2021) कॉज एंड कांसिक्वेन्सेज ऑफ आउट-माइग्रेशन फ्रॉम मिडिल गंगा प्लेन, इंटरनेशनल इंस्टिट्यूट फॉर पापुलेशन साइंसेज, मुम्बई, महाराष्ट्र, इंडिया.

रुचि, (फरवरी 2014) ब्रेकिंग लिंक्स : पोस्ट-पार्टीशन इंडियन माइग्रेशन टू थाईलैण्ड, प्रोसिडिंग्स ऑफ इन्टेसेस - 14 इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन एजुकेशन एंड सोशल साइंस प्रोसिडिंग्स (पेज 16-25) इस्ताम्बुल टर्की.

सिंह, पी. एंड अरिम्ब्रा एम.ए. (2019) इंडियन्स इन द गल्फ : द अदर साइड ऑफ द स्टोरी, इंडियन माइग्रेशन नाउ, ए माइग्रेशन डाटा पालिसी एंड रिसर्च एजेंसी बेस्ड इन मुम्बई.

वेर्टोवेक, (2000) *द हिन्दू डायस्पोरा : कम्पेरेटिव पैटर्न,* रूटलेज, लन्दन.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 122-135)
UGC-CARE (Group-I)

मुसहर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक अस्मिता और आजीविका का सवाल

सुमन पाल*, गोपाल कृष्ण ठाकुर† एवं विनोद कुमार‡

मुसहर समुदाय, जो मुख्य रूप से बिहार, उत्तर प्रदेश और नेपाल के कुछ हिस्सों में पाया जाता है;भारत के सबसे अधिक हाशिए पर रहने वाले समुदायों में से एक है। यह शोध पत्र भारत में मुसहर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक अस्मिता और उनकी आजीविका के साधन अर्थात जीवन-यापन के तौर-तरीकों की गहरी पड़ताल को प्रस्तुत करता है। इस लेख में शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश के भदोही जिले के ग्राम पंचायत- मतेथु के मुसहर समुदाय का किए गए नृजातीय अध्ययन संबंधित अन्तर्दृष्टि भी सम्मिलित हैं। शोध परिणाम से स्पष्ट है कि मुसहर समाज की अपनी खान-पान, रहन-सहन की स्थिति और उनकी लोक परंपराएँ उन्हें विशिष्ट बनाती हैं। सदियों से सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े रहे इस समुदाय को सामाजिक बहिष्कार, गरीबी और अशिक्षा जैसी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। मुसहर समुदाय को अपने परिवेश में जाति और ऊंच-नीच की भावना आधारित व्यवस्था के कारण अक्सर भेदभाव का शिकार होना

* शोधार्थी, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
E-mail: sumanpal.prayagraj777@gmail.com
†प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
‡सहायक प्रोफेसर, अध्यापक शिक्षा विभाग, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी (उ.प्र.)

पड़ता है। कई अन्य जातीय समुदायों की तरह उन्हें भी अछूत माना जाता है। उनके लिए शिक्षा, रोजगार, सामाजिक न्याय और बुनियादी सुविधाओं तक पहुंच आसान नहीं है। उन्हें अक्सर गांवों के किनारे, मुख्य बस्तियों से अलग बस्तियों में रहने के लिए मजबूर किया जाता है। वे पत्तल बनाने तथा मिट्टी काटने में बेहद कुशल होते हैं। उन्हें खेतों, भट्ठों, बिल्डिंग मटेरियल की दुकानों और संभ्रांत लोगों के घरों में दैनिक मजदूरी करके जीवन-यापन करना पड़ता है। उत्तर प्रदेश में मुसहर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां अनुसूचित जाति वर्ग की अन्य जातियों की तुलना में बहुत ही निम्न स्तर की हैं। उनका सामाजिक-आर्थिक समावेशन भी बहुत ही कम हुआ है। अवसर, धन और आय में भारी असमानता है। आज भी मुसहर समुदाय के साथ सामाजिक अस्पृश्यता और मुख्य समाज से बहिष्करण की स्थिति बनी हुई है।

बीज शब्द - मुसहर समुदाय, सामाजिक-आर्थिक अस्मिता, आजीविका एवं जीवन-यापन कौशल।

प्रस्तावना

भारत में अनुसूचित जाति की संकल्पना आजादी से पहले की है। वर्ष-1931 की जनगणना के आधार पर साइमन कमीशन ने सभी अछूत जातियों या समाज में सबसे निचले पायदान पर रह रही जातियों के समूह को 1935 में अनुसूचित जाति नाम दिया था। आजादी के बाद भारतीय संविधान अनुच्छेद-341 के अंतर्गत अनुसूचित जाति की सूची से नई जातियों को जोड़ने या पुरानी जाति को हटाने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान करता है (प्रसाद एवं यादव, 2021)। सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार की रिपोर्ट- हैंडबुक ऑन सोशल वेलफेयर स्टेटिस्टिक्स-2021 के अनुसार 26 अक्टूबर, 2017 तक भारतीय संविधान के अनुच्छेद-341 में अनुसूचित जाति के अंतर्गत सम्मिलित समस्त जातियों की संख्या कुल 1284 है। उन्हीं 1284 अनुसूचित जातियों के समूह को महात्मा गांधी जी ने 'हरिजन' नाम दिया था। भारतीय वर्ण व्यवस्था में अनुसूचित जातियों को शूद्र एवं अति शूद्र भी कहा गया है। अनुसूचित जतियों के लिए एक बहुत ही प्रचलित शब्दावली है - दलित। दलित शब्द का प्रयोग भारतीय समाज में दबे-कुचले, वंचित और हाशिए पर रहने वाली जातियों के लिए किया जाता है। दरअसल दलित जातियाँ सामाजिक संरचना, कर्म आधारित वर्ण-व्यवस्था का जाति आधारित हो जाने और शैक्षिक-आर्थिक स्थिति इत्यादि कारणों से भेदभाव की शिकार रही हैं और उन्हें पूर्व में अछूत कहा जाता था। वर्तमान समय में भी अनुसूचित जातियों की स्थिति में बहुत सुधार नहीं हो पाया है। उन्हीं 1284 अनुसूचित जातियों में से एक अत्यधिक दबी-कुचली और मुख्य समाज से कटी हुई जाति है-मुसहर। मुसहर समुदाय सामाजिक संरचना के आधार पर एक ऐसे समूह का निर्माण करती है, जो अन्य समाज से कटा हुआ हाशिये पर है। यदि भारत के संदर्भ में देखा जाये तो मुसहर समुदाय का निवास अधिकांशत: उत्तर भारत में पाया जाता है। 'मुसहरों को सदा, मांझी, मंडल, भुईया, रिक्यासन, ऋषिदेव, बलाकुमुनी, दैयतानिया, कसमेटा, वनमानुष जैसे विभिन्न नामों से भी संबोधित किया जाता है' (कुमार,

2017)। मुसहरों को उत्तर प्रदेश के प्रयागराज, भदोही, जौनपुर जैसे जिलों में, वरुणा नदी के तटीय इलाकों में और इन जिलों के मध्यम और दक्षिणी भागों में वनवासी एवं वनों का राजा भी कहा जाता है। मुसहर समाज की अपनी खानपान, रहन-सहन की स्थिति और उनकी लोक परंपराएँ भी उन्हें विशिष्ट बनाती हैं। मुसहरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को समझने के लिए बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। मुसहरों का कोई अपना लिखित धर्म ग्रंथ नहीं है। उनकी परंपराएँ भी केवल मौखिक अभिव्यक्ति मात्र हैं, जो सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी केवल सुनकर और अनुकरण के माध्यम से चली आ रही हैं। मुसहर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां अनुसूचित जाति वर्ग की अन्य जातियों की तुलना में बहुत ही निम्न स्तर की है। आज भी मुसहर समुदाय के साथ अस्पृश्यता जैसी भावना बनी हुई है। अन्य जातियों की तुलना में मुसहर समुदाय का सामाजिक समावेशन बहुत कम है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर प्रदेश के मुसहर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक अस्मिता और उनकी आजीविका के साधन अर्थात जीवन-यापन के तौर-तरीकों का विश्लेषणात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

भारत में मुसहर समुदाय की जनांकिकी

अंतरराष्ट्रीय रूप से मुसहर समुदाय मुख्यत: भारत और नेपाल में निवास करता है। नेपाल के तराई इलाकों में इनकी अच्छी-ख़ासी जनसंख्या निवास करती है। भारत में मुसहर समुदाय मुख्यत: उत्तर और मध्य-पूर्वी राज्यों यथा- उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, बंगाल और त्रिपुरा में पाया जाता है। 'उत्तर प्रदेश के मध्य और पूर्वी जिलों में फैले मुसहर पत्तल बनाने तथा मिट्टी काटने में बेहद कुशल होते हैं (जोशी एवं कुमार, 2022)'। मुसहरों की सबसे अधिक संख्या बिहार राज्य में है और दूसरे स्थान पर इनकी संख्या उत्तर प्रदेश में है। बिहार राज्य में तो मुसहर समुदाय को महादलित की श्रेणी में रखा है; जबकि उत्तर प्रदेश में मुसहर समुदाय आज भी अनुसूचित जाति समूह में ही सम्मिलित है। विभिन्न राज्यों में सम्पूर्ण एवं अनुसूचित जाति के सापेक्ष मुसहरों की जनसंख्या को बार तालिका 1 में प्रस्तुत किया गया है-

तालिका 1

सम्पूर्ण, अनुसूचित जाति वर्ग एवं मुसहर समुदाय की जनसंख्या

	बिहार	झारखंड	उड़ीसा	त्रिपुरा	उत्तर प्रदेश	उत्तराखंड	बंगाल	भारत
मुसहर समुदाय की जनसंख्या	2725114	53096	57	327	257135	718	20949	3057396
अनुसूचित जाति की जनसंख्या	16567325	3985644	7188463	654918	41357608	1892516	21463270	201378372
कुल जनसंख्या	104099452	32988134	419742178	3673917	199812341	10086292	91276115	1210854977

स्रोत: हैंडबुक ऑफ सोशल वेलफेयर स्टेटिस्टिक्स 2021, सामाजिक न्याय मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ : 29 व 61-114 पर उपलब्ध प्रदत्तों की सहायता से एम.एस. एक्सेल-2021 सॉफ्टवेयर का उपयोग करके शोधार्थी द्वारा निर्मित

तालिका 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि भारत में मुसहर समुदाय की कुल संख्या लगभग 30 लाख 60 हजार (30,57,396) है। राज्यों में मुसहर समुदाय की सर्वाधिक संख्या, लगभग 27 लाख 25 हजार (27,25,114) बिहार में है, जो कि कुल मुसहर आबादी (30,57,396) का लगभग 89 प्रतिशत है। यद्यपि मुसहर समुदाय की जनसंख्या के आधार पर बिहार के बाद उत्तर प्रदेश दूसरे पायदान पर है, जिसमें लगभग 2 लाख 57 हजार (2,57,135) मुसहर निवास करते हैं, जो कि कुल मुसहर आबादी (30,57,396) का लगभग 8 प्रतिशत है तथापि कुल जनसंख्या के आधार पर उत्तर प्रदेश प्रथम पायदान पर है। मुसहर समुदाय की जनसंख्या के आधार पर राज्यों का बढ़ता क्रम उड़ीसा (0.002 प्रतिशत), त्रिपुरा (0.011 प्रतिशत), उत्तराखंड (0.023 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल (0.685 प्रतिशत), झारखंड (1.737 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (8.410 प्रतिशत) और बिहार (89.132 प्रतिशत) है। मुसहर समुदाय की सबसे कम जनसंख्या उड़ीसा (57), त्रिपुरा (327) और उत्तराखंड (718) है। 'वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश में मुसहर समुदाय की आबादी 126088 थी,जो कि 2011 तक 257135 हो गई है; जिन्हें वनमानुस, बंजारा और गोनारे भी कहा जाता था। उत्तर प्रदेश में वर्ष 1981 की मुसहर आबादी की तुलना में 2011 तक मुसहरों की जनसंख्या में लगभग 104 प्रतिशत की वृद्धि हुई है' (नारायण,2018)। मुसहर समुदाय की ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में जन-सांख्यिकी को महिला-पुरुष के आधार पर क्रमशः तालिका द्वितीय एवं तृतीय में प्रस्तुत किया गया है -

तालिका 2

मुसहर समुदाय की ग्रामीण जन-सांख्यिकी

	बिहार	झारखंड	उड़ीसा	त्रिपुरा	उत्तर प्रदेश	उत्तराखंड	बंगाल	योग
ग्रामीण जनसंख्या	2631683	45814	24	225	249234	521	17432	2944929
ग्रामीण जनसंख्या	1272284	22362	4	99	120205	235	8513	1423698
ग्रामीण जनसंख्या	1359399	23452	20	126	129029	286	8919	1521231

स्रोत : हैंडबुक ऑफ सोशल वेलफेयर स्टेटिस्टिक्स 2021, सामाजिक न्याय मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ : 115-168 तक उपलब्ध आवश्यक प्रदत्तों की सहायता से एम.एस. एक्सेल-2021 सॉफ्टवेयर का उपयोग करके शोधार्थी द्वारा निर्मित

तालिका 3

मुसहर समुदाय की शहरी जन-सांख्यिकी

	बिहार	झारखंड	उड़ीसा	त्रिपुरा	उत्तर प्रदेश	उत्तराखंड	बंगाल	योग
शहरी जनसंख्या	93431	7282	33	102	7901	197	3517	112463
शहरी जनसंख्या	45273	3483	16	50	3781	86	1728	54417
शहरी जनसंख्या	48158	3799	17	52	4120	111	1789	58046

स्रोत : हैंडबुक ऑफ सोशल वेलफेयर स्टेटिस्टिक्स 2021, सामाजिक न्याय मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ : 169-222 तक उपलब्ध आवश्यक प्रदत्तों की सहायता से एम.एस. एक्सेल-2021 सॉफ्टवेयर का उपयोग करके शोधार्थी द्वारा निर्मित

उपर्युक्त तालिका 2 एवं 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि मुसहर समुदाय की कुल ग्रामीण जनसंख्या लगभग 29 लाख 45 हजार (2944929) है, जो कि मुसहर समुदाय की

कुल जनसंख्या (30,57,396) का 96 प्रतिशत है। इसमें पुरुष लगभग 15 लाख 21 हजार (1521231) अर्थात 52 प्रतिशत और महिला लगभग 14 लाख 24 हजार (1423698) अर्थात 48 प्रतिशत हैं। इसी प्रकार कुल शहरी जनसंख्या लगभग एक लाख 12 हजार (112463) है, जो कि मुसहर समुदाय की कुल जनसंख्या (30,57,396) का केवल 4 प्रतिशत है। इसमें पुरुष लगभग 58 हजार (58046) अर्थात 52 प्रतिशत तथा महिला लगभग 54 हजार (54417) अर्थात 48 प्रतिशत हैं। मुसहर समुदाय की शहरी जनसंख्या की तुलना में ग्रामीण जनसंख्या बहुत अधिक है। उड़ीसा को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में मुसहर समुदाय की ग्रामीण जनसंख्या उनकी शहरी जनसंख्या से अधिक है। उड़ीसा में इसका उलट है। उड़ीसा एक मात्र ऐसा राज्य है, जहाँ मुसहर समुदाय की ग्रामीण जनसंख्या (24) उनकी शहरी जनसंख्या (33) से 27.27 प्रतिशत कम है।

मुसहर समुदाय और लिंगानुपात

किसी भी समाज के बेहतरी को मापने के पैमाने का एक महत्त्वपूर्ण घटक महिला-पुरुष की संख्या का अनुपात होता है। इसे सैद्धान्तिक रूप से प्रति एक हजार पुरुष पर महिलाओं की संख्या के आधार पर मापा जाता है। इससे समाज में हो रहे लैंगिक भेदभाव और लैंगिक पूर्वाग्रह का अंदाजा लगाया जाता है। इससे यह भी पता चलता है कि संबंधित समाज लैंगिक दुराग्रह से कितना मुक्त है और उस समाज में महिलाओं की स्थिति कैसी है। यदि यह अनुपात अधिक है तो सामान्यत: यह मान लिया जाता है कि महिलाओं की स्थिति बेहतर होगी। हालांकि महिलाओं की बेहतर स्थिति के आकलन के अन्य घटक भी हैं। सामान्यत: मुसहर समुदाय में लिंगानुपात अच्छा है। अन्य समुदायों की तुलना में 'मुसहर समुदाय में लिंगानुपात की स्थिति ठीक है' (कुमारी, 2020)। मुसहर समुदाय में महिलाओं को लगभग बराबरी का दर्जा प्राप्त है। वे घर-परिवार के साथ-साथ बाहर भी अपने पुरुष साथी ख़ासकर पति के साथ हमेशा रहती हैं। मुसहर समुदाय में पति-पत्नी का संबंध बहुत गहरा होता है। वे काम पर भी जाते हैं, तो साथ-साथ। इसके परिणामस्वरूप उनमें बालक-बालिका के जन्म पर कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता है।

तालिका 4

मुसहर समुदाय का राज्यवार लिंगानुपात

	बिहार	झारखंड	उड़ीसा	त्रिपुरा	उत्तर प्रदेश	उत्तराखंड	बंगाल	भारत
मुसहर लिंगानुपात	936	936	200	786	932	822	955	936
मुसहर लिंगानुपात	940	917	941	962	918	775	966	938
मुसहर लिंगानुपात	936	949	541	837	932	809	957	936
सम्पूर्ण लिंगानुपात	921	949	989	960	918	1000	953	949

स्रोत : हैंडबुक ऑफ सोशल वेलफेयर स्टेटिस्टिक्स 2021, सामाजिक न्याय मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ : 13, 115-168 व 169-222 तक उपलब्ध आवश्यक प्रदत्तों की सहायता से एम.एस. एक्सेल-2021 सॉफ्टवेयर का उपयोग करके शोधार्थी द्वारा निर्मित

तालिका 4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि भारत के ग्रामीण (949), शहरी (929) और सम्पूर्ण (943) लिंगानुपात के सापेक्ष मुसहर समुदाय का लिंगानुपात क्रमश: ग्रामीण (936), शहरी (938) और सम्पूर्ण (936) है; जोकि राष्ट्रीय लिंगानुपात की तुलना में ग्रामीण और सम्पूर्ण स्तर पर कम है जबकि शहरी स्तर पर अधिक है। राज्यों की बात करें तो बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में ग्रामीण, शहरी और सम्पूर्ण स्तर पर मुसहर समुदाय का लिंगानुपात राज्य के लिंगानुपात से अधिक है। उत्तराखण्ड में ग्रामीण, शहरी और सम्पूर्ण स्तर पर मुसहर समुदाय का लिंगानुपात राज्य के लिंगानुपात से कम है। उड़ीसा और त्रिपुरा में ग्रामीण और सम्पूर्ण स्तर पर मुसहर समुदाय का लिंगानुपात राज्य के लिंगानुपात से कम है जबकि शहरी स्तर पर अधिक। मुसहर समुदाय की सम्पूर्ण स्तर पर राज्यवार लिंगानुपात का ट्रेंड लाइन देखने से स्पष्ट है कि मुसहर समुदाय का लिंगानुपात राज्य के सम्पूर्ण स्तर के लिंगानुपात के आस-पास ही है। R^2 का मान 0.0378 है। इससे पता चलता है कि मुसहर समुदाय का लिंगानुपात और संबंधित राज्यों के लिंगानुपात में अधिक विचलन नहीं है।

मुसहर समुदाय का सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य

मुसहर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अन्य अनुसूचित जातियों की तुलना में आज भी बहुत निम्नतर स्तर की है। मुसहर समुदाय अपने आस-पास के परिवेश में रहने वाले अन्य समुदायों से कटकर रहता है। अक्सर यह देखा जाता है कि मुसहर समुदाय गाँव के किनारे मुख्य समाज से अलग निवास करता है। मुसहर समुदाय हाशिए पर रहता है। मुख्य समाज के विभिन्न सामाजिक क्रिया-कलापों, रीति-रिवाजों से हटकर मुसहर समुदाय अपने विशिष्ट क्रिया-कलापों एवं रीति-रिवाजों के साथ जीवन यापन करता है। कुमार (2006) ने मुसहरों की दयनीय सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करते हुये बताया है कि 'स्थानीय अभिजात वर्ग और पूर्व जमींदारों के नेतृत्व में राज्य संचालित विकास प्रतिमानों की भूमिका, मुसहरों की दयनीय अवस्था के लिए अधिक जिम्मेदार रही है। अभिजात वर्ग ने दलितों को और अधिक दलित बनाने का काम किया है। इसे स्पष्ट रूप से उजागर करने की आवश्यकता है, क्योंकि दलित समूह की कुछ एक जातियों को छोड़ दिया जाए तो शेष का हाल और बुरा होता जा रहा है। मुसहरों की स्थिति अभिजात वर्ग और जमींदारों की व्यवस्था के कारण बंधुआ मजदूर जैसी ही बनी हुई है। उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है तथा वे आज भी दलितों के बीच में दलित होकर जीवन निर्वहन करने हेतु मजबूर हो रहे हैं'। फिर भी आजादी के बाद विकास कार्यक्रमों का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि मुसहरों के लिए केंद्र एवं राज्य सरकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, विभिन्न संगठनों तथा गैर-सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न सामाजिक कार्यक्रम एवं योजनाएँ मुसहरों की सामाजिक अस्मिता को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर रही हैं। मुसहर समुदाय भी धीरे-धीरे अपनी सीमांतता की सीमाओं को पार करते हुए लाभ के विविध क्रिया-कलापों में प्रतिभाग कर रहा है। इसके परिणामस्वरूप उनकी सीमांतता की धारणा बदल बदल रही है (सिंह,

2013)। हालांकि इस बदलाव की गति बहुत धीमी है। विभिन्न सरकारी संस्थानों द्वारा किए जा रहे प्रयासों का मुसहरों के जीवन पर सार्थक प्रभाव पड़ रहा है। उनके साथ राज्य न केवल एक प्रमुख संवाद एजेंसी के रूप में कार्य कर रहा है बल्कि उनकी आर्थिक स्थिति और सामाजिक परिस्थिति को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन भी कर रहा है (मुकुल,1999)।

भोजन, स्वास्थ्य और लैंगिक तटस्थता

मुसहर समुदाय की बहुत अधिक पिछड़ी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के कारण उनका जीवन-यापन अत्यधिक निम्नतर स्तर का होता है। वे सामूहिक रूप से अपने सामाजिक समूह में जीवन निर्वहन करते हैं। उनकी सामूहिक एकता बहुत ही कमाल की होती है। वे अपने समुदाय की पहचान से खुद को रूबरू कराने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। उनका जीवन सुबह से शाम तक के व्यस्ततम मजदूरी वाले कार्यक्रमों में बंटा रहता है। उन्हें न्यूनतम आवश्यक पौष्टिक भोजन की भी आपूर्ति नहीं हो पाती है। कभी-कभी फाँका पर ही दिन काटना पड़ता है। हालांकि कोविड-19 के दौरान शुरू की गई प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना से मुसहर समुदाय को खाद्यान्न उपलब्धता में विशेष फायदा हुआ है। लेकिन वर्तमान कमरतोड़ महंगाई के दौर में जब सामान्य नौकरी वालों का हाल बहुत ख़स्ता होता जा रहा है तो मुसहर समुदाय के दैनिक जीवन निर्वहन विवशता को देख-समझकर केवल रोना ही आता है। उनकी वास्तविक दैनिक स्थिति को शब्दों में अभिव्यक्त करना बहुत ही मुश्किल है। उनकी थाली में कभी भी सामान्य थाली का भोजन, जैसे- दाल, चावल, रोटी, सब्जी इत्यादि भी एक साथ नहीं मिलता है।

पोखरल (2020) के अनुसार 'मुसहर समुदाय के अधिकांश लोग एक साथ चावल दाल और सब्जी नहीं पकाते हैं। यदि वे दाल बनाते हैं तो सब्जी नहीं बनाते। इसका कारण पूछने पर वे लोग बताते हैं कि हमारे पास इतना समय नहीं होता है और न ही इतनी व्यवस्था होती है कि हम एक साथ दाल और सब्जी दोनों बना सकें'। मुसहर समुदाय का स्वास्थ्य सामान्यत: ठीक रहता है। वे जल्दी बीमार नहीं पड़ते हैं। क्योंकि वे जीतोड़ मेहनत करते हैं और उनके शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। लेकिन सामान्य लोगों की तुलना में स्वास्थ्यगत सुविधाओं तक उनकी पहुँच कमतर है। ऐसा देखा जाता है कि वे अपने स्वास्थ्य के प्रति उतने सजग नहीं रहते, जितना कि अन्य लोग सजग दिखायी पड़ते हैं। सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, आशा बहू, आंगनबाड़ी केंद्र इत्यादि के माध्यम से मूलभूत स्वास्थ्यगत सुविधाओं और संसाधनों तक सभी की पहुँच सुनिश्चित की जा रही है। हर घर शौचालय योजना के अंतर्गत शौचालय बनाने हेतु 12 हजार रुपये (छ:-छ: हजार की दो किस्त में) की आर्थिक सहायता भी सरकार द्वारा प्रदान की जा रहा है। इससे ग्रामीण मुसहर बस्तियों में भी शौचालय बने हैं। लेकिन सहायता राशि के कम होने के कारण ठीक से निर्माण न होना और नियमित रख-रखाव न होने के कारण उपयोग लायक नहीं बचे हैं। मुसहर समुदाय खुले में शौच करना अधिक पसंद करता है। इसमें उनकी स्वास्थ्यगत जागरूकता की कमी और खुले

में शौच से होने वाली स्वास्थ्यगत और पर्यावरणीय नुकसान की जानकारी का अभाव सहयोग करता है। अभी भी 38.5 प्रतिशत मुसहर समुदाय खुले में शौच कर रहे हैं। जिसे सख्ती से प्रतिबंधित किया जाना चाहिए क्योंकि यह स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए खतरनाक है (पौडेल एंड कट्टेल, 2019)। 'मुसहर, बच्चों का जन्म, ईश्वर की इच्छा और आशीर्वाद का प्रतीक मानते हैं। लड़की या लड़का होने से उन्हें कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता। मुसहर समुदाय में लैंगिक भेदभाव नगण्य होता है' (पोखरेल, 2020)। मुसहर समुदाय में लैंगिक भेदभाव बहुत ही कम मात्रा में पाया जाता है। मुसहर अपनी संतान को पुरुष और महिला की नजर से नहीं देखते हैं। वे अपने बच्चों के लिंग के प्रति चयनात्मक भी नहीं होते हैं। उनके लिए बच्चे बड़े होकर काम में मदद करने वाले सहयोगी के रूप में होते हैं। उन्हें इस बात से भी कोई फर्क नहीं पड़ता है कि उनकी दो या तीन या उससे भी अधिक संताने केवल बालिका या केवल बालक हैं। उन्हें इस बात से भी कोई फर्क नहीं पड़ता है कि उनके पास कोई बेटा क्यों नहीं है। वे अपने बच्चों के साथ खुशी-खुशी अपना दुख-दर्द साझा करते हैं। मुसहर समुदाय में व्यवस्था और प्रेमविवाह दोनों की धारणा है। मुसहर अपने जीवन को बहुत खुले अंदाज में जीना पसंद करते हैं। उन्हें कल के लिए बहुत चिंता नहीं होती है। वे आज और अभी में जीना पसंद करते हैं। लेकिन वे अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति उतने जागरूक नहीं हैं, जितना कि होना चाहिए। इसीलिए उनके समुदाय में औपचारिक शिक्षा के प्रति रुझान भी बहुत ही कम है। उनकी स्वास्थगत स्थिति भी बहुत खराब है। वे बच्चों को टीका लगवाने से भी डरते हैं, कतराते हैं। 'मुसहर समुदाय में लिंगानुपात की स्थिति ठीक है परन्तु साक्षरता दर अत्यंत निम्न स्तर का है। इस समुदाय का उच्च शिक्षा में पूर्णतः अभाव है' (कुमारी, 2020)। मुसहर समुदाय में महिला एवं पुरुष साथ-साथ रहते हैं, साथ-साथ बाजार जाते हैं, साथ-साथ काम पर भी जाते हैं। लेकिन घर के काम में पुरुष बहुत कम हाथ बटाते हैं। रसोई के काम तो महिलाओं के लिए अनिवार्य है। मुसहर महिलाओं का जीवन लैंगिक तथा जाति आधारित पहचान के आधार पर व्यतीत होता है (चन्द एंड बनर्जी, 2019)। जिस तरह से मुसहर समाज सामाजिक रूप से दबा कुचला है, उसी तरह से मुसहर जाति की महिलाएँ भी मुसहर समुदाय में दबी कुचली हैं और शक्ति-संबंधों के निर्धारण में या शक्ति के निर्धारण में उनके साथ महिला होने के नाते भेदभाव किया जाता है। मुसहर महिलाओं की स्थिति समाज और उनके घर दोनों जगह बहुत ही कमजोर है। क्योंकि समाज में वो बंधुआ मजदूर की तरह काम तो कर ही रही हैं साथ ही साथ घर में भी लगभग सभी काम उन्हीं के जिम्मे होता है। बच्चों की देखभाल, कपड़े धोना, खाना पकाना, पुरुष की सेवा करना तथा रोजी-रोटी की भी व्यवस्था करना जैसे दिन-प्रतिदिन के संघर्ष उनके दैनिक जीवन संसार का अभिन्न हिस्सा होते हैं। मुसहर औरतें गरीबी और बदहाली में अपने जीवन को व्यतीत करने के लिए मजबूर होती हैं (चाँद एवं बनर्जी, 2019)।

मुसहर समुदाय की आजीविका और रहन-सहन

अधिकांश मुसहर कृषि और तत्संबंधित क्षेत्रों में सबसे निचले स्तर पर मजदूर का काम करते हैं। मनरेगा के तहत भी उन्हें कुछ काम मिल जाता है। वे मौसमी बेरोजगारी के शिकार होकर जीवन व्यतीत करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा, मजदूरी कार्य, बंधुआ मजदूरी इत्यादि के माध्यम से अपना जीवन-यापन करते हैं। 'बंधुआ मजदूरों को तो खाने-पीने की वस्तुएँ, पहनने हेतु साफ-स्वच्छ कपड़े, उचित आराम एवं चिकित्सकीय सुविधा भी ठीक से प्राप्त नहीं होती है। बालिकाओं-महिलाओं के साथ लैंगिक गाली-गलौज एवं यौन अपराध जैसी प्रताड़ना आम बात है। बंधुआ मजदूरी प्रतिबन्धित होने के बावजूद भी जारी है' (गिरि, 2012)। सामाजिक दृष्टिकोण से, स्वच्छ पेयजल और खाना पकाने के लिए उपयोग किये जाने वाले स्वच्छ ईन्धन तक उनकी पहुँच सीमित है। मुसहर मूल रूप से कृषि दैनिक मजदूरी करने वाले मजदूर हैं। मुसहर समुदाय अपनी आजीविका हेतु कृषि श्रमिक (28 प्रतिशत), दैनिक मजदूरी (42 प्रतिशत), व्यापार (14 प्रतिशत), विदेशी प्रेषण (8 प्रतिशत) और ड्राइवर (8 प्रतिशत) जैसे पेशों में शामिल है। 'बिहार में पुरुष मुसहर कृषि मजदूरी में 76.22 प्रतिशत तथा महिला मुसहर 68.00 प्रतिशत लगी हुई हैं। केवल 19.83 प्रतिशत घरों में पीने का पानी, बिजली और शौचालय की सुविधा उपलब्ध है। 56 प्रतिशत मुसहर आज भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने के लिए मजबूर हैं। प्राचीन काल से उन्होंने अपने स्वयं के रीति-रिवाजों, कलाओं, आचार-विचारों, विश्वासों और सामाजिक-आर्थिक संस्थाओं का विकास किया है' (राणा, 2017)। अब मुसहर अपने स्वयं के त्योहारों जैसे 'फल्गु' और 'शंक्रान्तियों' के बजाय दाहिन और तेहर जैसे हिंदू त्योहारों को अधिक प्राथमिकता देते हैं। मुसहरों का ग्राम देवताओं की पूजा करने का तरीका, आत्माओं में विश्वास, विशिष्ट पोशाक पैटर्न और समूह प्रकार की बस्तियों का पैटर्न अन्य जातीय समूहों से अलग है (प्रसाद, 2007)। मुसहर समुदाय के किसी भी एक परिवार का पंजीकृत भूमि पर कब्जा नहीं है। वे पूर्णत: सरकारी या पट्टे की जमीन पर झोपड़ी बनाकर रहते हैं। 'विभिन्न आजीविका संसाधन जैसे कृषि, जल, वन और सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा बस्तियाँ जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील होते हैं (शर्मा, 2010)'। औसत तापमान में वृद्धि, बाढ़, शीत लहर, बीमारी, पशुधन रोग आदि के रूप में आजीविका के विभिन्न पहलुओं के लिए मुसहर समुदाय की आजीविका में और अधिक चुनौती पैदा कर रहे हैं। ग्रीन हाउस गैसों का उत्पादन बढ़ने से जलवायु परिवर्तन के विभिन्न परिणाम उन संसाधनों पर दबाव डाल रहे हैं, जिन पर गरीब लोग अपनी आजीविका के लिए अधिक निर्भर हैं। इससे अन्य समुदायों के साथ ही मुसहर समुदाय की दिनचर्या, रहन-सहन और आजीविका भी प्रभावित हो रही है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँच बाधित होना और अवसर की उपलब्धता की कमी भी मुसहर समुदाय की आजीविका को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है। 'मुसहरों के पास अधिकांश स्रोतों तक पहुँच नहीं के बराबर है और उनके पास स्रोतों तक पहुँच के पर्याप्त अवसर भी नहीं है। भूमि, पानी, पालतू जानवर, अच्छी मजदूरी वाले काम इत्यादि तक उनकी पहुँच आसान नहीं है' (थॉमस

एंड आरा, 2018)। दूसरी बात यह है कि वे सभी सरकारी योजनाओं का लाभ लेने वाले पात्रों की सूची में सबसे अन्त में होते हैं। क्योंकि पंचायती राज संस्थान की सबसे निचली इकाई ग्राम सभा में भी उनकी पहुँच ना के बराबर है। इसलिए उनसे संबंधित विभिन्न प्रकार के सरकारी योजनाओं का लाभ भी उन तक सबसे अंत में और सबसे कम मात्रा में पहुँच पाता है। विकास एजेंसियों और संसाधनों के बढ़ते प्रवाह के बावजूद, समुदाय की आजीविका पर अभी भी सीमित प्रभाव ही पड़ रहा है। अतः मुसहर समुदाय की बेहतरी हेतु आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के चलाए जा रहे सरकारी कार्यक्रमों जैसे - मनरेगा, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, राष्ट्रीय ग्रामीण स्थ्वास्थ्य मिशन इत्यादि में भ्रष्टाचार को समाप्त करके उसका क्रियान्वयन सही तरीके से किया जाये। उनके लिए शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रम की विशेष आवश्यकता है। सामुदायिक सौहार्द, समरसता और समता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। अन्य जातियों और समुदायों को आगे बढ़कर मुसहर समुदाय को मुख्य समाज में शामिल करने की कोशिश करनी चाहिए। 'मुसहर समुदाय की आजीविका सुरक्षा को बढ़ाने के लिए लक्षित हस्तक्षेपों का जवाब देने के लिए एक मजबूत संस्थागत आधार के साथ-साथ सामुदायिक तैयारी भी आवश्यक है (पौडेल एंव अन्य, 2023)।

शैक्षिक निहितार्थ

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद -341 और 342 के प्रावधानों के अनुसार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वर्ग की सूची में किसी भी राज्य/केंद्र शासित प्रदेश की किसी भी जाति/वर्ग को सम्मिलित करने और सूची से बाहर करने की शक्ति केवल राष्ट्रपति को दिया गया है। मुसहर समुदाय को उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति वर्ग में रखा गया है। मुसहर समुदाय की अत्यधिक पिछड़ी सामाजिक-आर्थिक स्थिति और मुख्य समाज से अलगाव को ध्यान में रखते हुये उन्हें अनुसूचित जनजाति वर्ग में रखा जाना चाहिए। ताकि उन पर सरकारों का विशेष ध्यान जाये और उनके लिए विशेष प्रयास किए जा सकें।
- वर्तमान समय में मुसहर समुदाय अनुसूचित जाति वर्ग में सामाजिक-आर्थिक आधार पर सबसे अधिक पिछड़े हुये हैं। अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषता के कारण वे मुख्यधारा के समाज से भी कटे हुए हैं। उनका सामाजिक-आर्थिक विकास बहुत धीमी गति से हो रहा है। इसलिए सरकार और गैर सरकारी संगठनों द्वारा मुसहर समुदाय के लिए जमीनी स्तर पर विशेष प्रावधान किया जाना चाहिए है। ताकि मात्रात्मक आंकड़ों के साथ-साथ उनके जीवन में गुणात्मक परिमार्जन सुनिश्चित हो सके।
- मुसहर समुदाय के साथ सामाजिक-आर्थिक स्तर पर तो भेदभाव सामान्य बात है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनके सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन का फायदा उठाकर सरकारी योजनाओं, कार्यक्रमों और नीतियों के क्रियान्वयन में भी भेदभाव किया

जाता है। चूंकि उनकी स्थिति समाज के आख़िरी पायदान पर है और वे रहते भी मुख्य समाज से अलग हैं, इसलिए सरकारी योजनाएँ और सरकारी प्रयास उन तक सबसे आखिर में ही बचे-खुचे स्वरूप में पहुँचते हैं। अत: सुझाव है कि सरकारी योजनाओं, नियमों-कानूनों का कड़ाई से समयबद्ध पालन अनिवार्य होना चाहिए।

- मुसहर समुदाय सबसे अधिक अभावों वाला समुदाय है और उनके लिए रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक समावेशन की आवश्यकता भी सबसे अधिक है। अत: मुसहर समुदाय तक सभी सरकारी योजनाओं-प्रयासों की पहुँच समुचित मात्रा में और सबसे पहले होनी चाहिए।
- मुसहर समुदाय तक सरकारी योजनाओं-प्रयासों की पहुँच सुनिश्चित करने हेतु यह आवश्यक है कि लोक प्रशासन की ऊपर से नीचे (राज्य, मण्डल, जिला, तहसील, विकासखंड होते हुये गाँव) तक की मशीनरी और पंचायती राज की सबसे निचली इकाई अर्थात ग्राम पंचायत की कार्य-प्रणाली का मूल मंत्र 'सबसे अधिक जरूरतमन्द- सबसे पहले लाभान्वित हो' होना चाहिए। यह रणनीति केवल फाइलों में न होकर वास्तविक जमीनी क्रियान्वयन में होनी चाहिए।
- मुसहर समुदाय ग्रामीण और शहरी दोनों परितंत्र में मुख्य-धारा वाले समाज से कटा हुआ है। इसलिए मुसहर समुदाय के साथ सामाजिक स्तर पर बहुत अधिक भेदभाव किया जाता है। उन्हें मुख्य समाज में सम्मिलित करने हेतु केवल सरकारी प्रयास पर्याप्त नहीं होंगे। मुसहर समुदाय को मुख्य समाज में लाने हेतु मुख्य समाज को अपनी सामंती सोच, जातीय जकड़न, धन-सम्पदा-पद की श्रेष्ठता इत्यादि को त्यागकर मुसहर समुदाय के साथ भी आत्मीय बर्ताव करते हुये समुदाय को भी मुख्य समाज का हिस्सा बनाकर सामाजिक समरसता और सद्भाव का निर्माण करना चाहिए।
- मुसहर समुदाय तक स्थायी आवास, नि:शुल्क शिक्षा, कौशल, खेल, नियमित रोजगार और बेहतर स्वास्थ्यगत सुविधाओं की पहुँच सुनिश्चित की जानी चाहिए। ताकि वे भी अपनी मूलभूत जरूरतों को पूर्ण करते हुये अपनी कर्मठता, ईमानदारी और जुझारूपन का उपयोग कर देश की तरक्की में अपना पूर्ण योगदान कर सकें।
- मुसहर समुदाय की जीवन दशा को सुधारने हेतु राष्ट्रीय और राज्य स्तर एक विशिष्ट शोध सेल का निर्माण किया जाना चाहिए। यह शोध सेल समय-समय पर नियमित रूप से मुसहर समुदाय की वास्तविक जमीनी हक़ीक़त को शोध रिपोर्ट के रूप में सरकारों के समक्ष प्रस्तुत करे ताकि रिपोर्ट के आधार पर मुसहर समुदाय हेतु विशिष्ट नीति का निर्माण और समुचित क्रियान्वयन करके मुसहर समुदाय का सामाजिक-आर्थिक विकास सुनिश्चित किया जा सके।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि मुसहर समुदाय मूल रूप से तटीय और जंगली इलाकों में निवास करता था। वे जंगल में पैदा होने वाले फल-फूल, लकड़ी, मांस इत्यादि पर निर्भर थे। लेकिन धीरे-धीरे वे भूमिहीन और जंगल विहीन होते गए और अपने अस्तित्व को बनाए रखने हेतु मजदूर बन गए। वर्तमान समय में मुसहर समुदाय अपने सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन के कारण अनुसूचित जातिवर्ग के सबसे निचले पायदान पर मुख्य समाज से कटकर जीवन-यापन कर रहा है। मुसहर समुदाय भूत-प्रेत, झाड़-फूंक और टोना-टोटका जैसे अंधविश्वासी उपचारों पर आज भी निर्भर है। लेकिन जैसे-जैसे प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य लोगों तक पहुँच बढ़ रही है वैसे-वैसे इसका सार्थक प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है। सीमित आवश्यकताओं के साथ वे अपना जीवन जीने के लिए मजबूर थे, लेकिन अब विभिन्न सरकारी योजनाओं यथा- मनरेगा, प्रधानमंत्री आवास योजना, हर घर जल योजना जैसे कार्यक्रमों की पहुँच सुदूर बस्तियों तक होने के कारण उनका जीवन स्तर, खान-पान, रहन-सहन इत्यादि में सुधार हो रहा है। मुर्गी पालन, सुअर पालन, पत्तल और दोना बनाना, लकड़ी काटना, खेतों-भट्ठों पर मजदूरी करना, ट्रैक्टर चलाना इत्यादि उनके आजीविका के महत्त्वपूर्ण साधन हैं हालांकि मुसहर समुदाय तक रोटी, कपड़ा, आवास, शिक्षा, कौशल, रोजगार और सामाजिक समावेशन तथा सामाजिक समरसता-सद्भाव की समुचित पहुँच आज भी नहीं है। मुसहर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक और आजीविका संबंधित न्यूनतम आवश्यकताओं तक की पूर्ति हेतु सरकारी और गैर-सरकारी योजनाओं-कार्यक्रमों के साथ ही साथ सामाजिक समानता के स्तर पर लाने के लिए उनके साथ हो रहे भेदभाव को दूर करने के लिए मुख्य समाज को स्वयं प्रेरित होकर आगे आना होगा। तभी सामाजिक अलगाव की खाई पाटी जा सकेगी और सामाजिक अलगाव की खाई पाटे बिना मुसहर समुदाय का मुख्य समाज में समावेशन नहीं हो सकेगा। बिना सामाजिक समावेशन के सरकारी प्रयास होने के बावजूद मुसहर समुदाय का लक्ष्यित विकास संभव नहीं है।

सन्दर्भ

चन्द, डी. एंड बनर्जी, एस. (2019). 'एक्सप्लोरिंग द इंटरसेक्शन ऑफ जेंडर, कास्ट एंड स्पेस इन द लाइफवर्ल्ड ऑफ मुसहर विमेन इन उत्तर प्रदेश'. *साउथ एशियन जर्नल ऑफ पार्टिसिपेटिव डेवलपमेंट,* 19(1), 7-27. https://www.researchgate.net/profile/Dinesh-Chand-2/publication/344253018_Exploring_the_Intersections_of_Gender_Caste_and_Space_in_the_Lifeworld_of_Musahar_Women_in_Uttar_Pradesh/links/6005d251299bf14088a5fb3f/Exploring-the-Intersections-of-Gender-Caste-and-Space-in-the-Lifeworld-of-Musahar-Women-in-Uttar-Pradesh.pdf

गिरि, बी.आर. (2012). 'द ब्रांडेड लेबर सिस्टम इन नेपाल मुसहर एंड तारों कम्युनिटीज असेसमेंट ऑफ द हालिया एंड कमैया लेबर कॉन्ट्रैक्ट'. *जर्नल ऑफ अल्टरनेटिव पर्सपेक्टिव्स इन द सोशल साइंस,* 4(2), 518-551. Retrieved from: https://www.academia.edu/4236358/The_Bonded_

Labour_System_in_Nepal_Musahar_and_Tharu_Communities_Assessments_of_the_Haliya_and_Kamaiya_Labour_Contracts

कुमार, ए. (2006). 'कल्चर, डेवलपमेंट एंड द कल्चरल कैपिटल ऑफ फार्स : द मुसहर कम्युनिटी इन बिहार'. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकली वीकली,* 41(40), 4281-4291 http://www.jstor.org/stable/4418787

कुमार, धर्मेंद्र (2017). मैपिंग मार्जिनलाइजेशन ऑफ कॉस्ट एंड इनक्लूसन ऑफ कॉस्ट : अ स्टडी ऑफ मानपुर विलेज, गया (बिहार). अप्रकाशित एम.फिल. थेसिस, सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोशल एक्सक्लूशन एंड इंक्लूसिव पॉलिसी, हैदराबाद विश्वविद्यालय.

मुकुल (1999). 'द अनटचेबल प्रेजेंट : एवरीडे लाइफ ऑफ मुसहरस इन नार्थ बिहार'. *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 34(49), 3465-3470. http://www.jstor.org/stable/4408689

नारायण, बदरी (2018). *खंडित आख्यान : भारतीय जनतंत्र में अदृश्य लोग,* आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

पोखरेल, बी. (2020). 'स्त्रैनेड आइडेंटिटी : कल्चरल एंड रिलीजियस रीचुअल्स ऑफ अ मुसहर कम्युनिटी'. *सोशल इन्क्वायरी : जर्नल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च,* 2(1), 128-150. https://doi.org/10.3126/sijssr.v2i1.28912

पौडेल, कृष्णा, अधिकारी, देवेंद्र एंड पौडेल, शारदा (2023). रेफ्रेमिंग लाइवलीहुडस स्ट्रेटेजीज : मुसहर चेंजिंग लाइवलीहुडस कॉन्टेक्ट्स एंड देयर रेस्पॉन्सेस टू डायवरस डेवलपमेंट इंटरवेंशंस. https://www.researchgate.net/publication/267370210_Reframing_Livelihoods_Strategies_MusaharBote's_Changing_Livelihoods_Contexts_and_their_Responses_to_Diverse_Development_Interventions

पौडेल एंड कट्टेल (2019). 'सोशल चेन्जेस इन मुसहर कम्युनिटी : ए केस स्टडी ऑफ धनुसा डिस्ट्रिक्ट ऑफ नेपाल'. *नेपाल जर्नल ऑफ मल्टीडिसीपलीनरी रिसर्च,* 2(4), 9-16 https://doi.org/10.3126/njmr.v2i4.28703

प्रसाद, ए. (2007). 'द मुसहर्स ऑफ बिहार : ए दलित कम्युनिटी इन द वारटेक्स ऑफ चेंज'. *द इंडियन जर्नल ऑफ सोशल वर्क,* 68(1), 152-167. https://ijsw.tiss.edu/tmp/exported_Ijsw1940-2014/collect/ijsw/index/assoc/HASH632f/afdd2347.dir/doc.pdf

प्रसाद, डी. एवं कुमार, ए. (2018). 'गुलामगिरी एंड कॉस्ट टुडे : एन इंटरप्रिटेशन'. *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यु,* 5(3), पृ. 129-132

प्रसाद, डी. एवं श्रीहरी, जी. (2017). 'मैपिंग द पॉलिटिक्स ऑफ शौचालय इन दलित लोकलिटीज : एन इन्क्वायरी', *कन्टेम्प्रेरी वॉइस ऑफ दलित,* 9(1), पृ. 225-271.

राणा, एम.के. (2017). ऑकुपेशन एंड एजुकेशनल स्टेटस ऑफ मुसहर : ए स्टडी ऑफ बारदीबास म्यूनिसिपैलिटी महोत्तरी, नेपाल. ऑनलाइन प्रकाशित शोध प्रबंध, सेंट्रल डिपार्टमेंट ऑफ रुरल डेवलपमेंट, त्रिभुवन यूनिवर्सिटी कृतिपुर काठमांडू, नेपाल. Retrieved from: https://elibrary.tucl.edu.np/handle/123456789/2329

शर्मा, एस. (2010). क्लाइमेट चेंज इम्पैक्ट ऑन लाइवलीहुड एंड वलनरबिलिटी: ए केस स्टडी ऑफ मुसहर कम्यूनिटी इन सप्तरी डिस्ट्रिक्ट इन नेपाल. ऑनलाइन प्रकाशित शोध प्रबंध, बीआरएसी यूनिवर्सिटी ढाका, बांग्लादेश. Retrieved from: http://dspace.bracu.ac.bd/xmlui/handle/10361/1396

शर्मा, जोखन एंड नायक, जे.के. (2018). 'मुसहर शैडयूल्ड कास्ट इन सोशल ट्रांजिशन फेज : एन अंथ्रोपोलोजिकल स्टडी'. *एशियन मैं (द) - एन इंटरनेशनल जर्नल,* 12(2), 266-273. https://www.researchgate.net/publication/330562134_Musahar_Scheduled_Caste_in_Social_Transition_Phase_An_Anthropological_Study

सामाजिक न्याय मंत्रालय, भारत सरकार (2021), *हैंडबुक ऑफ सोशल वेलफेयर स्टेटिस्टिक्स* (2021). पेज: 29 व 61-114. retrieved from: https://socialjustice.gov.in/writereaddata/UploadFile/HANDBOOKSocialWelfareStatistice2021.pdf(29/12/2022)

सिंह, एस.एस. (2013). 'इंटरवेंशन, आइडेंटिटी एंड मार्जिनलिटी : एन एथ्नोग्राफिक अकाउंट ऑफ द मुसहर्स'. *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 48(20), 52-59. http://www.jstor.org/stable/23527368

थामस, एम.जे. एंड आरा, ए. (2018) इस सोशियो इकोनॉमिक अप्रेजल ऑन लाइवलीहुड स्ट्रगल ऑफ मुसहर कम्यूनिटी इन इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट, द ओरियंटल एंथ्रोपोलॉजिस्ट, *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ द साइंस ऑफ मैन,* 18(1), 121-129. https://journals.sagepub.com/doi/10.1177/0976343020180109

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 136-145)
UGC-CARE (Group-I)

जनजातियों में विवाह-विच्छेद : एक सामाजिक अध्ययन

अश्विनी महाजन* एवं खोमन लाल साहू†

प्रस्तुत शोधपत्र में छत्तीसगढ़ के बस्तर संभाग में जनजाति एवं गैर-जनजातियों में विवाह-विच्छेद के कारण एवं संबंध-विच्छेद से होने वाली समस्याओं और चुनौतियों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। शोधपत्र में विवाह पश्चात् पाँच वर्ष के भीतर हुए विवाह-विच्छेद दंपतियों का चयन कर साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से 100 उत्तरदाताओं से आंकड़ों का संकलन किया गया है, जिसमें 50 पुरुष एवं 50 महिला उत्तरदाता हैं। प्राप्त तथ्यों के आधार पर अधिकांश विवाह-विच्छेद 20-25 आयु वर्ग के मध्य विवाहितों के हैं। वहीं विवाह-विच्छेद के कारणों में मुख्यत: सम्प्रेषण का अभाव, आर्थिक समस्या, भावनात्मक लगाव की कमी, निराशा, महिलाओं का काम-काज हेतु घर से बाहर जाना एवं पत्नियों का अन्य पुरुष से संबंध होने का शक प्रमुख कारण है।

बीज शब्द - जनजातीय वैवाहिक परंपराएँ, विवाह-विच्छेद, सोशल मीडिया एवं विवाह-विच्छेद।

---

*प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)
E-mail: ashwinimajahan0123@gmail.com
†शोधार्थी, शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)
E-mail: khomansahu1010@gmail.com

प्रस्तावना

किसी भी विवाह में पति-पत्नी की अहम् भूमिका होती है जो परिवार में बच्चों का पालन-पोषण के साथ-साथ अनेक सामाजिक, पारिवारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। हमारे देश में विवाह एक पवित्र संस्कार के रूप में देखा जाता है, इससे परिवार में भावनात्मक संबंध स्थापित होने के साथ ही अनेक प्रकार की समस्याओं कठिनाइयों को दूर किया जाता है। विवाह-विच्छेद पारिवारिक विघटन, व्यक्तिगत तनाव, सामाजिक तालमेल इत्यादि अनेक प्रकार की समस्याओं से लोगों के जीवन को प्रभावित करता है (कपाडिया, 2006)। इस शोधपत्र में विशेषत: जनजाति समाज में विवाह-विच्छेद एवं वैवाहिक स्थिति की वस्तुस्थितियों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान समय में गैर-जातियों की तरह जनजाति समाज में भी विवाह-विच्छेद का स्वरूप दिखाई दे रहा है जिसका जनजाति समाज पर नकारात्मक प्रभाव हो रहा है। जनजाति समाज में विवाह-विच्छेद की स्थिति इस प्रकार है कि जो जनजातीय लोग आधुनिकीकरण के प्रभाव में आये हैं, आधुनिक सामाजिक जीवनशैली और प्रभाव का सामना किया है। हालांकि इसका विवाह-विच्छेद का तरीका अधिकांशत: पारम्परिक रहा है फिर भी जनजातियों में ऐसा वर्ग जो शिक्षा द्वारा स्वयं को समाज की मुख्य धारा में जोड़ने का प्रयास किया हैं ऐसे वर्ग में विवाह-विच्छेद की संभावना अधिक दृष्टिगोचर हो रही है। प्रस्तुत शोधपत्र जनजाति एवं गैर-जनजातियों में होने वाले विवाह-विच्छेद की वस्तुस्थिति एवं कारणों को ज्ञात करने में सहायक होगा जिससे पूर्व एवं वर्तमान के कारणों का तुलनात्मक अध्ययन करने में एक सेतु का कार्य करेगा। संबंध विच्छेद के वास्तविक तथ्यों को समझते हुए उन समस्याओं से संबंधित सुझावों व समाधान हेतु उपयुक्त उपायों को समझने में सहायक होगा।

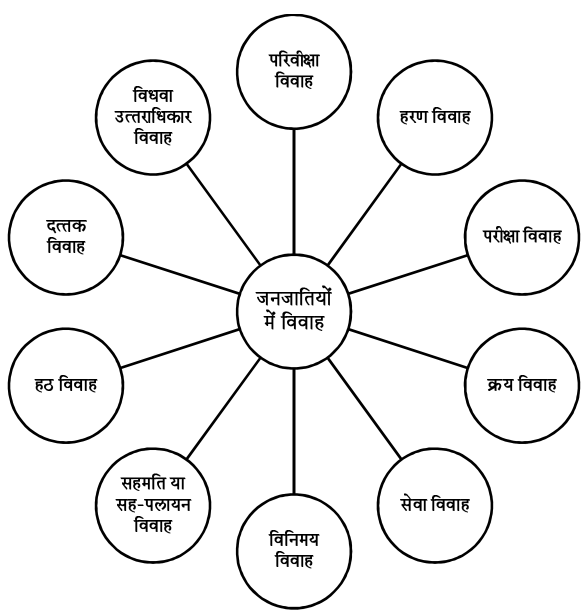

जनजातियों में विवाह केवल दो परिवार, व्यक्ति का संबंध न होकर परिवार का स्थायी संबंध का माध्यम समझा जाता है। इस प्रकार जनजातियों में विवाह की कुछ ऐसी प्रथाएँ विकसित हो गयी है जिससे कुछ परिवार विवाह के आधार पर सदैव एक-दूसरे के सहयोगी बने रहते हैं। जनजातियों में एक विवाह और बहुविवाह की प्रथा अर्थात् एकल विवाह में एक महिला/पुरुष एक समय में केवल एक ही पुरुष/महिला से विवाह करता है, जबकि बहुविवाह में एक महिला/पुरुष एक समय में एक से अधिक पुरुष/महिला से विवाह कर सकता है। वहीं जनजातियों में विवाह के स्वरूप यथा-परिवीक्षा विवाह, हरण विवाह, परीक्षा विवाह, क्रय विवाह, सेवा विवाह, विनिमय विवाह, सहमति विवाह और सह-पलायन विवाह की प्रथा सर्वाधिक रूप से देखी जाती है (त्रिपाठी, 2016)। छत्तीसगढ़ की जनजातियों में एकल विवाह की प्रथा प्रचलित है तथा विवाह के अन्य स्वरूपों में सहमति विवाह, परिवीक्षा तथा विनिमय विवाह अब भी विद्यमान है। जनजातियों में विधवा विवाह, परित्यक्ता महिलाओं का सरलतापूर्वक दूसरा विवाह करा दिया जाता है जबकि सभ्य समाज में एक विधवा, परित्यक्ता महिला या पुरुष का विवाह कराना एक चुनौतीपूर्ण कार्य समझा जाता है।

पूर्व की जनजातियों में विवाह के लिए किसी प्रकार का आमंत्रण पत्र नहीं होता था, केवल विवाह की सूचना मौखिक रहती थी, किन्तु समय के साथ-साथ आधुनिक समाज से जनजातियों का सम्पर्क होता गया और इन्होंने भी आधुनिक समाज की भांति वैवाहिक आमंत्रण पत्र छपवाना प्रारंभ कर दिया है। अधिकांश जनजातियों में विवाह के बाद विवाह पंजीयन नहीं हो रहा है तथा संविधान के अनुच्छेद 366 के भाग 25 के अर्थों में घोषित अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर इस अधिनियम की कोई भी बात लागू नहीं होती है अर्थात् जनजातियों में वैवाहिक कानून से मुक्ति प्राप्त हो जाने पर विवाह और विवाह विच्छेद के मामलों में उनकी परम्परागत विधियाँ प्रभावी है। यही कारण है कि जनजातियों में सामान्य चौपाल के माध्यम से विवाह-विच्छेद की परम्परागत विधि को अपनाया जाता है जिसमें किसी भी व्यक्ति को कोई आपत्ति नहीं होती है। समस्या तब उभरकर सामने आती है जब कोई एक पक्ष न्यायालय की शरण में जाता है। न्यायालय की शरण में जाने वाले उच्च शिक्षित और नौकरीपेशा वर्ग सम्मिलित है। यहाँ आदिवासियों की ग्रामीण तथा शहरों में रहने वाले जनजातियों में होने वाले विच्छेद का सामाजिक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है (जैन, 1996)।

शोध साहित्य का पुनरावलोकन

द्विवेदी, दिनेशराय (2012) ने 'राजस्थान की मीणा जनजाति में विवाह-विच्छेद और नातरा' में विवाह-विच्छेद से संबंधित विभिन्न विधियों के अंतर्गत परंपरागत एवं न्यायालय की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन किया जिसमें पाया कि परम्परागत विधियों को प्राथमिकता दी गई जबकि संवैधानिक नियमों की अनुच्छेद 366 के अंतर्गत विवाह-विच्छेद को दूर रखा गया है।

पंत, संजय कुमार (2018) ने 'उत्तराखण्ड में जनजातीय वर्गों की वैवाहिक परम्पराएँ' शीर्षक से अपने शोधपत्र में जनजातीय वर्गों की वैवाहिक परंपराओं के ऐतिहासिक सन्दर्भ में अवलोकन और अध्ययन करने के बाद स्पष्ट किया कि वैवाहिक प्रक्रिया एवं व्यवस्थाएँ जनजातीय बुजुर्गों के हाथों में होती है। इनमें अन्य किसी भी सवर्ण या असवर्ण वर्ग में जातीय पंचायत नहीं होती है। पैतृक संपत्ति में कन्या का अधिकार होता है किन्तु जनजातीय समाज में विवाहों का सबसे बड़ा निषेधात्मक पहलू कहा जा सकता है।

साहू, विरेन्द्र (2022) ने 'जनजातीय परंपरा पर आधुनिकता का प्रभाव' सम्बन्धी शोधपत्र में जनजातियों पर आधुनिकीकरण के प्रभावों का उल्लेख करते हुए सहरिया जनजाति में परंपरा और आधुनिक जीवन शैली सामंजस्य पर प्रकाश डाला है। इसमें जनजाति अपने संस्कृति एवं परंपरा को बनाये रखे हुए हैं किंतु विवाह संबंधी क्षेत्रों में आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। आधुनिक शिक्षा एवं पाश्चात्य संस्कृति के कारण विवाह-विच्छेद के स्वरूप में परिलक्षित हो रहा है, हालांकि आधुनिक एवं सभ्य समाज की तुलना में जनजातियों में आज भी अपनी संस्कृति के प्रति लगाव एवं समर्पण अधिक है।

अध्ययन के उद्देश्य

जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को ज्ञात करना; जनजातियों में विवाह के समय आयु की स्थिति को ज्ञात करना; तथा विवाह-विच्छेद के प्रभावों को ज्ञात करना।

समस्या कथन

जैसे-जैसे आधुनिकीकरण हो रहा है एवं पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा है, वैसे-वैसे समाज का प्रत्येक वर्ग इसके प्रभाव में आते जा रहा है। वर्तमान समय में इसका सर्वाधिक प्रभाव इंटरनेट एवं सोशल मीडिया का रहा है जो गैर-आदिवासी समाज के साथ-साथ आदिवासी समाज पर भी प्रमुखता से पड़ा है। इसका एक प्रभाव आदिवासियों के वैवाहिक पद्धति एवं विवाह पश्चात् होने वाले मतभेद, विवाह-विच्छेद पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। आज आदिवासियों में भी विवाह-विच्छेद की संख्या में सामान्य की अपेक्षा वृद्धि देखी जा रही है तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं आर्थिक विघटन का कारण बनता जा रहा है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़े

शोधार्थी द्वारा प्राथमिक आंकड़ों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन पद्धति का प्रयोग किया गया है, साथ ही उत्तरदाताओं से संबंधित रिश्तेदार, मित्र, सहकर्मी और पड़ोसियों से भी विचार-विमर्श कर प्रतिवेदन तैयार किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों के लिए शासकीय एवं गैर-शासकीय दस्तावेज, समाचार पत्र-पत्रिकाओं, शोधपत्रों एवं इंटरनेट इत्यादि की सहायता से संकलित किया गया है।

निदर्शन

निदर्शन हेतु शोधार्थी द्वारा छत्तीसगढ़ राज्य के जनजातीय संभाग बस्तर के सभी सात जिलों (बस्तर, कोण्डागाँव, नारायणपुर, दन्तेवाड़ा, बीजापुर, सुकमा एवं कांकेर) से 100 विवाह-विच्छेद हो चुके महिलाओं और पुरुषों को शामिल किया गया है। इसमें ऐसे उत्तरदाता सम्मिलित है जो न्यायालय एवं सामाजिक रूप से विवाह-विच्छेद हो चुका है। इनका चयन असंभावित निदर्शन पद्धति से किया गया है, उत्तरदाताओं का चयन निम्नानुसार है -

क्र.	बस्तर संभाग के जिले	उत्तरदाताओं का चयन		
		महिला	पुरुष	योग
1.	बस्तर	09	09	18
2.	कोण्डागाँव	07	09	16
3.	नारायणपुर	08	05	13
4.	दन्तेवाड़ा	07	10	14
5.	बीजापुर	03	05	08
6.	सुकमा	04	03	07
7.	कांकेर	14	07	21
	योग	52	48	100

उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण

उत्तरदाताओं की आयु

विवाह हेतु कानूनी रूप से एक निश्चित आयु तय की गयी है, राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम आयु सीमा 18 वर्ष (लड़कियों) तथा 21 वर्ष (लड़कों) हेतु तय किया गया है, इससे पूर्व विवाह की स्थिति को बाल-विवाह की श्रेणी में रखा जाता है, जो एक अपराध भी है जिसमें उत्तरदाताओं की स्थिति निम्न है -

सारणी 01

विवाह के समय उत्तरदाताओं की आयु

क्र.	आयु वर्ग (वर्ष में)	संख्या	प्रतिशत
1.	16 - 18	37	37.0
2.	19 - 21	29	29.0
3.	22 - 26	25	25.0
4.	27 - 35	09	9.0
	योग	100	100

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा संकलित, 2023.

सारणी 01 में अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं की आयु संरचना की स्थिति को दर्शाता है। सारणी से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 37 प्रतिशत उत्तरदाताओं की आयु 16-18 वर्ष

आयु वर्ग के मध्य है। 19-21 वर्ष आयु वर्ग के मध्य विवाह संबंधी जानकारी देने वाले उत्तरदाता 29 प्रतिशत है। 22-26 वर्ष आयु वर्ग के मध्य विवाह की जानकारी देने वाले उत्तरदाता 25 प्रतिशत है तथा 27 - 35 आयु वर्ग के मध्य विवाह होने की जानकारी देने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत 9.0 प्रतिशत है।

उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जनजातियों में आज भी विवाह की न्यूनतम आयु 16-18 वर्ष के मध्य है ऐसे में नव-विवाहित जोड़ा शारीरिक-मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से परिपक्व नहीं रहता है। ऐसे में दोनों में किसी बात को लेकर सरलतापूर्वक मन-मुटाव या तनाव की स्थिति होना स्वभाविक है, जो आगे चलकर विवाह-विच्छेद का कारण बन जाता है।

उत्तरदाताओं की शैक्षणिक योग्यता

शिक्षा मानव समाज के विकास एवं प्रगति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह किसी भी समाज के ज्ञान, समझ और समपर्ण की भावना को विकसित करने में आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान करती है। शिक्षा मानवीय संपदा में वृद्धि करने के साथ-साथ विकास के विभिन्न आयामों में समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा द्वारा किसी भी समाज में सर्वदा सामाजिक प्रक्रिया को मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। इस प्रकार कोई भी समाज सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनता है। शोधार्थी द्वारा जनजातीय समाज में शिक्षा की स्थिति को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है ताकि जनजातियों में विवाह के प्रति सामाजिक समझ एवं धारणा को समझने में सहायता मिल सके।

सारणी 02
उत्तरदाताओं की शैक्षणिक योग्यता

क्र.	शैक्षणिक योग्यता	संख्या	प्रतिशत
1.	प्राथमिक	05	5.0
2.	माध्यमिक	10	10.0
3.	हाई	15	15.0
4.	हायर सेकेण्डरी	39	39.0
5.	स्नातक	18	18.0
6.	स्नाकोत्तर	13	13.0
	योग	100	100

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा संकलित, 2023.

सारणी 02 में अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में शैक्षणिक योग्यता की स्थिति को दर्शाता है। सारणी से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाता हायर सेकेण्डरी 39.0 प्रतिशत, स्नातक 18.0 प्रतिशत, हाई स्कूल 15.0 प्रतिशत, स्नातकोत्तर 13.0, माध्यमिक 10.0 प्रतिशत एवं 5.0 प्रतिशत प्राथमिक स्तर तक शिक्षा ग्रहण किये हैं।

सारणी **02** से ज्ञात होता है कि जनजातियों में पूर्व की अपेक्षा शिक्षा के स्तर में सुधार हो रहा है, साथ ही जनजातियों में भी शिक्षा के स्तर में वृद्धि हुई है। शिक्षा के स्तर में वृद्धि होने ने आधुनिक जीवनशैली अपना रहे हैं। जनजातियों में पूर्व की अपेक्षा अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता आई है और अब अन्याय के खिलाफ खड़े हो रहे हैं, विशेषकर जनजाति महिलाएँ अधिक शोषण के शिकार हो रही थी, वे अपने ही कुटुंब द्वारा बनाये गये न्याय व्यवस्था से लड़ रहीं थी, लेकिन शिक्षित होने से शोषण के विरूद्ध लड़ने में सक्षम हुई है। इसी के फलस्वरूप शिक्षित वर्ग में विवाह-विच्छेद की दर भी अधिक है, जबकि निम्न शिक्षा के स्तर वाले उत्तरदाताओं में विवाह-विच्छेद का प्रतिशत भी कम है।

उत्तरदाताओं में विवाह के समय आयु

राष्ट्रीय स्तर पर विवाह के लिए कानून लागू है जिसमें विवाह करने की न्यूनतम आयु की जानकारी होना प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक है, वह देश के किसी भी धर्म, जाति, वर्ग, संप्रदाय के क्यों न हो उसे इस कानून का पालन करना अनिवार्य है। लेकिन सुदुर अंचल व शिक्षा के निम्न स्तर के कारण जनजातियों में उक्त कानून को ध्यान में नहीं रखा जाता और समय पूर्व विवाह की घटनाएँ अधिक देखने को मिलती है। अत: उत्तरदाताओं से विवाह के समय विवाह हेतु निर्धारित आयु के संबंध जानकारी है या नहीं, जिसे ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

सारणी 03

विवाह के समय शासन द्वारा निर्धारित आयु की जानकारी

क्र.	जानकारी	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	83	83.0
2.	नहीं	17	17.0
	योग	100	100

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा संकलित, 2023.

सारणी 03 में अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में विवाह के समय विवाह हेतु शासन द्वारा निर्धारित आयु की स्थिति को दर्शाता है। जिसमें सर्वाधिक 83.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को विवाह के संबंध में शासन द्वारा निर्धारित आयु की जानकारी थी जबकि 17.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इसकी जानकारी नहीं थी।

सारणी का काई वर्ग परीक्षण करने पर

विवरण	वास्तविक मान (O)	अनुमानित मान (E)	O - E	$(O - E)^2$	$(O - E)^2/E$
हाँ	83	33	50	2500	75.76
नहीं	17	-33	50	2500	75.76
योग	100				151.52

काई वर्ग का परिकल्पित मान	=	6.76
सार्थकता का अंतर P(5%)	=	0.05
स्वतंत्र कोटि (df)	=	(n-1) = (2-1) = 1
सारणी मान	=	3.84

स्वतंत्र कोटि 1 का सार्थकता स्तर 0.05 पर सारणी मान 3.84 है, जो कि काई वर्ग के परिकल्पित मान 3.84 <151.52 से कम है। अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि अधिकांशत: जनजातीय वर्ग में विवाह हेतु शासन द्वारा निर्धारित आयु की जानकारी है, वहीं दूसरी ओर जो अल्पशिक्षित वर्ग जागरूक नहीं है जिन्हें उक्त तथ्यों की जानकारी नहीं है। परन्तु इन सबके बावजूद सामाजिक विचार, समझ अथवा सामाजिक दबाव के कारण लड़के/लड़कियों का विवाह निर्धारित आयु से पूर्व करा दी जाती है जिसके कारण युवक/युवती शारीरिक-मानसिक, पारिवारिक एवं सामाजिक रूप से परिपक्व नहीं होने के कारण आपसी विवाद बढ़ता है और विवाह-विच्छेद की संभावना बढ़ जाती है।

जनजातियों में विवाह-विच्छेद

हमारे देश में विवाह-विच्छेद के दो आधार अथवा पद्धति सर्वाधिक रूप से प्रचलित है जिसके माध्यम से यदि दंपत्तियों में संबंध खराब होता है तो संबंध विच्छेद (विवाह-विच्छेद) इनके माध्यम से किया जा सकता है। प्रथमत: इस प्रकार की समस्या आने पर सामाजिक या जातिगत ढंग से संबंधित दंपत्तियों की समस्या सुलझाया जाता है तथा दूसरा न्यायालय के माध्यम से। शोधार्थी द्वारा जनजातियों में विवाह-विच्छेद के प्रकार या पद्धतियों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

सारणी 04

विवाह विच्छेद के प्रकार

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	सामाजिक स्तर पर	71	71.0
2.	न्यायालय द्वारा	29	29.0
	योग	100	100

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा संकलित, 2023.

सारणी 04 में अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में विवाह-विच्छेद के माध्यम अथवा संबंधित संस्था की स्थिति से संबंधित है। जिसमें सर्वाधिक 71.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विवाह-विच्छेद जातिगत सामाजिक स्तर पर विवाह-विच्छेद हुआ है जबकि 29.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विवाह-विच्छेद न्यायालय के माध्यम से हुआ है।

सारणी का काई वर्ग परीक्षण करने पर

विवरण	वास्तविक मान (O)	अनुमानित मान (E)	O - E	$(O - E)^2$	$(O - E)^2/E$
सामाजिक स्तर पर	71	50	21	441	8.82
न्यायालय द्वारा	29	50	-21	441	8.82
योग	100				17.64

काई वर्ग का परिकल्पित मान = 1.64

सार्थकता का अंतर P(5%) = 0.05

स्वतंत्र कोटि (df) = (n-1) = (2-1) = 1

सारणी मान = 3.84

स्वतंत्र कोटि 1 का सार्थकता स्तर 0.05 पर सारणी मान 3.84 है, जो कि काई वर्ग के परिकल्पित मान 3.84 <17.64 से कम है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि जनजातियों में विवाह के पश्चात् दंपत्तियों में किसी प्रकार के मतभेद या ऐसी कोई भी बात होती है जिसके कारण से विवाह-विच्छेद की स्थिति निर्मित होती है तो प्राथमिक एवं अधिकांशत: सामाजिक या जातिगत ढंग से निराकरण किया जाता है तथा जो जनजातियों में उच्च शिक्षित या शासकीय सेवाओं में कार्यरत है वे न्यायालय की शरण में जाते हैं।

सुझाव

जनजातियों में गैर-जनजातियों की अपेक्षा विवाह-विच्छेद की दर कम है, हालांकि विवाह-विच्छेद एक गंभीर समस्या है तथा इसमें भी आधुनिक समाज का गहरा प्रभाव पड़ रहा है जिसके कारण विवाह-विच्छेद में वृद्धि हो रही है। ऐसे में पारिवारिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण के साथ-साथ विवाह की जिम्मेदारियों को भी भलीभांति समझते हुए दंपत्तियों को वैवाहिक जीवन का आनंद लेना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोधपत्र में छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर संभाग जो कि एक जनजाति बाहुल्य क्षेत्र है, यहाँ जनजातियों में विवाह-विच्छेद की स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है जिसमें अध्ययन के पश्चात् यह तथ्य उभरकर सामने आया कि जनजातियों में गैर-जनजातियों की अपेक्षा विवाह-विच्छेद अत्यल्प है तथा विवाह-विच्छेद के पश्चात् इन्हें अन्य विवाह करने या पुन: घर बसाने में विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है क्योंकि जनजातियों में विवाह-विच्छेद को एक सामान्य घटना की तरह देखा-समझा जाता है। जनजातियों में शिक्षा की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है, हालांकि इनमें विवाह के समय आयु 17-19 लड़कियों तथा 20-22 लड़कों की होती है। विवाह पश्चात् किसी कारणवश यदि विवाह-विच्छेद की स्थिति निर्मित होती है तो अधिकांशत: जातिगत/सामाजिक पद्धति से निराकरण किया जाता है।

सन्दर्भ

द्विवेदी, दिनेशराय (2012) *राजस्थान की मीणा जनजाति में विवाह-विच्छेद और नातरा,* https://teesrakhamba.com

गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2006) *समाजशास्त्र,* साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा.

जैन, शोभिता (1996) *भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी,* रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.

कपाडिया, के.एम. (2006) *भारत में विवाह एवं परिवार,* मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, नई दिल्ली.

पंत, संजय कुमार, 'उत्तराखण्ड में जनजातीय वर्गों की वैवाहिक परंपराएँ', *शोध मंथन,* जून 2018, पृ. 204-209.

त्रिपाठी, राजेन (2016) *नातेदारी, विवाह एवं परिवार का समाजशास्त्र,* महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, मध्यप्रदेश.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 146-155)
UGC-CARE (Group-I)

भारत और इजराइल के बीच बढ़ती सामरिक साझेदारी : रक्षा और सुरक्षा संबंधों के संदर्भ में

शम्भु लाल सालवी*

भारत-इजराइल संबंधों का इतिहास काफी पुराना है क्योंकि यहूदी धर्म का भारत से सदियों पुराना संबंध है। दोनों देशों के बीच मैत्री की मजबूत नींव रखने में भारत में रह रहे यहूदी समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत ने 1950 में इजराइल को एक स्वतंत्र देश के रूप में मान्यता प्रदान की। परन्तु उसके साथ विभिन्न परिस्थितियों के कारण कूटनीतिक संबंध काफी समय बाद स्थापित किए। वर्तमान भारत-इजराइल के बहुआयामी द्विपक्षीय संबंधों का मुख्य आधार दोनों देशों के बीच मजबूत होते रक्षा संबंध हैं। भारत और इजराइल के बीच रक्षा और सुरक्षा संबंधों में पिछले कुछ दशकों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। यह साझेदारी मुख्य रूप से आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष, सैन्य तकनीक के विकास, और दोनों देशों की सुरक्षा चिंताओं के इर्द-गिर्द केंद्रित है। यह साझेदारी केवल रक्षा उपकरणों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें साइबर सुरक्षा, खुफिया जानकारी का आदान-प्रदान और आंतरिक सुरक्षा तंत्र भी शामिल हैं। भारत-इजराइल सामरिक संबंध न केवल दोनों देशों की सुरक्षा को सुदृढ़ करते हैं, बल्कि क्षेत्रीय और वैश्विक सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। प्रस्तुत

*अतिथि व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान).
E-mail: slsjnu78@gmail.com

शोध पत्र इन्हीं बातों को रेखांकित करते हुए वर्तमान संदर्भों में भारत-इजराइल संबंधों की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। शोध पत्र प्रमुखतया द्वितीयक स्रोतों पर आधारित होकर भारत-इजराइल संबंधों की विवेचना करने के साथ-साथ इन संबंधों को और प्रगाढ़ बनाने की दिशा में उचित सुझाव भी प्रस्तुत करता है।

परिचय

भारत का यहूदी धर्म के साथ सभ्यतागत और सांस्कृतिक संबंध है। सदियों से, यहूदी भारतीय उपमहाद्वीप में बहुलवादी बहु-आस्था वाले भारतीय समाज में सामंजस्यपूर्ण रूप से एकीकृत होकर रहते आए हैं। भारत और इजराइल ने औपचारिक रूप से 29 जनवरी 1992 को पूर्ण राजनयिक संबंध स्थापित किए। इजराइल के साथ भारत के संबंध लगभग चार दशकों तक निष्क्रिय रहे। हालाँकि खाड़ी युद्ध और शीत युद्ध की समाप्ति जैसे वैश्विक भू-रणनीतिक वातावरण में अचानक आए बदलावों ने भारत को इजराइल के साथ पूर्ण राजनयिक संबंध स्थापित करने के लिए मजबूर किया। तब से दोनों देशों के बीच आर्थिक, सैन्य, कृषि और राजनीतिक स्तर पर द्विपक्षीय साझेदारी विकसित हुई है (गुप्त, 2021)। दोनों देश खुद को अलग-थलग लोकतंत्र के रूप में देखते हैं, जो पड़ोसियों के शत्रुतापूर्ण व्यवहार से खतरे में हैं, जो आतंकवाद और धार्मिक उग्रवाद को प्रशिक्षित, वित्तपोषित और प्रोत्साहित करते हैं।

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद बदलते वैश्विक परिदृश्य के साथ, भारत में इजरायल समर्थक ताकतों को प्रमुखता मिली। भारत-इजरायल रिश्ते के तीन मुख्य पहलू हैं: सबसे पहले, अब भारत पश्चिम एशियाई शांति प्रक्रिया में खुद को शामिल करने और इस तरह फिलिस्तीन के पक्ष में इजरायली नीति को प्रभावित करने के लिए बेहतर स्थिति में है। दूसरे, आपसी व्यापार, कृषि नवाचार और वैश्विक इजरायली निवेश जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में लाभ। अंत में, वैश्विक राजनीति में एक इस्लामी गुट के उद्‌भव ने यह आवश्यक बना दिया कि भारत को अपना फिलिस्तीन समर्थक रुख बदलना चाहिए और इजराइल के करीब आना चाहिए (ब्लारेल, 2014)। पिछले कई वर्षों के दौरान भारत-इजरायल संबंधों ने विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

भारत-इजरायल संबंधों में द्विपक्षीय साझेदारी के संपूर्ण आयाम पर पांच प्रमुख श्रेणियों के तहत चर्चा की जा सकती है - राजनीतिक, रणनीतिक, सैन्य, व्यापार और अन्य। राजनीतिक स्तर पर दोनों देशों के बीच उच्च स्तरीय राजनीतिक दौरे होते रहे हैं। भारत-इजराइल रणनीतिक साझेदारी में रक्षा आपूर्ति, आंतरिक सुरक्षा और आतंकवाद विरोधी उपाय शामिल हैं। दोनों देशों के बीच रक्षा और सैन्य साझेदारी रणनीतिक साझेदारी का प्रमुख पहलू रही है। भारत और इजराइल के बीच आर्थिक और कृषि सहयोग अब तेजी से बढ़ रहा है, जिसमें संयुक्त उद्यमों के माध्यम से प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के साथ-साथ उद्योगों में निवेश भी शामिल है।

भारत और इजराइल के बीच रिश्ते पहले भी हमेशा मधुर नहीं रहे हैं। हालाँकि दोनों देशों ने ब्रिटिश शासन से अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की और लगभग चार दशकों तक उन्होंने खुद को अलग-अलग दिशाओं में आगे बढ़ता हुआ पाया। गुट निरपेक्ष आंदोलन के एक नेता के रूप में भारत ने सोवियत संघ के साथ एकजुटता दिखाते हुए अरब देशों के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों को बनाए रखा। इजराइल ने अपना भविष्य अमेरिका और पश्चिमी यूरोप के साथ घनिष्ठ द्विपक्षीय संबंधों से जोड़ा (चोपड़ा, 2022)। भारत की बड़ी अल्पसंख्यक मुस्लिम आबादी भारत के इजराइल के साथ संबंध मजबूत करने में एक और बड़ी बाधा थी, जैसा कि भारत को डर और झिझक थी कि यहूदी राज्य (इजराइल) के साथ घनिष्ठ संबंध किसी तरह उसके मुस्लिम नागरिकों को कट्टरपंथी बना सकते हैं और अरब राज्यों के साथ उसके संबंधों के साथ-साथ फिलिस्तीन को उसके समर्थन और कश्मीर में भारत की संवेदनशील स्थिति और बढ़ती आर्थिक निर्भरता को भी नुकसान पहुंचा सकते हैं (अफरीदी, 2012)।

अरब राज्यों के साथ 1980 के दशक तक भारत सार्वजनिक तौर पर इजराइल से दूरी बनाकर रखता था, लेकिन पिछले वर्षों में दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय जुड़ाव बढ़ा है। 1950 में, भारत ने इजराइल को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता दी और हजारों भारतीय यहूदियों के इजराइल में स्वैच्छिक आप्रवासन की सुविधा के लिए इजराइल को बॉम्बे में वाणिज्य दूतावास स्थापित करने की अनुमति दी। हालाँकि भारत ने वर्ष 1950 में इजरायल को आधिकारिक रूप से मान्यता दी थी, लेकिन दोनों देशों के बीच पूर्ण राजनयिक संबंध 29 जनवरी, 1992 को स्थापित हुए (कुमारास्वामी, 1995)। दिसंबर 2020 तक भारत संयुक्त राष्ट्र संघ (यूएनओ) के 193 सदस्य देशों में से एक था और उसके इजरायल के साथ राजनयिक और आर्थिक संबंध थे। राजनयिक संबंध बनने के बाद से भारत के इजरायल के साथ संबंध लगातार मजबूत ही हुए हैं। दोनों देशों के बीच पूर्ण कूटनीतिक संबंधों के 30 साल 2022 में ही पूरे हो गए थे।

कई भारतीयों ने कृषि प्रौद्योगिकी और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में विभिन्न पाठ्यक्रमों और प्रशिक्षण में शामिल होने के लिए इजराइल की यात्रा भी की है। कारगिल युद्ध (1999) के दौरान, इजराइल ने पाकिस्तानी आक्रमण के खिलाफ भारत को अत्याधुनिक हथियार और सैन्य उपकरण प्रदान किए। इजराइल ने 2001 के भूकंप के दौरान भी भारत को मानवीय राहत प्रदान की थी (कुमार, 2017)।

आज भारत इजराइल के प्रमुख व्यापारिक साझेदारों में से एक बन गया है। दोनों देशों में दुनिया की कई अग्रणी हाई-टेक कंपनियों ने संयुक्त उद्यम बनाने के लिए हाथ मिलाया है जो अब कठिन अंतर्राष्ट्रीय बाजार में सफलतापूर्वक काम कर रहे हैं। दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार अब सुरक्षा-संबंधी सौदों और कृषि और जल प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में सहायता पर केंद्रित है।

एशिया में इजरायल का तीसरा सबसे बड़ा व्यापार साझेदार भारत है। वहीं वैश्विक स्तर पर भारत, इजरायल का सातवां सबसे बड़ा व्यापार भागीदार है। 1992 में दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार 200 मिलियन डॉलर था, जो बढ़कर 2021-22 में बढ़कर 7.86 अरब

डॉलर पहुंच गया। इसमें रक्षा से जुड़े आंकड़े शामिल नहीं हैं। भविष्य में इसके 20 अरब डॉलर तक पहुंचने की उम्मीद है। अप्रैल 2000 से लेकर सितंबर 2021 तक इजरायल का भारत में प्रत्यक्ष निवेश 25.46 करोड़ अमेरिकी डॉलर रहा है (गोपाल और शर्मा, 2007)। कृषि के क्षेत्र में अब तक इजरायल भारत में 30 सेंटर ऑफ एक्सीलेंस फॉर हार्टिकल्चर खोल चुका है तथा आने वाले समय में इस संख्या में वृद्धि होना तय है।

इजरायल के साथ आर्थिक संबंधों में व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में है। इसका आशय यह है कि भारत इजराइल से आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक करता है। भारत की इजरायल के साथ व्यापार में हीरा और केमिकल प्रमुख वस्तुएं हैं। इजरायल की करीब 300 कंपनियों का भारत में निवेश है। भारत और इजरायल के बीच सामरिक संबंध है। दोनों देशों के बीच एक मुक्त व्यापार समझौते पर व्यापक स्तर पर बातचीत जारी है। इस समझौते के होने से दोनों देशों के बीच सहयोग को और अधिक बढ़ावा मिलेगा। इससे दोनों देशों के बीच सहयोग के नए क्षेत्रों को विस्तार मिलने के साथ-साथ आपसी संबंध भी मजबूत होंगे।

राजनयिक संबंध स्थापित होने के बाद रक्षा और कृषि द्विपक्षीय संबंधों के मुख्य स्तंभ बने। हाल के वर्षों में दूसरे क्षेत्रों में भी तेजी से सहयोग बढ़ा है। भारत-इजरायल के बीच का संबंध दो ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्थाओं के बीच का संबंध है, जो अब हाईटेक साझेदारी में बदल गई है। भारत और इजरायल के पास जल, कृषि, आतंकवाद का मुकाबला और रक्षा समेत सभी क्षेत्रों में सहयोग के लिए द्विपक्षीय परामर्श तंत्र है। खासतौर से रक्षा इजरायल के साथ सहयोग की प्राथमिकता रही है। नवंबर 2021 में दोहरे उपयोग वाली तकनीकों के विकास के लिए दोनों देशों के स्टार्टअप और माइक्रो, स्माल एंड मीडियम इंटरप्राइजेस में नवाचार को बढ़ावा देने और अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देने के लिए एक द्विपक्षीय नवाचार समझौते पर हस्ताक्षर किए थे (पोखरियाल, 2022)।

रक्षा व्यापार के अतिरिक्त, भारत और इजराइल रक्षा तकनीक के क्षेत्र में भी सहयोग बढ़ा रहे हैं। उनकी कामयाबी का प्रतीक बराक-8 हवाई और मिसाइल डिफेंस सिस्टम है। इसे इजराइल के एयरोस्पेस इंडस्ट्रीज और भारत के रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन ने मिलकर विकसित किया है। बराक-8 डिफेंस सिस्टम के जमीन और समुद्र में तैनात किए जाने विकल्प उपलब्ध हैं। ये मिसाइल डिफेंस सिस्टम, सीमा की तरफ आ रहे लड़ाकू विमान, ड्रोन, बैलिस्टिक और क्रूज मिसाइलों जैसे लक्ष्यों का 150 किलोमीटर दूर से पता लगा सकता है।

इसके अलावा, इजराइल के एयरोस्पेस इंडस्ट्रीज और भारत के हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड के साथ मिलकर सेकेंड हैंड बोईंग-767 नागरिक विमानों को भारतीय वायुसेना के लिए हवा में ईंधन भरने वाले विमानों में तब्दील कर रही है (पाटिल, 2022)।

बराक-8 मिसाइल डिफेंस सिस्टम की कामयाबी के बाद भारत और इजराइल ने रक्षा उद्योग में सहयोग के लिए एक द्विपक्षीय उप-कार्यकारी समूह स्थापित किया है। उम्मीद की जा रही है कि इस समूह के जरिए, द्विपक्षीय इजराइल से और रक्षा तकनीकें भी भारत को हासिल होंगी। दोनों देश आपसी संसाधनों का उपयोग बढ़ाएंगे और अपनी औद्योगिक क्षमताएं साझा करेंगे।

भारत और इजरायल ने नवाचार और स्टार्टअप जैसे क्षेत्रों में साझेदारी बढ़ाने और गहन द्विपक्षीय सहयोग के एक नए चरण की शुरुआत करने का फैसला किया है। साथ ही, दोनों देशों ने भारत और इजरायल ने औद्योगिक अनुसंधान और विकास सहयोग पर एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए थे। इसके तहत एयरोस्पेस, इलेक्ट्रॉनिक्स इंस्ट्रूमेंटेशन, सिविल, इंफ्रास्ट्रक्चर और इंजीनियरिंग, इकोसिस्टम, पर्यावरण, पृथ्वी और महासागर विज्ञान और जल, खनन, खनिज, धातु और सामग्री, रसायन और पेट्रोकेमिकल्स, ऊर्जा (पारंपरिक और गैर-पारंपरिक) और ऊर्जा उपकरण, कृषि, पोषण और बायोटेक और हेल्थकेयर जैसे प्रौद्योगिकी से जुड़े क्षेत्रों पर सहयोग बढ़ाया जाएगा (कुमारास्वामी, 1998)।

हेल्थकेयर में संयुक्त गतिविधियां पहले ही शुरू हो चुकी हैं। दोनों देश एयरोस्पेस, क्वांटम टेक्नोलॉजी, लेजर, ग्रीन हाइड्रोजन, इंस्ट्रुमेंटेशन जैसे अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए सहयोग से जुड़ी योजनाओं पर काम कर रहे हैं। इस प्रकार वर्तमान में भारत और इजराइल के बीच मजबूत राजनीतिक, आर्थिक और रणनीतिक संबंध हैं और ये लगातार प्रगाढ़ होते जा रहे हैं।

इजराइल और पश्चिम एशियाई देशों के प्रति भारत की विदेश नीति पारंपरिक रूप से एक संतुलन पर आधारित विदेश नीति रही है। वर्तमान में भारत दोनों ही क्षेत्रों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखने के लिए डी-हाइफनेटेड नीति का प्रयोग कर रहा है। डी-हाइफनेटेड विदेश नीति शब्द का उपयोग किसी राष्ट्र के साथ स्वतंत्र संबंध या उसके प्रति नीति के लिए किया जाता है, भले ही ऐसी नीति किसी अन्य देश या राज्य को ठेस पहुंचा सकती हो। पहले भारत आधिकारिक तौर पर (धार्मिक आधार पर) इजरायल के निर्माण के खिलाफ था और भारत ने 1947 की फिलिस्तीन योजना के विभाजन के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र में मतदान किया था। भारत ने 1949 में संयुक्त राष्ट्र में इजरायल की सदस्यता के खिलाफ भी मतदान किया था। साथ ही, वह गुट निरपेक्ष आंदोलन का हिस्सा भी था। भारत यहूदी राज्य के साथ पूर्ण राजनयिक संबंध स्थापित करने में झिझक रहा था। इस प्रकार, इजराइल के प्रति भारत की किसी भी राजकीय यात्रा या नीति को इजराइल-फिलिस्तीन यात्रा या नीति के रूप में हाइफन किया गया था (कुमारास्वामी: 2008)। 2017 में, एक अभूतपूर्व कदम उठाते हुए भारत के पीएम मोदी ने केवल इजराइल का दौरा किया, फिलिस्तीन का नहीं। परन्तु बाद में प्रधानमंत्री की फिलिस्तीन, ओमान और संयुक्त अरब अमीरात की यात्रा फिर से इसी नीति की निरंतरता है। पारंपरिक नीति से हटना और इन दो प्रतिद्वंद्वियों के प्रति एक स्वतंत्र विदेश नीति का समर्थन करना भारत की विदेश नीति के प्रतिमानों में डी-हाइफनेशन कहा जाता है और पश्चिम एशियाई क्षेत्र में भारत के राष्ट्रीय हितों पर आधारित है (कुमारास्वामी, 2008)।

राजनीतिक रूप से अशांत प्रकृति के कारण पश्चिम एशियाई क्षेत्र भारत के विदेश नीति निर्माताओं के लिए एक बड़ा संवेदनशील मुद्दा बना हुआ है। भारत ने पश्चिम एशियाई देशों के साथ अच्छे संबंध स्थापित करने की कोशिश की है, क्योंकि यह क्षेत्र विशाल प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न हैं और 70 लाख भारतीयों का घर भी हैं, जो देश के आवक-प्रेषण का आधा हिस्सा प्रदान करते हैं और प्रमुख व्यापारिक भागीदार हैं, जो एक

अत्यधिक वांछनीय संबंध बनाते हैं। इसके विपरीत, पश्चिम एशियाई देशों के प्रति भारत की विदेश नीति चर्चा में कई वर्षों से अपनी धारणाओं, केंद्र बिंदुओं और पैटर्न में मोटे तौर पर स्थिर और अपरिवर्तित बनी हुई है। इसकी पहचान प्रतिक्रियाशीलता और प्रगतिशीलता है (घोष, 2015)। फिर भी, इस क्षेत्र में भारत के पर्याप्त हित हैं और यह तेजी से बढ़ रहे हैं।

बड़ी आबादी और आर्थिक क्षमता के साथ भारत पश्चिम एशियाई देशों के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। दूसरी ओर, पश्चिम एशियाई देशों में भारत की बढ़ती ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने की अपार क्षमता है। 1990 के दशक की शुरुआत से, भारत के आर्थिक हितों और एक उभरती हुई वैश्विक शक्ति के रूप में इसकी स्वयं की कल्पना ने भारत की विदेश नीति और सुरक्षा लक्ष्यों को परिभाषित करने में उच्च प्राथमिकता मान ली है। इसने भारतीय नीति निर्माताओं को ईरान, ईराक, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, इजराइल और अन्य खाड़ी सहयोग परिषद (जीसीसी) सदस्य देशों के साथ अपने बड़े जुड़ाव को तेज करने के लिए निर्देशित किया है, जिसके आसपास क्षेत्र में भारतीय विदेश नीति आज राजनीतिक और आर्थिक अर्थों में घूमती है (घोष, 2015)।

भारतीय इजरायल के प्रति सहानुभूति रखते हैं। साथ ही, सरकार अपने स्वयं के राष्ट्रीय हित के आधार पर अपनी पश्चिम एशिया नीति को संतुलित एवं पुनर्गठित कर रही है। हालांकि वर्तमान में भारत और इजरायल को अपने धार्मिक चरमपंथी पड़ोसियों की भेद्यता को दूर करने एवं जलवायु परिवर्तन, जल संकट, जनसंख्या विस्फोट तथा खाद्य सुरक्षा जैसे वैश्विक मुद्दों पर दोनों देशों को साथ में काम करने की आवश्यकता है। भारत को पश्चिम एशियाई देशों के संबंध में अब्राहम समझौते द्वारा किये गए भू-राजनीतिक पुनर्गठन से लाभ उठाने हेतु अधिक मुखर और सक्रिय पश्चिम एशिया नीति की आवश्यकता है (चोपड़ा, 2022)।

भारत और इजराइल सामरिक क्षेत्र में सैन्य सहयोग

भारत-इजरायल कूटनीतिक संबंधों की 30वीं सालगिरह मना रहे हैं। दोनों देशों के बीच मित्रतापूर्ण द्विपक्षीय संबंध भले ही तीन दशक पुराने हों, लेकिन यहूदी धर्म का भारत से सदियों पुराना संबंध रहा है। दोनों देशो के बीच मित्रता की मजबूत नींव रखने में भारत में रह रहे यहूदी समुदाय की विशेष भूमिका है, जो विभिन्न समय अंतराल पर भारत आए और कोच्चि, मुंबई तथा देश के अन्य भागो में बसकर भारतीयता के रंग में रंग गए। इन लोगों ने भारत के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। वैसे तो भारत ने सितंबर 1950 में इजरायल को एक देश के रूप में मान्यता दे दी थी, किंतु पूर्ण राजनयिक संबंध स्थापित करने में दोनों देशों को लंबे समय तक इंतजार करना पड़ा। भारत-इजरायल के बहुआयामी द्विपक्षीय संबंधों का आधार रक्षा संबंध हैं।

भारत ने पिछले कुछ वर्षों में इजरायल के साथ महत्वपूर्ण रक्षा सहयोग में प्रवेश किया है। भारत इजरायली सैन्य उपकरणों का सबसे बड़ा खरीदार है और रूस के बाद इजरायल भारत का दूसरा सबसे बड़ा रक्षा आपूर्तिकर्ता है। 1999 से 2022 तक दोनों देशों के

बीच सैन्य कारोबार करीब अरबों डॉलर तक पहुंच गया है। दोनों देशों के बीच सैन्य और रणनीतिक संबंध आतंकवादी समूहों पर खुफिया जानकारी साझा करने और संयुक्त सैन्य प्रशिक्षण तक विस्तारित हैं। भारत इजराइल से महत्वपूर्ण रक्षा प्रौद्योगिकियों का आयात करने के साथ-साथ सशस्त्र बलों के बीच नियमित आदान-प्रदान करते रहते हैं। आतंकवाद-निरोध पर एक संयुक्त कार्य समूह सहित सुरक्षा मुद्दों पर भी दोनों देशों के बीच आपसी सहयोग विद्यमान है (पाटिल, 2022)।

भारत के लिए इजराइल एक ऐसे मित्र देश के रूप में उभरा है, जिसने हमारी सुरक्षा चुनौतियों का हल ढूंढने में हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कारगिल युद्ध में सहयोग तथा आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में इजरायल की भूमिका अति-महत्वपूर्ण रही है। भारतीय रक्षा एजेंसियां एक लंबे समय से इजराइल के द्वारा बनाए गए हथियार प्रणाली का उपयोग करती रही हैं। फाल्कन एयरबार्न वार्निग एंड कंट्रोल सिस्टम से लेकर हेरान तक, अर्चेर ड्रोन और हारोप ड्रोंस से लेकर बराक एंटी मिसाइल डिफेंस सिस्टम तक और स्पाइडर क्विक रिएक्शन एंटी एयर क्राफ्ट सिस्टम से लेकर पाइथन, डर्बी (हवा से हवा में मार करने वाली मिसाइल) जैसी सुरक्षा प्रणालियों ने भारतीय सुरक्षा व्यवस्था को दुरुस्त रखने में इजरायल ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है (सल्होत्रा, 2017)।

चित्र 1
भारत को इजराइल के हथियारों के निर्यात के व्यापार का मूल्य सूचकांक
(2011-2021, आंकड़े दस लाख डॉलर में)

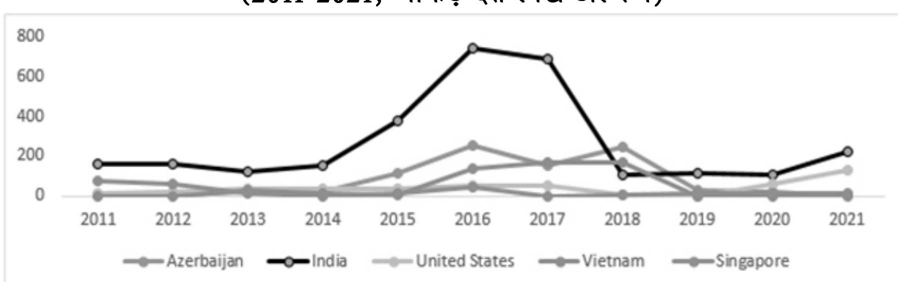

स्रोत: सिप्री आर्म्स ट्रांसफर डेटाबेस

इजराइल ने सैन्य उपयोग के लिए रडार और निगरानी उपकरण बेचे हैं और यह भारत के आतंकवाद विरोधी बलों को आतंकवाद विरोधी प्रशिक्षण भी देता है। 2014 में प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी के चुनाव के साथ भारत-इजराइल सहयोग में नाटकीय रूप से वृद्धि हुई। मई 2014 और नवंबर 2014 में मोदी के चुनाव के बीच, इजराइल ने भारत को 662 मिलियन डॉलर मूल्य के इजराइली हथियार और रक्षा सामान निर्यात किए। यह निर्यात संख्या पिछले तीन वर्षों के दौरान भारत को कुल इजरायली निर्यात से अधिक है। इजरायल के रक्षा मंत्री मोशे यालोन ने फरवरी 2015 में भारत की यात्रा की जो किसी इजरायली रक्षा मंत्री की भारत की पहली आधिकारिक यात्रा थी (नाज, 2000)।

भारत, इजराइल से जो हथियार ख़रीदता है उनमें मानवरहित विमान, मिसाइलें और रडार सिस्टम का दबदबा है। भारत ने अब तक इजराइल से (2001-2021) 4.2 अरब डॉलर के हथियार ख़रीदे हैं, जिन्हें नीचे चित्र में दर्शाया गया है -

चित्र 2
इजराइल से भारत द्वारा आयातित हथियार
(2001- 2021, आंकड़े दस लाख अमेरिकी डॉलर में)

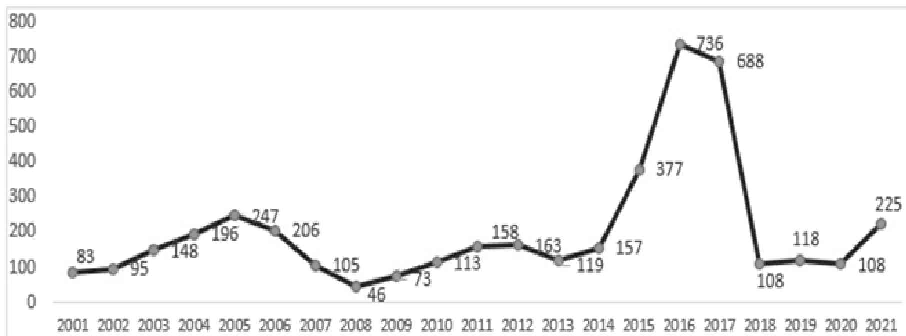

स्रोत: सिप्री आर्म्स ट्रांसफर डेटाबेस

तालिका 1
भारत द्वारा इजराइल से ख़रीदे गए अहम रक्षा उपकरण

Missiles	• Derby Beyond Visual Range Air to Air Missile (BVRAAM) • Harop loitering munition • Python-5 BVRAAM • SPICE-2000 guided bombs • Popeye-1 Air to Surface Missile (ASM) • Griffin guided bombs • Spike anti-tank guided missiles • Popeye II (Crystal Maze) ASM • SkyStriker loitering munition
Unmanned Aerial Vehicles	• Heron • Searcher MkII • Harop
Sensors and Radars	• EL/M-2075 Phalcon airborne early warning radar system • EL/M-2248 MF-STAR multi-function radar • EL/M-2084 multi-mission radar systems • EL/M-2238 naval radar system • EL/M-2052 airborne AESA fire control radar • Litening electro-optical infrared sensor system
Air Defence Systems	• Spyder medium-range Surface to Air Missile (SAM) system • Barak SAM system
Small arms	• Negev NG-7 light machine guns

स्रोत: सिप्री आर्म्स ट्रांसफर डेटाबेस

इजराइल से आयातित इन हथियारों ने भारत की निगरानी और अभियान चलाने की क्षमता को काफी मजबूत बनाया है, ख़ास तौर से कश्मीर घाटी और सीमावर्ती इलाक़ों की निगरानी में ये हथियार काफी सहायक सिद्ध हुए हैं। उदाहरणस्वरूप, इजराइल के सेंसर, हेरोन ड्रोन, हाथ में पकड़कर चलाए जा सकते वाले थर्मल इमेजिंग के उपकरणों और रात में देखने

में मदद करने वाले औजारों ने भारत को नियंत्रण रेखा के उस पार से घुसपैठ रोकने और कश्मीर घाटी में आतंकवाद के खिलाफ अभियानों में काफी मदद दी है। इसी तरह, भारत ने इजराइल के हवाई उद्योग से चार हेरोन ड्रोन पट्टे पर लिए थे, ताकि चीन के साथ सीमा पर तनातनी के दौरान, उन्हें वास्तविक नियंत्रण रेखा की व्यापक निगरानी के लिए तैनात किया जा सके (सल्होत्रा, 2017)।

10 मई, 2017 को, भारतीय प्रधान मंत्री मोदी की गर्मियों के दौरान यात्रा के कार्यक्रम से पहले, भारतीय नौसेना के तीन युद्धपोत हाइफा के बंदरगाह पर पहुंचे। जहाज, आईएनएस मुंबई, आईएनएस त्रिशुल और आईएनएस आदित्य ने बंदरगाह में प्रवेश करते समय इजरायली नौसेना के साथ एक नौसेना अभ्यास में भाग लिया (सल्होत्रा, 2017)। चीन के साथ तनावपूर्ण संबंधों के मद्देनजर, भारत ने जुलाई 2020 में इजराइल से अतिरिक्त हथियार खरीदने की योजना की घोषणा की। इजरायल और भारत दोनों के रक्षा मंत्रियों ने द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने पर चर्चा की, जहां भारतीय रक्षा क्षेत्र में इजरायली रक्षा कंपनियों की अधिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने में रुचि व्यक्त की गई।

निष्कर्ष

भारत-इजराइल सम्बन्ध भारतीय लोकतंत्र तथा इजराइल राज्य के मध्य द्विपक्षीय संबंधों को दर्शाता है। भारत और इजराइल के बीच वर्तमान में काफी क्षेत्रों में आपसी सहयोग को बढ़ावा मिलने के साथ-साथ उनके बीच रणनीतिक और सामरिक संबंध भी मजबूत हुए हैं। दोनों देश विभिन्न क्षेत्रों में आपसी साझेदारी को आगे बढ़ाने की भी कोशिश कर रहे हैं ताकि इन क्षेत्रों में अधिक सहयोग को बढ़ावा मिल सके। भारत और इजराइल के बीच बढ़ती सामरिक साझेदारी ने दोनों देशों की रक्षा और सुरक्षा क्षमताओं को एक नई दिशा दी है। यह संबंध न केवल द्विपक्षीय लाभ के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि क्षेत्रीय और वैश्विक सुरक्षा वातावरण को भी स्थिर करने में सहायक है। इजराइल की उन्नत तकनीकी विशेषज्ञता और भारत की बढ़ती रक्षा जरूरतों के मेल से दोनों देशों में एक मजबूत और परस्पर सहयोगी संबंध स्थापित हुए हैं। इस साझेदारी से दोनों देश आतंकवाद, उग्रवाद, और साइबर खतरों से निपटने में अधिक सक्षम हुए हैं। आने वाले वर्षों में यह सहयोग और भी गहरा हो सकता है क्योंकि दोनों देशों के साझा हित रक्षा, सुरक्षा, और तकनीकी नवाचार के क्षेत्र में और मजबूत होते दिख रहे हैं। सामरिक साझेदारी के इस विस्तार से, न केवल भारत और इजराइल की सुरक्षा सुदृढ़ होगी, बल्कि यह पूरे विश्व में सुरक्षा और स्थिरता के लिए एक महत्वपूर्ण मिसाल कायम करेगा। इस प्रकार वर्तमान में दोनों देशों के बीच रक्षा सहयोग के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों, में भी संबंध मजबूत हुए हैं।

सुझाव

भारतीय इजरायल के प्रति सहानुभूति रखते हैं, साथ ही सरकार अपने स्वयं के राष्ट्रीय हित के आधार पर अपनी पश्चिम एशिया नीति को संतुलित एवं पुनर्गठित कर रही है।

भारत और इजरायल को अपने धार्मिक चरमपंथी पड़ोसियों की भेद्यता को दूर करने एवं जलवायु परिवर्तन, जल संकट, जनसंख्या विस्फोट तथा खाद्य सुरक्षा जैसे वैश्विक मुद्दों पर आपस में सहयोग करने की आवश्यकता है। भारत को अब्राहम समझौते द्वारा किये गए भू-राजनीतिक पुनर्गठन के लाभ उठाने हेतु अधिक मुखर और सक्रिय पश्चिम एशियाई नीति की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

अफरीदी, नवरस. (2012). 'द इम्पैक्ट ऑफ डोमेस्टिक पॉलिटिक्स ऑन इंडियाज एटीट्यूड्स टुवर्ड्स इजराइल एंड ज्यूज'. इन प्रिया सिंह एंड सुष्मिता भट्टाचार्य (संपा.) *पर्सपेक्टिव्स ऑन वेस्ट एशिया: द इवॉल्विंग जियोपॉलिटिक्स डिसकोर्स.* दिल्ली: शिप्रा पब्लिकेशंस.

ब्लारेल, निकोलस. (2014). *भारत की इजराइल नीति का विकास: 1992 से निरंतरता, परिवर्तन और समझौता.* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

चोपड़ा, आदित्य नारायण. (2022). 'भारत-इजराइल संबंध'. *पंजाब केसरी,* 31 जनवरी.

गोपाल, के. और शर्मा, एस. (2007). *भारत और इजराइल: रणनीतिक साझेदारी की ओर.* नई दिल्ली: ऑथर्स प्रेस.

घोष, अरुंधति. (संपा., 2015). *वेस्ट एशिया इन ट्रांजिशन.* नई दिल्ली: इंस्टीट्यूट ऑफ डिफेंस स्टडीज एंड एनालिसिस और दिल्ली पॉलिसी ग्रुप.

गुप्त, परशुराम. (2021). *भारत इजराइल संबंध.* दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.

कुमारास्वामी, पी. आर. (1995). 'इंडियाज रिकग्नीशन ऑफ इजराइल, सितंबर 1950'. *मिडल ईस्टर्न स्टडीज,* वॉल्यूम-31, न.-01, पेज 124-138.

कुमारास्वामी, पी.आर. (1998) 'स्ट्रैटेजिक पार्टनरशिप बिटविन इजराइल एंड इंडिया'. *मिडल ईस्ट रिव्यू ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स,* वॉल्यूम-2, न.-2, मई.

कुमारास्वामी, पी. आर. (2008). 'रियलिज्म रिप्लेसिंग रिटोरिक: फैक्टर्स शेपिंग इंडियाज मिडल ईस्ट पॉलिसी'. *दी राउंड टेबल,* वॉल्यूम-97, इश्यू-397, जुलाई, पृ. 575-587.

कुमार, राजेश. (2017). इंडिया-इजराइल रिलेशन्स: नॉट स्काई, प्रिंसिपल्स शूड बी द लिमिट. 09 जुलाई.

नाज, फराह. (2000). 'इंडिया-इजराइल मिलिट्री को-ऑपरेशन'. *स्ट्रैटजिक एनालिसिस,* वॉल्यूम-24, न. -05, पेज 969-985.

पाटिल, समीर. (2022). *भारत-इजराइल के गहरे होते रक्षा संबंध.* आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, 14 जून.

पोखरियाल, संजय. (2022). 'भारत और इजराइल के कूटनीतिक संबंधों के तीन दशक'. *दैनिक जागरण,* 14 फरवरी.

सल्होत्रा,केतन. (2017). 'डीपनींग इंडिया-इजराइल टाइज: चेंजिंग लैंडस्केप ऑफ द इंडियन डिफेंस सेक्टर'. *इंडियन डिफेन्स रिव्यु,* 14 अक्टूबर.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 156-166)
UGC-CARE (Group-I)

बुनयादी स्तर पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में खेल आधारित शिक्षा का महत्व : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2022 के सन्दर्भ में

मोनू सिंह गुर्जर* एवं नीतू यादव†

स्वस्थ, शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है, जिस प्रकार मजबूत बुनियाद पर मजबूत इमारत का निर्माण होता है, ठीक उसी प्रकार मजबूत बुनियादी शिक्षा के आधार पर एक बच्चे का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी धरोहर वहाँ निवास करने वाला वहाँ का मानव होता है, मानव को अच्छा नागरिक बनाने में शिक्षा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है। बालक का स्वस्थ मस्तिष्क ही ज्ञान की सभी विधाओं को ग्रहण कर सकता है और मस्तिष्क को स्वस्थ बनाने में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में खेलों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। खेल बच्चे की वृद्धि और विकास में अहम भूमिका निभाते हैं क्योंकि संतुलित शारीरिक और मानसिक विकास के समन्वय से ही बच्चे का सर्वांगीण विकास सम्भव हो पाता है। इसी को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में आधारभूत चरण पर शिक्षण

*सहायक आचार्य, प्रारम्भिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली. **E-mail: msgurjarriea@gmail.com**
†प्राचार्य, आर्यन कॉलेज ऑफ एजुकेशन, नई दिल्ली. **E-mail: neetuyadav99@yahoo.com**

अधिगम प्रक्रिया में खेलो को विशेष महत्व दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा फाउंडेशन स्तर-2022 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को लचीली, बहुआयामी, बहु-स्तरीय, खेल आधारित, गतिविधि आधारित और खोज आधारित बनाने कि सिफारिश करती है। बच्चों की मूल प्रवृत्ति खेलना है अत: बच्चों की मूल प्रवृति के अनुरूप सिखाने के लिए खेल आधारित आनंददायी शिक्षा बच्चों को अपनी रुचि के अनुरूप सीखने के लिए प्रेरित करती है। प्रस्तुत लेख में हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में बुनियादी स्तर पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में हम खेल आधारित शिक्षा का महत्व और खेलों की भूमिका पर चर्चा करेंगे, जिसके माध्यम से बच्चे खेल के द्वारा अपने शिक्षण अधिगम को पूरा कर सकें। प्रस्तुत लेख में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, खेल आधारित शिक्षा के महत्व को दर्शाते हुए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में खेलों की भूमिका व विभिन्न प्रकार के खेलों का वर्णन किया गया है तथा बुनयादी स्तर पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षकों की भूमिका व बच्चों के लिए खेल चुनाव के कुछ सुझाव प्रस्तावित किए है, ताकि खेल-खेल में बच्चे सीख पाएँ तथा उनका सर्वांगीण विकास हो सके।

बीज शब्द - राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, खेल, फाउंडेशन स्टेज, प्रिपरेटरी स्टेज (प्रारम्भिक शिक्षा), सर्वांगीण विकास।

प्रस्तावना

पहले लोगों की यह धारणा थी, कि खेलने कूदने से समय बर्बाद होता है, माता-पिता इस बात से डरते थे, कि उनका बच्चा खेल-कूद में फँसकर बर्बाद हो जाएगा और बच्चे का भविष्य अंधकारमय हो जाएगा क्योंकि उनका मानना था कि खेल से जीवन-यापन के लिए कुछ नहीं मिलता। अभिभावको का यह भी मानना था कि खेल से बच्चा कोई कौशल भी नहीं सीख पाता है और वह पूरा जीवन खेलते और घूमते रह जाता है लेकिन आज के समय में यह अवधारणा पूरी तरह विपरीत हो गई है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में खेलों के महत्व को समझते हुए यह कहावत प्रचलित हो गयी है -

पढ़ाई हो या खेल हो,सब साथ होना चाहिए।
बच्चों का सर्वांगीण विकास होना चाहिए।।

मनोविज्ञान के सिद्धांत ने यह सिद्ध कर दिया है कि बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए खेल बहुत आवश्यक है खेल के बिना बच्चे का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है (गुप्ता 2013)। खेल के द्वारा बच्चे अपने विचारों और भावनाओं को प्रकट कर सकते हैं, साथ ही खेल के माध्यम से अपने आसपास के परिवेश और समुदाय को देख और समझ सकते हैं।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चे अमूर्त ज्ञान को आसानी से ग्रहण नहीं कर पाते है जिसके लिए उन्हें मूर्त ज्ञान और पेशीय गामक गतिविधि के माध्यम से आसानी से सिखाया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020,पैरा 1.1 ने भी इस बात का समर्थन किया है कि स्कूली पाठ्यक्रम को आनंददायी, रुचिकर और गतिविधि आधारित होना चाहिए। साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बुनियादी स्तर के विद्यार्थियों के लिए उत्कृष्ट पाठ्यक्रम

विकसित करने की बात की है जो शताब्दियों से चले आ रहे भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित होकर बाल्यावस्था के अनुकूल होगा जिसमें स्थानीय ज्ञान, कला, कहानियाँ, कविता, खेल, गीत, और बहुत कुछ शामिल है। इनको पाठ्यक्रम में शामिल किया जा रहा है और यह बुनियादी स्तर और प्रारम्भिक चरण पर बच्चे के सर्वांगीण विकास में सहायक होगा (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पैरा 1.3)। जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता जाता है उसमें खेलने का स्वभाव विकसित होने लगता है और बच्चे अपनी इच्छानुसार क्रिया करने लगता है, जिसमें वस्तुओं को इधर उधर करना नवीन प्रयोग और खोजबीन शामिल है इस प्रकार खेलो के माध्यम से बच्चे अपने आस-पास की चीजों को जानते है, समझते है और सीखते है (जीन पियाजें और ब्रूनर)। इस प्रकार कहा जा सकता है कि खेल जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय होता है जो एक बच्चे की जन्मजात प्रवृति और सार्वभौमिक प्रक्रिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2022 दोनों ने बच्चों की प्रारंभिक बाल्यकाल देखभाल और शिक्षा पर अधिक जोर दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार बच्चों के शुरुआती पाँच वर्षों को सीखने के लिए महत्वपूर्ण बताया गया है, तथा इस स्तर को बच्चे के सीखने का बुनियादी स्तर बताया है, जोकि किसी भी बालक की सीखने की नींव है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति -2020 के अनुसार बच्चे के मस्तिष्क का 85 प्रतिशत विकास छह वर्ष की अवस्था से पूर्व ही हो जाता है। इसलिए यह अवस्था बच्चे के शिक्षण अधिगम की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। एक तरह से यह सीखने की नींव है और हम जानते हैं, कि यदि नींव मजबूत होगी तो इमारत भी मजबूत होगी। इसलिए इस आयु में बच्चे के सीखने पर अधिक जोर दिया गया है, एवं बच्चे के सर्वांगीण विकास पर जोर देते हुए, प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा में मुख्य रूप से लचीली, बहुआयामी, बहु स्तरीय, खेल आधारित, गतिविधि-आधारित और खोज-आधारित, शिक्षा को शामिल करने पर सुझाव दिया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में हम बच्चों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में खेल आधारित शिक्षा की भूमिका का वर्णन करते हुए खेल का अर्थ, खेलों के प्रकार व कक्षा में खेलों का प्रयोग तथा खेल चुनते समय शिक्षकों के लिए सुझाव की चर्चा करेंगे जिसके माध्यम से बच्चे खेल के द्वारा अपने शिक्षण अधिगम को पूरा कर सकें।

खेलों से आशय

खेल बच्चे की वृद्धि और विकास में सहायक है, खेल के माध्यम से बच्चों का शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास होता है। खेल एक ऐसी प्रक्रिया है जो बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास में संतुलन स्थापित करती है और बच्चे को मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ रखती है। यह एक आत्मप्रेरित और आनंदमयी क्रिया है जो बालक को पसंद होती है। बाल्यावस्था में बच्चे का मन बहुत ही चंचल और अस्थिर होता है। ऐसा कहा जाता है कि बच्चों को दौड़ना, उछलना, कूदना, सीढ़ी चढ़ना आदि पसंद होता है परंतु धीरे-धीरे जैसे ही वे बड़े होने लगते हैं उनके खेलों का स्वरूप भी बदल जाता है। प्रत्येक के

लिए खेल की भिन्न परिभाषा होती है। किसी के लिए यह बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए की जाने वाली आवश्यक क्रिया है, तो किसी के लिए मनोरंजन का साधन है।

किंडरगार्टन विधि के जनक फ्रोबेल का मानना है कि "एक बालक जितना स्वतंत्र होकर सीखता है वह उतना ही अधिक सीखता है," फ्रोबेल ने स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार एक माली बगीचे में पौधों की परवरिश को महत्व देता है उसी प्रकार शिक्षक को भी बच्चे के चौमुखी विकास का ध्यान रखना चाहिए (गुप्ता 2013)।

मारिया मांटेसरी ने भी बुनियादी स्तर और प्रारम्भिक शिक्षा के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और खिलौनों के उपयोग से खेल-खेल में सिखाने की विधि को महत्व दिया है, जिसको भारतीय ज्ञान परम्परा में गिजु भाई बधेका के शैक्षिक विचारो में देखा जा सकता है जिसको उन्होंने दक्षिणा मूर्ति बाल मंदिर में प्रयोग भी किया था।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शांति निकेतन में प्रकृति से जोड़ते हुए बाल केन्द्रित शिक्षा को महत्व दिया था जहाँ पर खेल, भ्रमण, और प्रयोगात्मक आधार पर शिक्षा दी जाती थी (वालिया 2014)।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों द्वारा दी गई खेल की परिभाषाएँ -

हरलॉक के अनुसार - "अंतिम परिणाम का विचार किये बिना कोई भी क्रिया जो उससे प्राप्त होने वाले आनंद के लिए की जाती है, खेल है" (गुप्ता 2013)।

पियाजे के अनुसार - "खेल में विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं निहित है जिनकी पुनरावृत्ति आनंदमयी होती है। खेल में स्वतंत्रता होती है इसमें नियमों का बंधन कठोर नहीं होता है" (गुप्ता 2013)।

मैक्डूगल के अनुसार - "खेल स्वयं अपने लिए की जाने वाली एक क्रिया है या खेल एक निरुद्देश्य क्रिया है, जिसका कोई लक्ष्य नहीं होता है" (वालिया 2014)।

स्टेनले हॉल - "खेल वंशानुक्रम की शुद्धता अभिरुचि है।"

स्टर्न - "खेल स्वैच्छिक और आत्म केंद्रित क्रिया है।"

क्रो एवं क्रो - "खेल वह क्रिया है जिसमें एक व्यक्ति उस समय व्यस्त होता है जब वह उस कार्य को करने के लिए स्वतंत्र होता है, जिस कार्य को वह करना चाहता है" (गुप्ता 2013)।

बुनियादी स्तर पर खेलों के प्रकार

1. खोजपरक खेल

इस खेल के माध्यम से बच्चा वस्तुओं को अपनी ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से जानने और समझने का प्रयास करता है इस खेल के माध्यम से बच्चा वस्तुओं का वर्गीकरण भारीपन, हल्कापन, पास-दूर आदि के बारे में देखकर, सूंघकर, छूकर, सुनकर और चखकर और अपने आस पास के परिवेश के बारे में जानकारी अर्जित करता है। इसलिए बच्चे के प्रारम्भिक जीवन में ज्यादातर खेल ऐसी गतिविधियों पर आधारित होते है। जैसे वस्तुओं को जोड़ना

तोड़ना, लकड़ी और कागज के खिलौने बनाना, रेत में घर बनाना, चाक मिट्टी से खिलौने बनाना, रंगों से खेलना आदि।

2. रचनात्मक खेल

ऐसा कहा जाता है कि बच्चा अपने परिवेश में गतिविधियों के माध्यम से अपने विचारों का निर्माण करता है क्योंकि ज्ञान का पथ सदैव निर्माणाधीन होता है (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005)। बालक का स्वभाव चंचल होता है और उसका मन स्थिर नहीं होता है वह खेल-खेल में नयी-नयी चीजों का निर्माण कर देता है अक्सर हम सबने देखा होगा कि बच्चे घरों में रखी वस्तुओं से रचनात्मक कार्य करते हैं जैसे घर के बर्तन से मीनार बनाना, माचिस की डिब्बी से मोटर कार बनाना, बादलों में भी विभिन्न आकृतियों को खोज लेना आदि। इस प्रकार रचनात्मक खेलों से बच्चों की सृजनात्मक क्षमता का विकास होता है। कई मामलों में बच्चों की कल्पना शक्ति बड़ों से काफी बेहतर होती है। अनुपयोगी वस्तुओं को रचनात्मक तरीके से प्रयोग में लाकर आनंद की अनुभूति करते है जिसको हम सब कबाड़ से जुगाड़ कहते हैं।

3. परम्परागत खेल

यह वह खेल है, जो स्थानीय समुदाय में सदियों से खेले जा रहे है ये भारतीय परम्परा के अभिन्न अंग है इन खेलों को छोटा बच्चा अपने घर, आस-पड़ौस से अनुकरण के माध्यम से अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों का निर्माण करता है। और अपने आस-पास समुदाय से जुड़े खेलो को खेलने लगता है इन खेलो में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया बचपन को संवारने का कार्य करती है।

4. कल्पनात्मक खेल

कल्पनात्मक खेल बच्चों के लिए समय बिताने का एक मजेदार तरीका है। इस प्रकार के खेलों से बच्चे के जीवन में बहुत सारे फायदे हैं। इन खेलों से बच्चों की इंद्रियों को उत्तेजना मिलती है, खोजबीन और रचनात्मक सोच के अवसर पैदा होते हैं और बच्चे के बौद्धिक, भावात्मक विकास और उसकी सामाजिक सफलता के लिए महत्वपूर्ण कौशल विकसित करने में मदद मिलती है। काल्पनिक खेलों में बच्चे घर-घर खेलना, गुड्डे गुड़ियाओं की शादी करवाना, डॉक्टर-डॉक्टर खेलना, चोर-पुलिस खेलना, शिक्षक-विद्यार्थी बनकर खेलना, हाथी-घोड़ा बनकर सवारी करना आदि खेल खेलते हैं। काल्पनिक खेल सर्वाधिक सामाजिक प्रकार का खेल होता है और इसका बच्चों की उनके साथियों के साथ सफलता हेतु महत्वपूर्ण कौशल के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। काल्पनिक खेल खेलते-खेलते धीरे-धीरे ये बच्चे नियमबद्ध खेल की ओर बढ़ने लगते हैं।

5. नियमबद्ध खेल

इस प्रकार के खेलों में बच्चे समूह में खेलते हैं तथा इन खेलों के माध्यम से बच्चे अपने व्यवहार को नियंत्रित करना, खेल के नियमों का पालन करना, अपनी बारी का इंतजार करना, पूर्व निर्धारित नियमों का पालन करना सीखते हैं। इन खेलों का उद्देश्य खेल में प्रतिस्पर्धा का भाव या हार जीत न होकर आनंद की प्राप्ति है।

6. गतिशील खेल

इन खेलों में बच्चे दौड़ना, छुपाना, उछलना, कूदना आदि विभिन्न गति के साथ खेलते हैं। यह खेल शरीर की गति का विकास करते हैं। वैयक्तिक और सामूहिक दोनों प्रकार के होते हैं।

7. बौद्धिक खेल

इस प्रकार के खेलों का संबंध बुद्धि से होता है, जैसे- चौपड़, शतरंज, पहेलियां आदि। यह खेल बुद्धि का विकास करते हैं। इन खेलों में बच्चे शब्द निर्माण करना तथा पहेलियों को हल करना भी सीखते हैं।

खेल आधारित शिक्षा का महत्व-

खेल विधि मुख्यत: बाल केन्द्रित विधि है जिसमें बालक की रुचियों, जिज्ञासाओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखा जाता है। खेलना बच्चों की स्वाभाविक प्रवृति होती है बच्चों को केवल विद्यालयो या खेल के मैदान में ही नहीं बच्चे हर जगह घर, बाजार, शॉपिंग माल, खेत खलिहान या प्रत्येक जगह खेलना शुरू कर देते है। क्योंकि बच्चों को चुपचाप बैठना पसंद नहीं होता है। क्योंकि खेल में उनको आनंद आता है। उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध होता है, कि बचपन में खेल ही सीखने-सिखाने की सबसे महत्वपूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया है। खेल के माध्यम से बच्चे अपनी भावनाओं और विचारों को खुलकर व्यक्त करते हैं, इसके साथ ही खेल के माध्यम से बच्चों में सामाजिक संबंधों और अच्छी आदतों का विकास होता है।

खेल आधारित शिक्षा सीखने का एक शक्तिशाली दृष्टिकोण है जिसने प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण मान्यता प्राप्त की है। केवल पारंपरिक शिक्षण विधियों पर निर्भर रहने के बजाय, खेल आधारित शिक्षा बच्चों के विकास को बढ़ावा देने के लिए उनकी जन्मजात जिज्ञासा और रचनात्मकता को सीखने में शामिल करती है। उद्देश्यपूर्ण खेल में शामिल होकर, बच्चे न केवल आवश्यक शैक्षिक कौशल हासिल करते हैं, बल्कि महत्वपूर्ण सामाजिक, भावात्मक और संज्ञानात्मक क्षमताओं का भी विकास करते हैं। खेलना बच्चों की मूल प्रवृत्ति है, खेल आधारित शिक्षा आनंददायी शिक्षा बच्चों को अपनी रुचि के अनुरूप सीखने के लिए प्रेरित करती है। तथा बच्चों के सर्वांगीण विकास में खेलों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बच्चों के बुनियादी स्तर को बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। इस स्तर

पर बच्चों के अधिगम को खेलों के साथ जोड़कर उन्हें आजीवन सीखने के लिए एक ठोस आधार तैयार किया जा सकता है।

जीवन में भी बच्चों को बुनियादी स्तर से ही खेल के जरिए या खेलों के माध्यम से सीखने पर जोर दिया गया है ताकि बच्चे खेल के जरिए आनंदमयी तरीके से सीखे। खेल के माध्यम से बच्चों को भाषा, पर्यावरण, गणित का ज्ञान दिया जा सकता है। पूर्व विद्यालय कक्षा में खेल आधारित शिक्षा विभिन्न रूप ले सकती हैं। उदाहरण के लिए इस समय व्यावहारिक संवेदी गतिविधियां स्थापित करना शामिल हो सकता है, जिससे बच्चों का अपनी भाषा और सामाजिक कौशल विकसित करने में मदद मिले। इस स्तर पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत एन.सी.ई.आर.टी द्वारा जादुई पिटारा शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप में विकसित किया गया है। जादुई पिटारे में बच्चों की आयु के अनुसार विभिन्न प्रकार के खेलों की सामग्री का निर्माण किया गया है जिसे बच्चों के पूर्व प्राथमिक स्तर पर उसके शिक्षण अधिगम में प्रयोग किया जाएगा। खेल आधारित शिक्षा बच्चों को एक साथ संचार करने, बातचीत करने और समूह में व्यवहार करके सीखने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक रणनीति के अनुसार योजनाबद्ध खेल बच्चों के दिमाग की कार्य प्रणाली में सुधार लाते हैं। शिक्षा बच्चों के पालन- पोषण में सुधार करती है तथा बच्चों के सर्वांगीण विकास पर जोर देती है।

शिक्षण अधिगम में खेल आधारित शिक्षा की भूमिका

खेल आधारित शिक्षा प्रारंभिक बचपन की शिक्षा का एक मूलभूत तत्व है जो बच्चों की जिज्ञासा को बढ़ाता है और सीखने के प्रति प्रेम पैदा करता है। खेल आधारित शिक्षा बच्चों को तनाव मुक्त वातावरण में कौशल हासिल करने की अनुमति देती है। खेल बच्चों की स्वाभाविक क्रिया है। खेल-खेल में सीखी गई अवधारणाएँ बच्चों को सदैव याद रहती है और बच्चे की सीखने की नींव को मजबूत करती है। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2022 में भी बच्चों के सीखने के प्रारंभिक स्तर पर खेलो को अधिक महत्व दिया है। बुनियादी स्तर पर सीखने में खेल आधारित शिक्षा की भूमिका निम्न प्रकार से है -

1. ज्ञान संबंधी विकास

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के अनुसार बच्चों की तीन से छह वर्ष की आयु को सीखने की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था माना गया है। इस आयु में खेल आधारित शिक्षा समस्या-समाधान रचनात्मक और तार्किक सोच को प्रोत्साहित करके संज्ञानात्मक कौशल का पोषण करती है। जब बच्चे खेलते हैं तो उन्हें ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जहां उन्हें रणनीति बनानी होती है, निर्णय लेना होता है परिवर्तनों के अनुरूप ढलना होता है। उदाहरण के लिए - ब्लॉकों का टावर बनाना, चित्र के टुकड़ों को जोड़ना आदि। जिसके लिए उसे

स्थानिक समझ की आवश्यकता होती है, जिससे बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा मिलता है।

2. शारीरिक विकास

प्रारंभिक वर्ष (तीन से आठ वर्ष की आयु) तक बच्चों का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। इस आयु में बच्चों को हर प्रकार के खेल के भरपूर अवसर प्रदान करने चाहिए। सक्रिय खेल बच्चों के शारीरिक विकास को बढ़ावा देते हैं तथा बच्चों के क्रियात्मक (मोटर) कौशल, हाथ-आँख समन्वय और शरीर की ताकत में सुधार करते हैं। उदाहरण आउटडोर खेल बच्चों के लचीलेपन को बढ़ावा देते हैं जो बच्चे के शारीरिक स्वास्थ्य में भी योगदान देते हैं।

3. सामाजिक-भावनात्मक विकास

खेल के माध्यम से बच्चे दूसरों के साथ बातचीत करना, एक दूसरे की मदद करना, एक दूसरे के साथ रहना सीखते हैं जिससे उनमें सामाजिक कौशल, भावनात्मक बुद्धिमत्ता और सहानुभूति जैसे गुण विकसित होते हैं। सामूहिक खेलों के माध्यम से बच्चे सहयोग की अवधारणा सीखते हैं। क्योंकि यह जीवन की जटिलताओं से निपटने के लिए आवश्यक कौशल है।

4. भाषा विकास

खेल आधारित शिक्षण वातावरण बच्चों को अपनी भाषा कौशल विकसित करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। खेल के दौरान बातचीत का आदान- प्रदान बच्चों को उनकी शब्दावली का विस्तार करने और उनके संचार कौशल को बढ़ाने में सक्षम बनाता है।

5. बौद्धिक विकास

खेल आधारित शिक्षण प्रक्रिया में बौद्धिक खेलों में बच्चे शब्द निर्माण, पहेलियां हल करना, जोड़-घटाना, सांप-सीढ़ी आदि खेल खेलते हैं, जिससे बच्चों का बौद्धिक विकास होता है। ये खेल वैयक्तिक और सामूहिक दोनों प्रकार के होते हैं। इनका संबंध बुद्धि से होता है। इस प्रकार के खेलो से बच्चे में विचार मन्थन मजबूत होता है, जो बच्चे के तार्किक चिंतन और बौद्धिक विकास में काफी सहायक है। इसी प्रकार खेलों द्वारा बच्चों के भाषाई कौशल में भी वृद्धि होती है। कल्पनाशक्ति, तार्किक शक्ति आदि का विकास होता है। खेल केवल मनोरंजन के लिए नहीं है, बल्कि यदि बच्चे को उपयुक्त मार्गदर्शन दिया जाए तो इससे बच्चों का सर्वांगीण विकास भी किया जा सकता है।

बुनियादी स्तर पर शिक्षण अधिगम में खेल आधारित शिक्षा में शिक्षक की भूमिका

खेल आधारित शिक्षा की सफलता में एक आवश्यक कारक वह भूमिका है जो शिक्षक निभाते हैं। सीखने की प्रक्रिया में बच्चा मुख्य केंद्र बिंदु होता है, परंतु शिक्षक का कार्य केवल निर्देशन करना नहीं बल्कि एक ऐसा वातावरण तैयार करना है जो बच्चों की स्वाभाविक जिज्ञासा और सीखने की इच्छा को प्रेरित करें। इसके लिए सही संसाधन उपलब्ध कराने, खेल गतिविधियों को तैयार करने और बच्चों की भागीदारी और सीखने की प्रकृति का निरीक्षण करने की आवश्यकता है।

शिक्षकों को ऐसी गतिविधियों की बनावट करने की जरूरत है जो बच्चों के विकास के लिए उपयुक्त हो और उनकी रुचियों के अनुरूप हो। खेल गतिविधि करवाते समय शिक्षक को बच्चों के साथ उपस्थित रहना चाहिए परंतु खेल का नियंत्रण बच्चों पर ही रहना चाहिए ताकि बच्चे स्वयं खेल के द्वारा सीख सकें। गतिविधि के दौरान यदि बच्चों को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है तो शिक्षक उस कठिनाई के समाधान हेतु बच्चों का मार्गदर्शन करें ताकि बच्चे स्वयं समस्या का समाधान कर सके इससे बच्चों में निर्णय लेने की क्षमता का विकास होगा। बच्चों के लिए खेल गतिविधि व्यवस्थित करते समय शिक्षक का कर्तव्य है, बच्चों के लिए खेल के विभिन्न साधनों की व्यवस्था करें। खेल गतिविधि के दौरान शिक्षक को एक कुशल पर्यवेक्षक की भूमिका निभानी चाहिए और बच्चों की प्रत्येक हलचल पर ध्यान रखना चाहिए ताकि यदि खेल के दौरान किसी भी बच्चे को चोट ना लगे और यदि उन्हें किसी वस्तु या सामान की आवश्यकता पड़े तो वह उन्हें उपलब्ध कराई जा सके। खेल गतिविधि के दौरान शिक्षक को स्वयं के द्वारा प्रयोग की गई भाषा तथा शब्दों का प्रयोग भी सोच समझकर करना चाहिए क्योंकि बच्चे शिक्षक की नकल करके ही सीखते हैं। शिक्षक द्वारा प्रयोग की गई भाषा के प्रयोग से बच्चों में भाषाई कौशल का विकास होता है। इस दृष्टिकोण से भी सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। खेल गतिविधि के दौरान शिक्षक को बच्चों की प्रत्येक गतिविधि का अवलोकन करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बच्चों का अधिगम सकारात्मक दिशा में हो तथा उनका सर्वांगीण विकास हो।

बच्चों के लिए खेलों का चुनाव करते समय शिक्षक के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

एक प्रारंभिक शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बच्चों के इस प्रकार के खेलों का चयन करें जिससे बच्चे आनंद में तरीकों से विभिन्न प्रकार के संप्रत्ययो को सीखें। शिक्षक को बच्चों के लिए खेलों का चुनाव करते समय निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए -

- प्रारंभिक स्तर के शिक्षक को बच्चों के लिए खेलों का चयन करते समय सबसे पहले यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके द्वारा चुने गए खेल बच्चों की आयु तथा स्तर के अनुरूप हो। बच्चे तभी खेल में रुचि लेंगे जब खेल उनकी आयु के अनुरूप होगा।

- शिक्षक को खेलों का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि खेल बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्तर के अनुरूप हो।
- शिक्षक को खेलों का चुनाव करते समय ध्यान रखना चाहिए कि वह खेल किसी न किसी विषय से संबंधित हो अर्थात बच्चे उसके माध्यम से किसी विषय के प्रकरण या संप्रत्यय को समझें।
- यदि खेल मनोरंजक नहीं होता तो बच्चे खेल में रुचि नहीं लेते और अपनी सहभागिता सुनिश्चित नहीं करते, इसलिए शिक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि खेल मनोरंजक हो तभी बच्चे आनंदमयी तरीके से खेलेंगे।
- खेलों का चुनाव करते समय शिक्षक को खेल की अवधि का भी ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इस आयु में बच्चों की एकाग्रता शक्ति अधिक नहीं होती। खेल में समयावधि अधिक होगी तो बच्चे खेल के बीच में ही ऊब जाएंगे।
- शिक्षक को इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए कि खेलों में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री बच्चों की आयु एवं स्तर के अनुरूप हो।
- शिक्षक को खेलों का चुनाव करते समय स्थान का भी ध्यान रखना चाहिए, आंतरिक खेलों में कक्षा के अंदर तथा बाह्य खेलों में कक्षा के बाहर (खेल का मैदान) का स्थान प्रयोग करना चाहिए।
- शिक्षक को इस प्रकार के खेलों का चुनाव करना चाहिए जो बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक हो।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षक को ऐसे खेलों का चयन करना चाहिए जिससे बच्चे में भाषा, गणित के संप्रत्यय के विकास के साथ-साथ उनमें सामाजिक कौशल और सामाजिक गुणों का भी विकास हो, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार के खेलों का चयन करना है जो बालक के सर्वांगीण विकास में सहायता करें।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारंभिक अवस्था से ही बच्चे खेल के माध्यम से सीखते हैं जिसमें गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला और उत्तेजक अनुभव शामिल होते हैं। इन सभी गतिविधियों और अनुभवों को इस प्रकार व्यवस्थित करने की आवश्यकता है ताकि बच्चे भावनात्मक और मानसिक रूप से सीखने के लिए प्रेरित होने के साथ-साथ खेल के प्रति रुचि और लगाव प्रकट करें। खेल के इस व्यापक विचार के अंतर्गत, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि बच्चे अनुकरण के माध्यम से स्वयं करके, सुनकर, पढ़कर, बोलकर, लिखकर, गाकर सोचकर और अभ्यास करके सीखने के लिए प्रेरित हो ताकि वे नई अवधारणाएँ सीख सकें। व्याख्या कर सकें और इस सीखें गये नवीन ज्ञान को ज्ञान के मौजूदा स्वरूप से जोड़ पाए। इसके लिए एक व्यवस्थित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, अभ्यास और प्रयोग के अवसर आवश्यक हैं, जिसकी शुरुआत बालकों के बुनियादी स्तर से ही कर देनी चाहिए, स्पष्ट और

व्यवस्थित शिक्षण के साथ कुछ अभ्यास और प्रयोग आवश्यक है, विशेष रूप से एक बार तब जब बच्चे पढ़ना और गणना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक स्तर पर खेलो की महत्वपूर्ण भूमिका है, खेलो के माध्यम से ही बच्चे का 360 स्तर का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं, जो स्पष्टत: भारत सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और खेलो-इंडिया अभियान में परिलक्षित होती है जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करके उन्हें समाज और राष्ट्र का आदर्श नागरिक बनाया जा सके जो भारतीय ज्ञान परंपरा का आदर्श ध्येय है।

सन्दर्भ

बघेला, एच.एस. (2006), *शैक्षिक एवं उदीयमान भारतीय समाज,* राजस्थान प्रकाशन.

गुप्ता, एस.पी. (2013), *उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा फाउंडेशनल स्टेज-2022, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के लिए राष्ट्रीय संचालन समिति, बेंगलुरु, खण्ड - 1.3, 2.2, 4.2, 4.4, 4.5

वालिया, जे.एस. (2014), *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार,* अहिम पॉल पब्लिकेशन, जालंधर.

वेबसाइट : खेलो इण्डिया लिंक - https://g.co/kgs/WjgKo47

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 167-175)
UGC-CARE (Group-I)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: ग्रामीण विकास की ओर सार्थक पहल

ऋचा शुक्ला*

उन्नत भारत अभियान का उद्देश्य महात्मा गांधी के दृष्टिकोण के अनुरूप आत्मनिर्भर 'ग्राम गणराज्य' का निर्माण करना है। गांधीजी के अनुसार स्थानीय संसाधनों का उपयोग करना और विकेंद्रीकृत, पर्यावरण अनुकूल प्रोद्योगिकियों को अपनाना अति आवश्यक है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य भोजन, कपड़े, आश्रय, स्वच्छता, स्वास्थ्य देखभाल, ऊर्जा, आजीविका, परिवहन और शिक्षा जैसी आवश्यकताओं को पूर्ण करना है। प्रारंभ से ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों का अधिगम धीमा हुआ है जिसके अनेक कारण है जिसमें प्रमुख कारण यह है कि शिक्षण का माध्यम उनकी भाषा में नहीं था तथा विषयों का चुनाव उनकी रूचि एवं जीवन से जुड़ा हुआ नहीं था। किन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधानों के अनुसार अब शिक्षक संवेदनशील होकर विद्यार्थियों से जुड़कर उन्हें उनकी भाषा में, बिना किसी विषय चयन की बाध्यता के जीवन उपयोगी शिक्षा प्रदान करेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का प्रमुख उद्देश्य भारत के युवाओं को समावेशी और समान गुणवत्ता वाली शिक्षा सुनिश्चित करना है, इसमें ज्ञान एवं हुनर का समावेश भी किया गया है। साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कला समन्वय को

*सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), शांति देवी राजकीय महाविद्यालय, जेवर, गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.)
E-mail: richashiv1707@gmail.com

आधार बना के कला, संस्कृति एवं विषयों के चुनाव में लचीलापन प्रदान किया गया है जिससे विद्यार्थियों को विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों को अपने जीवन को उन्नत करने की योजना बनाने में सहायता मिलें न कि नौकरी की तलाश उनका उद्देश्य हो। अब विद्यार्थी गणित के साथ अर्थशास्त्र एवं कृषि विषय लेकर अपने जीवन की योजना के तौर पर कृषि आधारित कोई व्यापार गांव में रहते हुए प्रारंभ कर सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 निश्चित तौर पर विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है, समय के अनुसार उसमें सुधार, पाठ्य सामग्री निर्धारण में स्वायत्ता, राज्य सरकारों की इसे अपने राज्यों में लागू करने की मंशा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रति समर्पण और निष्ठा ही इसे सफल बना सकती है।

प्रस्तावना

किसी भी देश की प्रगति का आधारभूत स्तम्भ है, उस देश की शिक्षा व्यवस्था। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति जीवन-यापन तो कर सकता है किन्तु अपने अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकता है। भारत में 1986 की शिक्षा नीति के उपरांत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, केंद्र सरकार की एक ऐतिहासिक पहल है जिसका उद्देश्य क्षमता और निष्पक्षता के साथ देशव्यापी समावेशन कर भारत को एक महाशक्ति के रूप में विश्व में उभारना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की नीतियाँ ग्रामीण और शहरी परिवेश की खाई को पाट कर उनके बीच आधुनिकता और प्राचीनता के द्वन्द्व को समाप्त करेगी जिससे भारतीय संस्कृति और परंपराओं को संपोषित किया जा सके। किसी भी राष्ट्र के विकास का आधार वहां की शिक्षा व्यवस्था होती है। इसी उद्देश्य को पूरा करती हमारी नई शिक्षा नीति 2020, 2015 में भारत द्वारा अपनाए गए सतत विकास के एजेंडा-4, सभी के लिए समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुंच को सुनिश्चित करती है। नवीन आंकड़ों के अनुसार भारत विश्व की पांचवी बड़ी अर्थव्यवस्था है और वर्ष 2030 तक विश्व की तीसरी अर्थव्यवस्था बनने के पथ पर अग्रसर है। जिसके लिए वर्तमान ज्ञान के प्रसार में आए परिवर्तनों के अनुरूप कुशल, दक्ष और उत्पादक क्षमता का निर्माण करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। वर्तमान में जीवन की प्रत्येक छोटी एवं बड़ी आवश्यकता आधुनिक प्रौद्योगिकी और विज्ञान से ही पूर्ण होती है। ऐसे में कुशल कारीगरों की मांग बढ़ती जा रही है जो गणित एवं विज्ञान में निपुण हो और जो सामाजिक विज्ञान, मानविकी क्षेत्रों में भी विविध जानकारी रखते हो। शिक्षा के क्षेत्र में बड़े रूपांतरकारी परिवर्तन आ रहे हैं, जो 'सीख लेने' नहीं बल्कि 'सतत सीखते रहने' की कला के विकास की ओर इंगित करती है। ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक हो जाता है कि ज्ञान का संचार बोझिल न होने पाए। जिससे सीखते रहने की कला उबाऊ ना लगे। बालक को उसी के परिवेश में उसी के अनुसार स्थानीय भाषा में, स्थानीय संस्कृति का विकास कर बेहतर और गुणवत्तापरक शिक्षा दी जाए (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय परिस्थितियों के अनुसार जहां 68.84 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है (जनसंख्या 2011), ग्रामीण भारत की समृद्ध परंपरा को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई है। जिसका उद्देश्य देश के हर व्यक्ति तक गुणवत्तापरक

शिक्षा को पहुंचाना और समतामूलक समाज की स्थापना करना है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में शिक्षा को "सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र एवं सबसे प्रभावी साधन माना गया है"।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति

आजादी के 78 साल बाद भी भारत को पिछड़े देशों के समान ही समझा जा रहा है तो इसका प्रमुख कारण गांवों का पिछड़ापन है। आज भी 65 प्रतिशत से अधिक आबादी गांवों में निवास करती है और गांवों के विकास के लिये आजादी के बाद जो प्रयास केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा किये गये वह पूर्णत: सफल नहीं हो सके। गावं के लोग जो जागरूक बन पाये और स्वयं या अपने परिवार को विकसित करने का प्रयास किया, उन्हें गांव छोड़कर शहर आना पड़ा। यही कारण रहा कि गांव से शहर की तरफ पलायन बढ़ता रहा और हमारे गांव खाली होते गए। गांव के विद्यालय जहां अच्छे भवन, अच्छी सुविधाएं एवं अच्छे शिक्षक होने चाहिए थे, वहीं विद्यालय भवनों की खराब स्थिति, शिक्षण सामग्री की कमी और सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिक्षक भी उपलब्ध नहीं थे। जिन शिक्षकों की नियुक्ति गांवों में पढ़ाने के लिए होती थी, वे भी गांव में नहीं रहते और नियमित विद्यालय नहीं जाते हैं।

वर्तमान में देखा गया है कि सामान्यत: विभिन्न सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में सरकारी शिक्षण संस्थानों के नियमित शिक्षकों को लगा दिया जाता है जिसके कारण अपने शिक्षण कार्य पर उतना ध्यान नहीं दे पाते। जो समय शिक्षकों को विद्यार्थियों को पढ़ाने और उनके व्यक्तित्व के विकास में देना होता है वह उसे सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन और उनकी रिपोर्टिंग में लगा देते है। इससे शिक्षक की गरिमा का भी ह्रास हुआ है।

किन्तु उपरोक्त स्थितियों में सुधार हेतु शिक्षा नीति 1986 के लागू होने पर बड़े व्यापक स्तर पर कार्यक्रम चलाए गए जो अभी कार्यरत हैं। जिनमें आंगनवाड़ी योजना, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड (1987), शिक्षा गारंटी योजना (1997), सर्व शिक्षा योजना (2001), शिक्षा का अधिकार कानून आदि शामिल है। इन सभी योजनाओं का यह परिणाम हुआ कि प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं में तो नामांकन बढ़े और मध्याह्न भोजन जैसी योजनाओं के आने से ठहराव में भी वृद्धि हुई, परन्तु बच्चों के स्कूल आने का प्रतिशत नामांकन से कहीं न्यूनतम है। जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में भारी गिरावट हुई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : ग्रामीण विकास की ओर सार्थक पहल

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पूर्व में कार्यशील शिक्षा नीति एवं देश में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों का निराकरण प्रस्तुत करती है। विशेषकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, गांव के विद्यालयों का आमूलचूल परिवर्तन का प्रबंध करती है और यह विश्वास किया जा रहा है कि 2025 से 2030 तक हमारे गांवों के विद्यालयों का संपूर्ण कायाकल्प हो पाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का प्रमुख उद्देश्य भारत के युवाओं को समावेशी और समान गुणवत्ता वाली शिक्षा सुनिश्चित करना है इसमें ज्ञान एवं कौशल का समावेश भी किया गया है। साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कला समन्वय को आधार बना के कला, संस्कृति एवं विषयों के चुनाव में लचीलापन प्रदान किया गया है। जिससे विद्यार्थियों को विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों को अपने जीवन को उन्नत करने की योजना बनाने में सहायता मिलें न कि नौकरी की तलाश उनका उद्देश्य हो। अब विद्यार्थी गणित के साथ अर्थशास्त्र एवं कृषि विषय लेकर अपने जीवन की योजना के तौर पर कृषि आधारित कोई व्यापार गांव में रहते हुए प्रारंभ कर सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में ग्रामीण शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए कुछ रणनीति अपनाई जा रही हैं -

स्कूली शिक्षा संबंधी प्रावधान

नई शिक्षा नीति में 5+3+3+4 प्रकार वाली शैक्षणिक संरचना का प्रस्ताव किया गया है जो 3 से 18 वर्ष की आयु वाले बच्चों को शामिल करता है।

- प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा को शामिल किया गया, 3 साल का पूर्व प्राथमिक विद्यालय स्तर 1 एवं 2 को शामिल किया गया है;
- तीन वर्ष का प्रीपेट्री स्टेज;
- तीन वर्ष का मध्य (या उच्च प्राथमिक) चरण-स्तर 6, 7, 8; और
- 4 वर्ष का उच्च (या माध्यमिक) चरण-स्तर 9, 10, 11, 12।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत नेशनल हायर सेकेण्ड्री रेगुलेटरी कांउसिल द्वारा बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान पर एक राष्ट्रीय मिशन की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है। इसके द्वारा वर्ष 2025 तक कक्षा-3 स्तर तक के बच्चों के लिये आधारभूत कौशल सुनिश्चित किया जाएगा। अनुमान है कि प्रारम्भिक शिक्षा स्कूली शिक्षा को एक मजबूत आधार प्रदान करेगी जो विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाएगा।

भाषायी विविधता का संरक्षण

कुशवाह समिति की रिपोर्ट और मंत्रालय के अध्ययन से ये बात सामने आयी कि वे बच्चे जो विद्यालय छोड़ गए, वे इस कारण कि उनको जब छह वर्ष में विद्यालय में दाखिला दिलाया जाता है, तब उन्हें ऐसी भाषा में पढ़ाया जाता है तो उनकी भाषा नहीं है। जो बच्चे समृद्ध एवं पढ़े लिखे परिवारों से आते हैं, उन्हें परेशानी नहीं होती। किन्तु जो बच्चे अशिक्षित परिवारों से आते हैं वे कुछ भी नहीं समझ पाते क्योंकि उनकी भाषा अलग होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस कमी को दूर करने का वादा करती है। हर बच्चे को उसकी मातृभाषा में शिक्षा उपलब्ध होगी। विद्यालयीन और उच्च शिक्षा में छात्रों के लिये संस्कृत और अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं का विकल्प उपलब्ध होगा परंतु किसी भी छात्र पर भाषा के चुनाव की कोई बाध्यता नहीं होगी।

शारीरिक शिक्षा

विद्यालयों में सभी स्तरों पर छात्रों को बागवानी, नियमित रूप से खेल-कूद, योग, नृत्य, मार्शल आर्ट को स्थानीय उपलब्धता के अनुसार प्रदान करने की कोशिश की जाएगी ताकि बच्चे शारीरिक गतिविधियों एवं व्यायाम वगैरह में भाग ले सकें।

भारतीय शिक्षा में ज्ञान एवं हुनर का समावेश

भारतीय समाज में विद्या की परंपरा से अलग काश्तकारी की ज्ञान परंपरा नहीं थी। यही कारण था कि संपूर्ण भारतीय समाज ज्ञान (अर्थात विद्या एवं काश्तकारी) का सम्मान एवं पोषण करता था। परंतु जैसे-जैसे अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ, भारत में कामगार एवं काश्तकार उपेक्षित होता गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस विषमता को दूर करने की दिशा में एक बड़ा प्रयास है। भारतीय शिक्षा पद्धति में हर विद्यार्थी के लिये अलग शिक्षण शास्त्र और शिक्षा पद्धति होती थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत उत्कृष्ट कलाकारों को प्रशिक्षक के रूप में विद्यालयों से जोड़ा जाएगा जिससे बच्चे अपनी गौरवमयी संस्कृति को जानकर उनकी कलाओं में दक्ष हो सके।

पाठ्यक्रम और मूल्यांकन संबंधी सुधार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्रस्तावित सुधारों के अनुसार, कला और विज्ञान, व्यावसायिक तथा शैक्षणिक विषयों एवं पाठ्यक्रम और पाठ्येतर गतिविधियों के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं होगा। कक्षा-6 से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल कर दिया जाएगा और इसमें इंटर्नशिप की व्यवस्था भी की जाएगी। 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद' द्वारा विद्यालयी शिक्षा के लिये 'राष्ट्रीय पाठयक्रम रूपरेखा' तैयार की जाएगी।

छात्रों के समग्र विकास के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कक्षा-10 और कक्षा-12 की परीक्षाओं में बदलाव किया जाएगा। इसमें भविष्य में सेमेस्टर या बहुविकल्पीय प्रश्न आदि जैसे सुधारों को शामिल किया जा सकता है। छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन के लिये मानक-निर्धारक निकाय के रूप में 'परख' नामक एक नए 'राष्ट्रीय आकलन केंद्र' की स्थापना की जाएगी (राजस्थान पत्रिका नागौर, 28 जनवरी 2020)। छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन तथा छात्रों को अपने भविष्य से जुड़े निर्णय लेने में सहायता प्रदान करने के लिये 'कृत्रिम बुद्धिमता' (AI) का प्रयोग किया जावेगा।

योग्य एवं समाज से जुड़े शिक्षक

गाँवों के विद्यालयों की दुर्दशा का एक मुख्य कारण शिक्षकों की कमी रही है। गांधीजी ने 1937 में बुनियादी शिक्षा योजना में जो कहा था वो पुन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में दोहराया गया है कि शिक्षकों के चुनाव में क्षेत्रीय या स्थानीय लोगों को प्राथमिकता मिलेगी खासकर महिलाओं को।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 5.2 स्पष्ट रूप से कहती है कि उत्कृष्ट विद्यार्थी ही - विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र से - शिक्षण पेशे में प्रवेश कर पाएं, यह सुनिश्चित करने के लिये उत्कृष्ट चार वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम में अध्ययन के लिए बड़ी संख्या में योग्यता आधारित छात्रवृति देशभर में स्थापित की जाएगी। गांव के शिक्षकों के लिये एक बड़ी समस्या आवास की रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में आवास नहीं मिलता। इस समस्या का निराकरण भी नयी शिक्षा नीति में किया गया है। नयी शिक्षा नीति 2020 के 5.2 प्रावधान में ग्रामीण विद्यालयों में पढ़ाने के लिए एक प्रमुख प्रोत्साहन विद्यालय परिसर में या उसके आसपास स्थानीय आवास का प्रावधान होगा या ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय आवास रखने में सहायता करने के लिए आवास भत्ते में वृद्धि होगी।

व्यावसायिक शिक्षा का प्रावधान

शिक्षा व्यवस्था द्वारा विभिन्न रोजगारों में दक्ष नागरिक तैयार करने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि पाठ्यक्रम में व्यावहारिकता का समावेश हो जिस पर अभ्यास करना भी आवश्यक है। क्योंकि प्रत्येक वर्ष हजारों छात्र शैक्षणिक उपाधि प्राप्त करते है किन्तु अपने लिये रोजगार प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस समस्या का समाधान राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में किया गया है। इसके अनुसार अब विद्यालयों में कला एवं कौशल संबंधी प्रशिक्षण प्रदान किया जायेगा। जिससे विद्यार्थियों को विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों को अपने जीवन को उन्नत करने की योजना बनाने में सहायता मिलें न कि नौकरी की तलाश उनका उद्देश्य हो। अब विद्यार्थी गणित के साथ अर्थशास्त्र एवं कृषि विषय लेकर अपने जीवन की योजना के तौर पर कृषि आधारित कोई व्यापार गांव में रहते हुए प्रारंभ कर सकता है (राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, प्रतिवेदन 2021)।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों हेतु प्रावधान

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों हेतु क्रास विकलांगता प्रशिक्षण, संसाधन केन्द्र, आवास, सहायक उपकरण, उपयुक्त प्रौद्योगिकी आधारित उपकरण, शिक्षकों का पूर्ण समर्थन एवं प्रारंभिक से लेकर उच्च शिक्षा तक नियमित रूप से विद्यालयी शिक्षा प्रक्रिया में सक्षम बनाया जायेगा।

डिजिटल शिक्षा से संबंधित प्रावधान

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, में एक स्वायत्त निकाय के रूप में 'राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच' का गठन किया जाएगा जिसके द्वारा शिक्षण, मूल्यांकन योजना एवं प्रशासन में अभिवृद्धि हेतु विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकेगा। डिजिटल शिक्षा संसाधनों को विकसित करने के लिये अलग प्रौद्योगिकी इकाई का विकास किया जाएगा जो डिजिटल बुनियादी ढाँचे, सामग्री और क्षमता निर्माण हेतु समन्वय का कार्य करेगी (प्रकाश कुमार 2020)। राष्ट्रीय शिक्षा

नीति 2020 के अंतर्गत ई-सामग्री से लैस टैबलेट छात्रों और शिक्षकों को वितरित करने का प्रावधान करता है। जहाँ-तहाँ इनका क्रियान्वयन भी विभिन्न योजनाओं द्वारा किया जा रहा है।

छात्रवृत्तियों का प्रावधान

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ग्रामीण क्षेत्र के जरूरतमंद विद्यार्थियों की पढ़ाई के लिए आर्थिक सहयोग करेगी।विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और आर्थिक रूप से पिछड़े विद्यार्थियों को प्रोत्साहन के रूप में अनेक स्तरों पर अलग अलग छात्रवृत्तियां प्रदान करने का प्रावधान है। जिससे विद्यार्थियों को विद्या अध्ययन में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े।

उच्च शिक्षा से संबंधित प्रावधान

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में 'सकल नामांकन अनुपात' को 26.3 प्रतिशत (वर्ष 2018) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य रखा गया है, इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नये स्थानों को जोड़ा जाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है, इसके तहत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाएगा (1 वर्ष के बाद प्रमाण-पत्र, 2 वर्षों के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक)।

विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिये एक 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' दिया जाएगा, ताकि अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके। नई शिक्षा नीति के तहत एम.फिल. कार्यक्रम को समाप्त कर दिया गया।

विशेष बिंदु

आकांक्षी जिले जैसे क्षेत्र जहाँ बड़ी संख्या में आर्थिक, सामाजिक या जातिगत बाधाओं का सामना करने वाले छात्र पाए जाते हैं, उन्हें 'विशेष शैक्षिक क्षेत्र' के रूप में नामित किया जाएगा (भारत में शिक्षा 2023)।

देश में क्षमता निर्माण हेतु केंद्र सभी लड़कियों और ट्रांसजेंडर छात्रों को समान गुणवत्ता प्रदान करने की दिशा में एक लिंग समावेशन कोष (जेंडर इंक्लूजन फंड) की स्थापना करेगा। गौरतलब है कि आठ वर्ष की आयु के बच्चों के लिये प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा हेतु एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और शैक्षणिक ढाँचे का निर्माण एनसीआरटीई द्वारा किया जाएगा।

नई शिक्षा नीति से संबंधित चुनौतियाँ

राज्यों का सहयोग : शिक्षा एक समवर्ती विषय होने के कारण अधिकांश राज्यों के अपने स्कूल बोर्ड हैं इसलिये इस फैसले के वास्तविक कार्यान्वयन हेतु राज्य सरकारों को सामने आना होगा। साथ ही शीर्ष नियंत्रण संगठन के तौर पर एक राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक परिषद् को लाने संबंधी विचार का राज्यों द्वारा विरोध हो सकता है (दृष्टि आई.ए. एस. कोचिंग 2020)।

महँगी शिक्षा : नई शिक्षा नीति में विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया गया है। विभिन्न शिक्षाविदों का मानना है कि विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश से भारतीय शिक्षण व्यवस्था के महँगी होने की आशंका है। इसके फलस्वरूप निम्न वर्ग के छात्रों के लिये उच्च शिक्षा प्राप्त करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

शिक्षा का संस्कृतिकरण : दक्षिण भारतीय राज्यों का यह आरोप है कि 'त्रि-भाषा' सूत्र से सरकार शिक्षा का संस्कृतिकरण करने का प्रयास कर रही है।

फंडिंग संबंधी जाँच का अपर्याप्त होना : कुछ राज्यों में अभी भी शुल्क संबंधी विनियमन मौजूद है, लेकिन ये नियामक प्रक्रियाएँ असीमित दान के रूप में मुनाफाखोरी पर अंकुश लगाने में असमर्थ हैं।

वित्तपोषण : वित्तपोषण का सुनिश्चित होना इस बात पर निर्भर करेगा कि शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय के रूप में जीडीपी के प्रस्तावित 6 प्रतिशत खर्च करने की इच्छाशक्ति कितनी सशक्त है।

मानव संसाधन का अभाव : वर्तमान में प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में कुशल शिक्षकों का अभाव है, ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत प्रारंभिक शिक्षा हेतु की गई व्यवस्था के क्रियान्वयन में व्यावहारिक समस्याएँ भी हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020, के सफल क्रियान्वयन हेतु सुझाव

- विद्यालयों में शिक्षकों की भर्ती की जाए, जिससे शिक्षकों की कमी दूर हो सके।
- सभी निजी विद्यालयों और महाविद्यालयों जो मानदंड के अनुरूप ना हो बंद किये जाये उन से गुणात्मक शिक्षा नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है।
- डिजिटल शिक्षा के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वोत्तम आधारभूत संरचनाओं का विकास किया जाए जिसके अंतर्गत बिजली तथा वाईफाई सुविधाओं को सुलभ कराया जाए।
- फंडिंग संबंधी जांच के लिए नए नियामक तय किए जाएं तथा इसकी जांच के लिए राज्यों से सहयोग लिया जाए।
- केन्द्र सरकार सभी राज्य सरकारों से राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को अपने-अपने राज्यों में जल्द लागू करवाना सुनिश्चि करे।
- केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारें राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 हेतु वित्तीय आपूर्ति सुनिश्चित करे।

निष्कर्ष

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 21वीं सदी के भारत की जरूरतों को पूरा करने के लिये भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव हेतु जिस नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को मंजूरी दी है अगर उसका क्रियान्वयन सफल तरीके से होता है तो यह नई प्रणाली भारत को विश्व के अग्रणी देशों के समकक्ष ले आएगी। नई शिक्षा नीति, 2020 के तहत 3 वर्ष से 18 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 के अंतर्गत रखा गया है। 34 वर्षों पश्चात् आई इस नई शिक्षा नीति का उद्देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है जिसका लक्ष्य 2025 तक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (3-6 वर्ष की आयु सीमा) को सार्वभौमिक बनाना है। इस नीति की अनुशंसाएँ शिक्षा में गुणवत्ता, समानता वह संपूर्ण भारत की शिक्षा प्रणाली में एकरूपता लाती है, जो भारत की ग्रामीण और स्थानीय जनता को शिक्षा के माध्यम से एक सूत्र में पिरोती है। वर्तमान में इस नीति के क्रियान्वयन में कुछ चुनौतियों का सामना अवश्य ही करना पड़ रहा है परन्तु भविष्य में यह निश्चित ही सफल हो कर भारत को विश्व में एक श्रेष्ठ अर्थव्यवस्था होने का गौरव दिलाएंगी। स्नातक शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, थ्री-डी मशीन, तथ्य-विश्लेषण, जैवप्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों के समावेशन से अत्याधुनिक क्षेत्रों में भी कुशल पेशेवर तैयार होंगे और युवाओं की रोजगार क्षमता में वृद्धि होगी।

गांव के बच्चे जो संपूर्ण बच्चों की आबादी के लगभग 60 प्रतिशत है, उन्हें उचित एवं बराबरी का बर्ताव नहीं मिला। उनका अधिगम धीमा हुआ चूंकि शिक्षण का माध्यम उनकी अपनी भाषा में नहीं था, विषयों का चुनाव उनकी रूचि एवं जीवन से जुड़ा हुआ नहीं था। शिक्षक या तो उपलब्ध नहीं थे या उपलब्ध थे तो शिक्षण में उनकी रूचि नहीं थी। किन्तु अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के प्रावधानों के अनुसार शिक्षक संवेदनशील होकर बच्चों से जुड़कर उन्हें जीवन उपयोगी शिक्षा देंगे।

सन्दर्भ

भारत में शिक्षा 2023, विकिपीडिया, http://www.en.wikipedia.org/wiki/Education_in_India

दृष्टि आई.ए.एस. कोचिंग, ऑनलाइन टेस्ट सीरीज़ और अध्ययन सामग्री, दिल्ली, 2020 https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/national-education-policy-2020

कुमार, प्रकाश, '21वी सदी की मांग पूरी करेगी नई शिक्षा नीति', *आउटलुक,* 24 अगस्त 2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2020

राजस्थान पत्रिका नागौर, सम्पादकीय, 28 जनवरी 2020

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, प्रतिवेदन, दिल्ली में निजी स्कूलों में वंचित वर्गों के बच्चों के प्रवेश से संबंधित आरटीई अधिनियम, 2009 की धारा 12(1) (सी) के कार्यान्वयन पर एक अध्ययन, एनसीपीसीआर, नई दिल्ली, 2021

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 176-186)
UGC-CARE (Group-I)

ओबीसी मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति : उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में

ज्याउद्दीन* एवं हयात अहमद†

प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य उत्तर प्रदेश में ओबीसी मुसल्मानों की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना है। सामाजिक-आर्थिक स्थिति निर्धारित करने के लिए ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में मुसलमानों की व्यावसायिक, रोजगार, शैक्षिक स्थिति तथा सरकारी नौकरियों में मुसल्मानों की हिस्सेदारी और विधायी निर्णय लेने वाले निकायों में उनके प्रतिनिधित्व का अध्ययन करता है, और साथ ही साथ ओबीसी के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण से संबंधित मुद्दों का भी मूल्यांकन करने का प्रयास करता है, एक ऐसा लाभ जिसने कमोबेश मुस्लिम ओबीसी को दरकिनार कर दिया है। प्रस्तुत लेख में जो भी आंकड़े दिए गये है वह द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। आजादी के बाद से उत्तर प्रदेश में शिक्षा एवं महत्वपूर्ण सरकारी निर्णय लेने वाले संस्थानों में मुसल्मानों, विशेष रूप से ओबीसी मुसल्मानों का प्रदर्शन असंतोषजनक

*सह आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी (उ.प्र).
E-mail: ziyasocio@gmail.com
†सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शिब्ली नेशनल कॉलेज, आज़मगढ़ (उ.प्र.).
E-mail: drhayatahamad@gmail.com

रहा है। इसके परिणामस्वरूप उपेक्षा और भेदभाव की भावना पैदा हुई है जिससे समुदाय के भीतर कुछ स्तरों पर सामाजिक तनाव हुआ है।

बीज शब्द - सामाजिक-आर्थिक स्थिति, भेदभाव, समानता और सामाजिक न्याय।

प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और हर समाज में सैद्धांतिक और व्यवहारिक अंतर हमेशा से रहा है और यह एक परम्परा की तरह चलता ही आ रहा है। प्रत्येक मनुष्य के सिद्धांत और व्यवहार में अन्तर होता ही है। अगर हम मुस्लिम समाज में सिद्धांत और व्यवहार में अंतर देखें तो बहुत कम लोगों को इसका अन्तर पता चलेगा। हिन्दू धर्म में जिस प्रकार वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत शूद्र समाज आता है ठीक वैसी ही स्थिति मुस्लिम समाज में भी मौजूद है। जिसे पसमांदा के नाम से जाना जाता है। अगर इस्लाम में जाति के सिद्धांत पर रौशनी डालें, तो मालूम होगा कि यहां कोई वर्ण व्यवस्था का सिद्धांत नहीं बनाया गया है। जिससे कि जाति के अंतर को मालूम किया जा सके या जिससे मुसलमानों में ऊंच-नीच का कोई अंतर बताया जा सके (इमत्याज, 1971)।

ऐतिहासिक रूप से देखा जाये तो, भारत की मुस्लिम आबादी का एक बड़ा हिस्सा सामाजिक उत्पीड़न और प्रमुख सामाजिक-आर्थिक विकृतियों से दूर रहने के लिए निचली हिंदू जातियों से परिवर्तित हो गया। इस्लाम के भाईचारे और सामाजिक समानता की धारणा ने उन्हें आकर्षित किया, लेकिन अंततः यह एक मृगतृष्णा साबित हुई। भारत में बहुसंख्यक मुसलमानों को कमोबेश उसी तरह की असमानता, भेदभाव और पिछड़ेपन का सामना करना पड़ता है, जिसका सामना हिंदुओं में पिछड़ी जातियों को करना पड़ता है (कृष्णन, 2010)। सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं में उनकी गहरी जड़ें होने के कारण उनकी पारंपरिक जातिगत विशेषताएँ अपरिवर्तित रहीं। परिणामस्वरूप, इस्लाम में परिवर्तित होने के बाद भी, उनकी सामाजिक स्थिति लगभग वही बनी रही, और ये समूह वही पारंपरिक व्यवसाय अपनाते रहे। अपनी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन करने से पहले उन्हें अभाव का सामना करना पड़ा और यह परिवर्तन के बाद भी जारी रहा (यादव, 2013)।

गौस अंसारी (1960) ने बताया कि मुसलमानों में तीन वर्ग मौजूद है। जिसमें सबसे श्रेष्ठ अशराफ वर्ग है। यह ऐसा वर्ग है जो खुद को बाहरी नस्ल का मानता है। जिसमें तुर्की, सैयद, शेख, मुगल, मिर्जा आदि जातियां शामिल है। यह जातियां शासक वर्ग में आती हैं। यह शुरू से ही सामाजिक और आर्थिक रूप से मजबूत रही हैं और मुस्लिम समाज पर इनका ही वर्चस्व रहा है, क्योंकि शुरु से ही इनके पास शक्ति थी इसलिए यह दूसरे वर्ग तथा दूसरी जातियों को अपने से छोटा ही समझती आई है। यह मुसलमानों में सबसे शिक्षित रहे हैं और अन्य सभी के मुकाबले आर्थिक रूप से सम्पन्न भी हैं।

दूसरा वर्ग अजलाफ है इस वर्ग में अधिकतर शिल्पकार मेहनतकश जातियां आती हैं जो अन्य पिछड़े वर्ग में शामिल हैं। इस वर्ग में जुलाहा, मोची, धुनिया, ढपाली, तेली आदि आते हैं यह जातियां अपने हुनर से ही अपने परिवार का पालन पोषण करती हैं। इनकी आर्थिक दशा कुछ खास नहीं है यह किसी तरह अपना जीवनयापन करते है। आधुनिक दौर में इनके कौशल की कोई कीमत नहीं। जिस कारण इन्हें रोज ही रोजी के लिये मशक्कत करनी पड़ती हैं। तीसरी श्रेणी 'अरजाल' की है जिसमें अधिकतर सफाई कार्य करने वाले वर्ग है। यह तीनों वर्गों में सबसे निम्न है और इनकी सामाजिक हालत तो बहुत ही दयनीय है यह हिंदू शूद्र जातियों के समानांतर ही माने जाते हैं। इनकी दशा बिल्कुल वैसे ही है जैसे हिंदू दलितों की थी। परंतु समय ने इन पर कोई रहम नहीं दिखाया और ना ही इनके मुसलमान भाईयों ने। इस वर्ग में भक्को, नट, धोबी, हलालखोर, गोरकन आदि जातियां शामिल हैं (जैनुद्दीन, 2003)। 1950 के राष्ट्रपति आदेश के कारण अरजाल को अनुसूचित जाति (एससी) सूची में शामिल नहीं किया जा सका, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि अस्पृश्यता और सामाजिक अभाव की सामाजिक प्रथा के कारण एससी श्रेणी हिंदुओं के लिए विशिष्ट थी। हालाँकि, सिखों ने अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी और 1956 में एससी के लिए सकारात्मक नीति के तहत आरक्षण का दर्जा पाने में सफल रहे। बाद में, 1990 में हिंदुओं और सिखों के साथ बौद्धों को भी एससी श्रेणी में शामिल किया गया। इस प्रकार, ईसाई और मुस्लिम केवल दो धार्मिक समुदाय थे जो एससी आरक्षण सूची से बाहर रह गए थे (हसन, 2009)।

भारतीय मुसलमानों के बीच मौजूद सामाजिक पदानुक्रम और विभाजन की पहचान करने के लिए, पहला प्रयास 1955 में काका कालेलकर आयोग द्वारा किया गया था, जिसमें 2399 पिछड़ी जातियों/समुदायों को सूचीबद्ध किया गया था, जिनमें से 837 को सबसे पिछड़े के रूप में वर्गीकृत किया गया था, और इसमें मुस्लिम भी शामिल थे। आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि मुसलमानों के बीच कुछ जातियाँ/समुदाय है, जो अपने ही समाज में सामाजिक पिछड़ेपन और भेदभाव से पीड़ित थे, को भी पिछड़ा हुआ माना गया, उन्हें सकारात्मक कार्रवाई के दायरे में लाया गया। दरअसल, आयोग ने उनके लिए नौकरी में आरक्षण की सिफारिश की, लेकिन यह सिफारिश कागजों पर ही रह गई (कृष्णन, 2010)।

दूसरे पिछड़ा वर्ग आयोग (1980) ने मुसलमानों सहित अन्य समुदायों के बीच पिछड़ेपन की समस्या को पहचाना। यह अनुमान लगाया गया कि भारत की कुल आबादी का 54 प्रतिशत (अनुसूचित जाति एवं जनजाति को छोड़कर) 3743 विभिन्न जातियों और समुदायों से संबंधित पिछड़े थे। आयोग ने 90 प्रतिशत मुस्लिम आबादी को ओबीसी से संबंधित माना। मंडल आयोग ने 82 मुस्लिम समूहों को पिछड़ा घोषित किया और उनके लिए हिंदू ओबीसी के बराबर आरक्षण और अन्य सुविधाएं देने की सिफारिश की। मंडल आयोग ने मुस्लिम ओबीसी के बीच अभाव की प्रकृति में असमानता को भी नजरअंदाज कर दिया जिसके फलस्वरूप अरजाल और अजलाफ मुसलमानों दोनों को एक ही श्रेणी ओबीसी में

शामिल कर लिया। मंडल आयोग ने सभी ओबीसी के लिए केंद्र सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की जिसमें मुस्लिम भी शामिल थे (भारत सरकार, 1980)।

उत्तर प्रदेश में मुस्लिम ओबीसी की जनसंख्या, व्यावसाय एवं रोजगार की स्थिति

भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार, मुस्लिम आबादी उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या का 19.26 प्रतिशत यानी 3.85 करोड़ है। जबकि राज्य में हिंदू धर्म 79.73 प्रतिशत के साथ बहुसंख्यक धर्म है। इन दो समुदायों (हिंदू और मुस्लिम) की कुल आबादी का 98 प्रतिशत से अधिक हिस्सा है। इस आधार पर उत्तर प्रदेश की बात की जाये तो राज्य में 79.73 प्रतिशत के साथ हिंदू धर्म बहुसंख्यक धर्म है। 19.26 प्रतिशत के साथ उत्तर प्रदेश राज्य में मुस्लिम दूसरा धर्म है (जनगणना, 2011)। भारत में मुस्लिम आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा भी यहीं है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण 68वें दौर के अनुसार, मुस्लिम ओबीसी राज्य की कुल आबादी का 12.90 प्रतिशत हैं; राज्य की कुल ओबीसी आबादी का 23.68 प्रतिशत और कुल मुस्लिम आबादी का 69.04 प्रतिशत है। इस बात पर प्रकाश डालने की जरूरत है कि गैर-मुस्लिम ओबीसी कुल गैर-मुस्लिम आबादी का 51.95 प्रतिशत हैं। राज्य की कुल शहरी आबादी में मुसलमानों की हिस्सेदारी 37.2 प्रतिशत है, जो राज्य के औसत 22 प्रतिशत से कहीं अधिक है (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण, 2004-05)। यह अंतर बड़ा है क्योंकि मुसलमान ओबीसी में दलित मुसलमानों को भी शामिल किया गया है, जबकि गैर-मुसलमानों में दलितों को अनुसूचित जाति एवं जनजाति के रूप में वर्गीकृत किया गया है, समान सामाजिक-आर्थिक वर्गों के मुसलमानों को यह दर्जा नहीं दिया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश मुसलमान कारीगर थे, वैश्वीकरण और नवउदारवादी आर्थिक नीतियों के प्रभाव के परिणामस्वरूप उनकी स्थिति और भी गंभीर हो गई है, जिसने किसानों, भूमिहीन मजदूरों और कारीगरों जैसे हाशिए पर रहने वाले समूहों को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचाया है, जिनमें से एक बड़ा हिस्सा मुस्लिम है। बढ़ते आर्थिक संकट और सांप्रदायिकता के कारण ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में प्रवासन के लिए जिम्मेदार है, विशेषकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में। उदाहरण के लिए, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर में 2013 में सांप्रदायिक हिंसा की घटनाओं के कारण मुस्लिमों का ग्रामीण क्षेत्रों से नजदीकी शहरों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन देखा गया है (आलम, 2019)।

रोजगार परिदृश्य में मुस्लिम ओबीसी की सापेक्ष स्थिति को देखा जाये तो ओबीसी मुसलमानों में विभिन्न उपजातियाँ शामिल हैं जो पारंपरिक रूप से भूमिहीन मजदूर थीं। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण 68वें दौर 2004-05 और 2011-2012 के अनुसार, कृषि स्वरोजगार (खेती) में देखा जाये तो ग्रामीण उत्तर प्रदेश में उच्च जाति के हिंदुओं (72.26 प्रतिशत) और हिंदू ओबीसी (70.43 प्रतिशत) का खेती पर वर्चस्व था। उनके बाद उच्च जाति के मुस्लिम (44. 57 प्रतिशत) और ओबीसी मुस्लिम (38.11 प्रतिशत) हैं। जबकि कृषि स्वरोजगार (खेती) के संदर्भ में अनुसूचित जाति की हिस्सेदारी (49.91 प्रतिशत) मुसलमानों से अधिक है। गैर-कृषि

रोजगार में कार्यरत मुस्लिम ओबीसी (39.2 प्रतिशत) है जबकि उच्च जाति के मुस्लिम (29. 95 प्रतिशत) है। 2011-2012 में, आकस्मिक श्रम में मुसलमानों की हिस्सेदारी में काफी वृद्धि हुई है। मुस्लिम ओबीसी (19.82 प्रतिशत) और उच्च जाति के मुसलमान (19.25 प्रतिशत) है, इन आँकड़ो से यह पता लगाया जा सकता है कि राज्य में ओबीसी मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति समय के साथ और भी खराब हो गई है (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण, 2004-05, 2011-2012)। शहरी क्षेत्रों में मुस्लिम ओबीसी की आजीविका ज्यादातर स्व-रोजगार पर निर्भर करती है। सभी सामाजिक-धार्मिक समूहों के बीच अनौपचारिक क्षेत्र में स्व-रोजगार गतिविधियों में लगे ओबीसी मुस्लिम श्रमिकों का प्रतिशत सबसे अधिक है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण 2004-2005 और 2011-2012 के अनुसार, दोनों अवधियों के दौरान मुस्लिम ओबीसी के 16.85 प्रतिशत में से केवल 14.1 प्रतिशत मुस्लिम ओबीसी परिवारों ने अपनी आजीविका के लिए स्व-रोजगार की ओर स्थानांतरित किया है। गरीबी और शिक्षा की कमी के कारण अधिकांश मुस्लिम ओबीसी निम्न-स्तरीय व्यवसायों में लगे हुए हैं, जो उन्हें किसी भी प्रकार के काम को करने के लिए मजबूर करता है।

यदि वे चिनाई, साइकिल मरम्मत, चाय की दुकान, बढ़ईगीरी, नाई, विक्रेता, दर्जी और टेम्पो के ड्राइवर जैसे छोटे-मोटे काम नहीं करते हैं, तो वे अपने बच्चों का भरण-पोषण नहीं कर सकते हैं, जिनमें से अधिकांश का स्वामित्व हिंदुओं के पास था (इंजीनियर, 2006)। इस प्रकार के स्व-रोजगार कार्यों के प्रति रुझान या औपचारिक क्षेत्र में नौकरियों की कोई उम्मीद न होने के कारण ये व्यापार पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ते रहते हैं। इसके अलावा, ऐसे साक्ष्य भी हैं जो दर्शाते हैं कि साक्षरता और सरकारी नौकरियों को अधिक महत्व नहीं दिया गया है और सार्वजनिक प्रशासन, सेवाओं, शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रों में मुस्लिम ओबीसी की हिस्सेदारी अन्य सामाजिक-धार्मिक वर्गों की तुलना में बहुत कम है (मंडल, 2012)।

शिक्षा एवं सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व

शिक्षा राष्ट्र निर्माण की आधारशिला है तथा समाज और संस्कृति की गतिशीलता समृद्धि एवं विकास की अनिवार्य कड़ी है। यह समाज के लोगो में संस्कृति का विकास करने के साथ ही व्यक्तित्व एवं नैतिक मूल्यों का निर्माण करती है, जिससे मनसा, वाचा, कर्मणा का भाव जागृत होता है ऐसे में राष्ट्र के प्रत्येक प्राणी को शिक्षित करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य और महत्वपूर्ण भी है। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा सामाजिक गतिशीलता की स्थिति और प्रक्रिया को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह न केवल एक व्यक्ति को उभरती हुई सामाजिक स्थिति के अनुकूल बनाने में मदद करता है बल्कि लोकतांत्रिक समाज में हो रहे बदलाव के लिए तैयार करती है (हैवेल्सरुड, 1981)। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण 2004-05 और 2011-2012 को देखा जाये तो उत्तर प्रदेश में निरक्षरता की औसत दर 48.67 प्रतिशत थी, जबकि ओबीसी मुसलमानों में यह सबसे अधिक 61.12 प्रतिशत थी। 2011-2012 तक, निरक्षरता की औसत दर घटकर 40.12 प्रतिशत हो गई और ओबीसी मुसलमानों की औसत

दर घटकर 50.87 प्रतिशत हो गई। परन्तु, फिर भी यह राज्य के अन्य सामाजिक-आर्थिक समूहों में सबसे अधिक बनी हुई है। हालाँकि, यह गंभीर चिंता का विषय है कि ओबीसी मुसलमान शिक्षा के विभिन्न स्तरों, स्कूल के साथ-साथ उच्च शिक्षा स्तरों पर भी अनुसूचित जाति की तुलना में शैक्षिक रूप से अधिक पिछड़े हैं।

प्रारंभ में, मुसलमानों ने आधुनिक स्कूलों में शिक्षा के बजाय मदरसों में शिक्षा को प्राथमिकता दी, इस प्रकार मुस्लिम ओबीसी द्वारा आधुनिक शिक्षा अपनाने में विफलता के कारण उन्हें विरासत में पिछड़ापन मिला। अन्य कारक जैसे आर्थिक पिछड़ापन माता-पिता को बच्चों को स्कूल भेजने से रोकना है, पर्दा प्रथा और कम उम्र में शादी का प्रचलन, लड़कियों की शिक्षा के प्रति नकारात्मक रवैया, हिंदी पर जोर और आजादी के बाद से शिक्षा के माध्यम के रूप में उर्दू का व्यावहारिक बहिष्कार और संस्थागत भेदभाव उनके शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए भी जिम्मेदार थे (सच्चर, 2006)। शिक्षा के क्षेत्र में अन्य अध्ययनों में यह पाया गया है कि जिन जिलों में मुस्लिमों की संख्या अधिक है, वहां साक्षरता का स्तर कम है। इसका एक कारण शिक्षा सुविधा की कमी है क्योंकि उच्च मुस्लिम आबादी वाले जिलों में गैर-एससी हिंदुओं के उच्च अनुपात वाले जिलों की तुलना में कम शैक्षिक बुनियादी ढांचे हैं (रंगनाथ, 2007)। कई मुस्लिम संगठनों की भूमिका केवल सांस्कृतिक और धार्मिक कार्यक्रमों के आयोजन तक ही सीमित है और उनका उद्देश्य मुसलमानों के बीच शैक्षिक विकास को बढ़ावा देना नहीं था। ऐसे कई संगठन केवल अपने राजनीतिक दलों के पक्ष में वोट प्राप्त करके राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए स्थापित किए गए हैं। सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में मुस्लिम ओबीसी का प्रतिनिधित्व उनकी कुल आबादी के अनुपात में काफी नगण्य है। सरकारी नौकरियों में आरक्षण का बड़ा हिस्सा ज्यादातर राजनीतिक और आर्थिक रूप से प्रभावशाली पिछड़ी जातियों जैसे यादव, जाट, कुर्मी और गुज्जर ने कब्जा कर लिया है। उत्तर प्रदेश में सामाजिक न्याय समिति, 2001 की रिपोर्ट में पाया गया है कि यादव और संबद्ध जातियों का अनुपात कुल ओबीसी आबादी का 19.40 प्रतिशत था, लेकिन सरकारी सेवा में उनका हिस्सा ओबीसी श्रेणी के लिए आरक्षित था। ए, बी, सी और डी श्रेणी की नौकरियों के लिए प्रतिशत क्रमश: 30.26, 40.29, 36.39 और 25.71 है। वर्ग ए, बी, सी और डी की सरकारी नौकरियों में मुस्लिम ओबीसी का प्रतिनिधित्व अभी भी कम है। अर्थात् उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग (यूपीपीसीएस) में मुस्लिम ओबीसी का कुल प्रतिनिधित्व 5 प्रतिशत से अधिक नहीं है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि राज्य में ओबीसी आबादी का पांचवां हिस्सा मुसलमानों का है, और ये संख्या स्पष्ट रूप से सरकारी नौकरियों की भर्ती में मुस्लिम ओबीसी के कम प्रतिनिधित्व को दर्शाती है। उच्च तकनीकी नौकरियों में कम प्रतिनिधित्व समझ में आता है, लेकिन गैर-तकनीकी नौकरियों में इतनी कम हिस्सेदारी बड़ी चिंता का विषय है। तथ्य यह है कि अधिकांश मुस्लिम ओबीसी सिविल सेवा या सशस्त्र बलों में अन्य ओबीसी के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए पर्याप्त रूप से शिक्षित नहीं हैं। वास्तव में, विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में उनकी भागीदारी दर भी बहुत कम है (खालिदी, 2006)।

मुस्लिम ओबीसी का राजनीतिक प्रतिनिधित्व

आजादी के बाद भी मुस्लिम नेताओं के सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में बदलाव नहीं आये। मुस्लिम राजनीति में शुरुआत से ही उच्च वर्ग और जाति का दबदबा रहा है। थिओडोर राइट के एक सर्वे के मुताबिक 58 राज्यसभा सदस्यों में केवल 9 सदस्य ऐसे थे जिन्होंने अपने निचले वर्ग से आया हुआ बताया (थियोडोर पी राइट, 1964)। ये नेतागण अपनी पार्टी की पैरोकारी में ही लगे रहे जिससे इनका स्वार्थ सधता रहे और पार्टी का भी और बदले में ऐसे मुद्दों को न छेड़ा जाये जो आधिकारिक मिथक को तोड़ता प्रतीत हो। इसलिए जाति प्रथा कभी भी मुद्दा न बन सका क्योंकि इसके उठने से सरकार को पसमांदा मुसलमानों के लिए अलग व्यवस्था करनी पड़ती। इन मुद्दों को यह कह कर टाल दिया जाता कि इस्लाम में जात-पात नहीं है। अभिजात मुस्लिम वर्ग के लिए भी यह फायदे का सौदा था। पूरा समुदाय विकास के अभाव वाली स्थिति में मिलने वाले मामूली संसाधनों का बँटवारा नहीं करना पड़ेगा। इनके लिए पूरा समाज एक ही तरह की समस्याओं से रूबरू है। उदाहरण के लिए ऑल इंडिया मुस्लिम मजलिस-ए-मुशावरत अपने उद्देश्य में जिक्र करते हैं कि यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए की सभी मुसलमान इस्लाम के उच्च आदर्शों पर चले और खुद को देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति से अलग-थलग न रखें (मुशीरुल हसन, 1979)।

इस प्रकार अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि मुस्लिम समुदाय और विशेष रूप से मुस्लिम ओबीसी को न तो उत्तर प्रदेश विधान सभा और न ही लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त है, जो उनके सशक्तीकरण की कमी को दर्शाता है। उत्तर प्रदेश में 80 संसदीय सीटें हैं, जो भारत में सबसे अधिक हैं, लेकिन 2014 के संसदीय चुनाव में यूपी से एक भी मुस्लिम चुनाव नहीं जीता। 2019 में सपा एवं बसपा गठबंधन के कारण 80 संसदीय सीटों में से केवल 6 मुस्लिम सांसद चुनाव जीते। इस प्रकार 2007 की तुलना में 2012 में मुसलमानों का बेहतर प्रतिनिधित्व था, लेकिन फिर भी, अन्य समुदायों की तुलना में उनका प्रतिनिधित्व कम रहा। मुस्लिम ओबीसी राज्य की कुल आबादी का 12.90 प्रतिशत हैं, लेकिन राज्य विधानसभा में उनका प्रतिनिधित्व 2012 और 2007 में क्रमश: 4.22 प्रतिशत और 3. 23 प्रतिशत रहा है। हालाँकि, 2012 में उत्तर प्रदेश में शहरी स्थानीय निकायों के लिए हुए चुनावों में मुस्लिम प्रतिनिधित्व में प्रभावशाली वृद्धि देखी गई है। शहरी क्षेत्रों में घने मुस्लिम आवासीय समूह हैं; इस कारण राज्य की लगभग एक तिहाई शहरी स्थानीय निकाय सीटों पर मुस्लिम उम्मीदवार चुने गए। हालाँकि, अधिकांश विधानसभा और संसदीय सीटों में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों का मिश्रण होता है, इसलिए सामुदायिक समर्थन के आधार पर मुस्लिम उम्मीदवारों के लिए बढ़त हासिल करना मुश्किल हो जाता है (वर्मा, 2012)। किसी उम्मीदवार की सामुदायिक पहचान एक महत्वपूर्ण कारक है, जो भारत के मतदाताओं के मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है। इसके अलावा, बहुसंख्यक समुदाय के उम्मीदवारों का समर्थन करने वाले राजनीतिक दलों द्वारा मुसलमानों के कम नामांकन ने भी मुस्लिम प्रतिनिधित्व के

कम स्तर में योगदान दिया है। यह भी कहने की जरूरत है कि बढ़ते हिंदुत्व प्रभाव के कारण कई पार्टियां मुसलमानों को नामांकित करने में झिझक रही हैं (नजीरुद्दीन, 2012)। इसके अलावा, राज्य में मुस्लिम राजनीति पर उच्च जाति के मुसलमानों जैसे कि पठान, सैयद और शेखों का वर्चस्व रहा है जो मुस्लिम ओबीसी के पिछड़ेपन को स्वीकार नहीं करते हैं। यह ऊंची जाति आम तौर पर धर्म, संस्कृति और उर्दू भाषा जैसे भावनात्मक मुद्दों पर चुनावी मुद्दा उठाती रही है, जिनका गरीब मुसलमानों की सामाजिक-शैक्षणिक स्थिति से कोई लेना-देना नहीं है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त चर्चा हमें उन ऐतिहासिक अस्मिताओं की श्रेणियों की खोज करने के लिए मजबूर करती है जो पारम्परिक समूहों से परे हैं ऐसी श्रेणियाँ स्थानीय समूहों की जरूरतों और कल्पनाओं की उत्पाद थीं और ऊपर से थोपी नहीं गई थीं। मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक इस्लाम में धर्मान्तरण से उनके सामाजिक हाशिये की स्थिति समाप्त नहीं हुई। आर्थिक अभाव के साथ-साथ 'अस्पष्ट' सामाजिक स्थिति ने भी ओबीसी मुसलमानों को उन्नीसवीं सदी में परम्परागत सामाजिक ढाँचे से बाहर जाकर वहाबी, देवबंदी और बरेलवी फिरकों के मुस्लिम सुधार आन्दोलनों में अस्मिता की तलाश करने के लिए मजबूर किया। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि हिंदुओं में ऊंची जातियों की तरह मुसलमानों में अशरफों की शिक्षा तक ऐतिहासिक रूप से बेहतर पहुंच है और इसलिए वे मुस्लिम ओबीसी की तुलना में सामाजिक और शैक्षणिक रूप से अधिक उन्नत हैं। लगभग 90 प्रतिशत अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान अशरफों द्वारा प्रशासित हैं जहां रोजगार और प्रवेश में पक्षपात और भाई-भतीजावाद के आरोप आम हैं। अधिकांश संस्थानों को उनके अल्पसंख्यक चरित्र के कारण शैक्षणिक संस्थानों में संविधान द्वारा अनिवार्य आरक्षण से छूट दी गई है। लेकिन वे अधिकार और संरक्षण के केंद्र बन गए हैं, और कभी-कभी मुसलमानों के बीच भी जाति-आधारित पक्षपात होता है (अंसारी, 2007)।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की शिक्षण संकाय संरचना को देखा जाये जो भारत में सभी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों में सबसे बड़ा सरकारी वित्त पोषित विश्वविद्यालय है। यह स्पष्ट रूप से सामने लाता है कि शिक्षण संकाय में उच्च जाति के मुसलमानों (88.35 प्रतिशत) का वर्चस्व है। संकाय में मुस्लिम ओबीसी कुल संकाय का 4.81 प्रतिशत और कुल मुस्लिम संकाय का 5.17 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि अल्पसंख्यक संस्थानों में भी ओबीसी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कम है। दूसरे सबसे बड़े केंद्रीय वित्त पोषित अल्पसंख्यक विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया इस्लामिया में स्थिति बहुत अलग नहीं हो सकती है।

इस संदर्भ में, अखिल भारतीय मुस्लिम ओबीसी संगठन और अखिल भारतीय पिछड़ा मुस्लिम मोर्चा ने भी सभी मुसलमानों के लिए धर्म-आधारित कोटा पर कड़ी आपत्ति जताई और मुसलमानों के भीतर दलितों और पिछड़ों के दावों के लिए दबाव डाला (मंडल, 2003)। मध्य प्रदेश के कुरैशी कसाई समुदाय के एक नेता मुहम्मद इब्राहिम कुरैशी ने तर्क

दिया कि उच्च जाति के मुसलमानों की आरक्षण की मांग प्रकृति में असंवैधानिक है क्योंकि भारतीय संविधान केवल सामाजिक, शैक्षणिक पिछड़ेपन के आधार पर आरक्षण प्रदान करता है, न कि धार्मिक आधार पर (सिकंद, 2005)। मुंबई स्थित इस्लामिक विद्वान असगर अली इंजीनियर ने कहा है कि आरक्षण केवल उन मुस्लिम समुदायों को प्रदान किया जाना चाहिए जिन्हें दलित, आदिवासी और पिछड़ी जातियों के रूप में मान्यता प्राप्त है। उन्होंने तर्क दिया है कि यदि सभी मुसलमानों को ओबीसी के तहत शामिल किया गया, तो आरक्षण का लाभ केवल ऊंची जाति के मुसलमानों को मिलेगा। पटना स्थित पसमांदा मुस्लिम महाज के अली अनवर ने सुझाव दिया है कि ओबीसी को दो समूहों में वर्गीकृत किया जाना चाहिए जैसा कि बिहार में किया गया है, अन्य पिछड़ी जातियां और सबसे पिछड़ी जातियां, जिनमें से दोनों में उनके आधार पर विभिन्न हिंदू, मुस्लिम और अन्य जातियां शामिल होंगी।

पिछड़े मुसलमानों को सामाजिक-आर्थिक विकास के दायरे में लाने के एक हिस्से के रूप में, कई राज्यों ने 27 प्रतिशत कोटा के भीतर उप-कोटा बनाया है। केरल सरकार ने ओबीसी के भीतर एक उप-कोटा पेश किया जिसमें मुस्लिम हिस्सेदारी 12 प्रतिशत थी। उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के बावजूद, केरल में 2-3 जातियों को छोड़कर सभी मुसलमानों को ओबीसी के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इसी तरह, कर्नाटक में 16 प्रतिशत पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण, जिसमें नौकरियों और शिक्षा में मुस्लिम भी शामिल हैं, मुस्लिम ओबीसी के लिए 4 प्रतिशत का उप-कोटा तय किया है। तमिलनाडु सरकार ने 2007 में एक अध्यादेश के माध्यम से पिछड़े वर्गों से संबंधित मुसलमानों और ईसाइयों के लिए कोटा शुरू किया और बाद में पिछड़ी जातियों के लिए मौजूदा 30 प्रतिशत आरक्षण के भीतर मुसलमानों और ईसाइयों प्रत्येक के लिए 3.5 प्रतिशत तय किया। हालाँकि, ईसाइयों ने कोटा का अपना हिस्सा छोड़ दिया, और उनका हिस्सा पिछड़े हिंदू वर्गों को दे दिया गया। तेलंगाना सरकार ने पिछड़े मुसलमानों के लिए नौकरियों और शिक्षा में आरक्षण को 4 से बढ़ाकर 12 प्रतिशत करने के लिए राज्य विधानसभा में एक विधेयक पारित किया। साथ ही, विधेयक में अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण को 6 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत करने की मांग की गई है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम ओबीसी के बीच आर्थिक असुरक्षा और शैक्षिक पिछड़ेपन ने व्यापक राजनीतिक संदर्भ में अपने अधिकारों के लिए लड़ने की उनकी क्षमता को कम कर दिया है। हालाँकि, ओबीसी मुसलमानों और दलित मुसलमानों के प्रभावी सशक्तीकरण के लिए मौजूदा आरक्षण नीति पर पुनर्विचार करने की तत्काल आवश्यकता है। भटियारा, फकीर, नट, हलालखोर, लालबेगी, बंजारा, धोबी, मोची आदि जैसी दलित मुस्लिम जातियों को ओबीसी सूची से बाहर निकाला जा सकता है और अनुसूचित जाति सूची में शामिल किया जा सकता है। क्योंकि हिंदुओं में उनकी समकक्ष जातियों को अनुसूचित जाति वर्ग में पहले ही शामिल किया जा चुका है। सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखते हुए, कुछ मुस्लिम पिछड़ी जातियों को ओबीसी के भीतर सबसे पिछड़ी जातियां घोषित

किया जा सकता है। सेवाओं और शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण के लिए एक अलग कोटा दिया जा सकता है। यदि मुस्लिम ओबीसी के लिए अलग आरक्षण संभव नहीं है, तो सामाजिक न्याय समिति के सुझाव के अनुसार ओबीसी के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण को तीन श्रेणियों, यानी पिछड़ा, सबसे पिछड़ा और अत्यंत पिछड़ा में वर्गीकृत किया जा सकता है। ओबीसी के लिए आरक्षण नीति में क्रीमीलेयर मानदंड का प्रभावी ढंग से पालन किया जाना चाहिए; अन्यथा, आरक्षण का लाभ उसी समुदाय के वास्तविक समूहों तक नहीं पहुंच पाएगा। समान अवसर आयोग जैसे भेदभाव-विरोधी उपाय भी लागू किए जा सकते हैं। चूंकि बड़ी संख्या में मुस्लिम ओबीसी स्व-रोजगार और घर-आधारित काम पर निर्भर हैं, इसलिए ऋण पहुंच की कमी एक गंभीर बाधा रही है। इसलिए, इस समुदाय के लिए ऋण सुविधाओं तक पहुंच में सुधार से उनके आर्थिक उत्थान में काफी मदद मिल सकती है। ये कदम हमारे संविधान में निहित मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के लिए समानता और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त करने में काफी मदद करेंगे।

सन्दर्भ सूची

अहमद, इमत्याज (1971) 'मुसलमानों के बीच सामाजिक स्तरीकरण', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* वाल्यूम, 73, इश्यु 13 ।

अंसारी, गौस (1960) मुस्लिम कसते इन उत्तर प्रदेश ए स्टडी ऑफ कल्चर कांटेक्ट लखनऊ, एथनोग्राफिक एंड फोल्क कल्चर सोसाइटी ।

आलम तोसिब, कुमार सुरिंदर (2019) सोशल एंड इकोनॉमिक स्टेटस ऑफ बैकवर्ड मुस्लिम इन उत्तर प्रदेश: नीड फॉर एन इन्क्लूसिव पॉलिसी, *सोशल चेंज,* सेज पब्लिकेशन, 49 (1), 78-96.

इंजीनियर, असगर अली (2006) *इंडियन मुस्लिम रिजर्वेशन ऑर नो रिजर्वेशन सेक्युर पर्सपेक्टिव,* सेण्टर फॉर स्टडी एंड सेकुलरिज्म नई दिल्ली ।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1980) *रिपोर्ट ऑफ द बैकवर्ड क्लासेस कमीशन,* बीपी मंडल नई दिल्ली ।

हसन, जोया (2009) *पॉलिटिक्स ऑफ इन्क्लुजन : कास्ट माइनॉरिटीज एंड अफरमेटिव एक्शन,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली ।

हवेल्सरुद, माग्नुस (1981) 'ऑन इन्क्लूजन एंड एक्सक्लूजन', *बुलेटिन ऑफ पीस जर्नल* 12 (2):105-14.

हसन, मुशीरुल (1979) *भारत राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक राजनीति,* मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली ।

जैनुद्दीन, एस (2003) 'इस्लाम सोशल स्ट्रेटिफिकेशन एंड इम्पॉवरमेंट ऑफ मुस्लिम ओबीसी', *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* 38(46), 4898-4901.

कृष्णन, पी. एस. (2010) 'अंडरस्टैंडिंग द बैकवर्ड क्लास ऑफ मुस्लिम सोसाइटी', *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* 45(34)।

खालिदी (2006) *मेडिवल एंड कोलोनिअल इन इंडिया इकॉनोमिक,* हरियाणा थ्री एस्सेकलेक्टिव ।

मंडल, बी.सी. (2012) 'सोशिओ-इकोनॉमिक पोजीशन ऑफ मुस्लिम एंड क्वेश्चन ऑफ रिजर्वेशन', *वाइस ऑफ दलित जर्नल,* 5(2)।

नजीरुद्दीन (2012). 'मुस्लिम माइनोरिटी एक्सक्लूजन एंड डेवलपमेंट इश्यूज : नीड फॉर इंक्लूसिव पालिसी', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टी डिसप्लिनरिय रिसर्च,* 2(1), 1-8.

रंगनाथ मिश्र कमेटी की रिपोर्ट (2007). नेशनल कमीशन फॉर रिलीजियस एंड लिंगविस्टिक माइनॉरिटीज, पृष्ठ 31.

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण 61वे राउंड (2004-05) एम्प्लॉयमेंट एंड अन एम्प्लॉयमेंट सिचुएशन अमोंग सोशल ग्रुप इन इंडिया, पृष्ठ 127

सिकंद, योगेंद (2005) मुस्लिम दलित ओंद ओबीसी कांफ्रेंस : ए रिपोर्ट द मिली गजट नवम्बर 30

सेन्सस ऑफ इंडिया (2011). प्रोविजनल पापुलेशन सीरीज 1, अध्याय 6 स्टेट ऑफ लिटरेसी, स्टेटमेंट 20 लिटरेसी रेट इन इंडिया, ऑफिस ऑफ द रजिस्ट्रार - सेन्सस कमिश्नर, इंडिया पब्लिशर्स, पृष्ठ 102.

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट (2006). प्राइम मिनिस्टर हाई-लेवल कमेटी कैबिनेट सेक्रेटेरिएट गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, पृष्ठ 84.

थियोडोर, पी. राइट (1964) 'मुस्लिम विधानमंडल भारत में : एक अल्पसंख्यक अभिजात वर्ग की प्रोफाइल', *एशियन स्टडीज*।

वर्मा, ए.के . (2012). 'मुस्लिम रिसर्जेन्स इन अर्बन लोकल बॉडीज ऑफ उत्तर प्रदेश', *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 47(40), 30-31.

यादव, के.पी. (2013), 'सिचुएशन सोशल जस्टिस इन द इंडियन पोलिटिकल प्रोसेस', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस,* वाल्यूम 23, इश्यु 09 ।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 187-196)
UGC-CARE (Group-I)

विकास पर पुनर्विचार : पश्चिमी बनाम भारतीय परम्परा

रेनू* एवं सार्तिक बाघ†

वैश्विक स्तर पर अधिकांश देश विकास को मापने के लिए जीडीपी-आधारित मॉडल का उपयोग करते हैं। लेकिन विकास का अर्थ केवल आर्थिक विकास है या कुछ और, यह वाद-विवाद का विषय बना हुआ है। विश्व को अनेक पर्यावरणीय समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जिसका मुख्य कारण विकास के तरीके हैं। भारत भी विकास के पश्चिमी मॉडल की ओर तीव्रता से अग्रसर हो रहा है तथा भारतीय परंपराओं को पीछे छोड़ते जा रहा हैं। इसलिए आवश्यक है कि हम पुन: भारतीय परंपराओं के अंतर्गत विकास के अर्थ को समझे तथा उसे पर अमल करें। विकास के मानक क्या हैं? भारतीय और पश्चिमी परंपरा में विकास का क्या अर्थ है? तथा यह एक दूसरे से कैसे भिन्न? इन सभी सवालों पर इस लेख में विस्तार से चर्चा की गई है।

बीज शब्द - विकास, भारतीय सभ्यता, सतत विकास, वृद्धि, आर्थिक विकास, पर्यावरण एवं परंपरा।

*शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.).
E-mail: renugautam1547@gmail.com
†प्रोफेसर, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.).
E-mail: sartikboi@yahoo.co.in

प्रस्तावना

समकालीन समय में, अधिकांश राष्ट्र विकास को वृद्धि और आर्थिक विकास के रूप में वर्णित करते हैं। लेकिन विकास का अर्थ केवल आर्थिक वृद्धि ही नहीं है, विकास के सामाजिक कारक भी हैं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा आदि। यह सभी कारक मानव विकास को निर्धारित करते हैं, जैसे स्वास्थ्य, मनुष्य और राष्ट्र के शारीरिक और मानसिक विकास को निर्धारित करता है तथा शिक्षा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मानसिक विकास में मदद करती है। चीन, जापान, स्वीडन, ब्रिटेन और नॉर्वे जैसे कई विकसित देश स्वास्थ्य और शिक्षा में बड़ी मात्रा में सकल घरेलू उत्पाद का निवेश करते हैं।

इस लेख में सर्वप्रथम विकास के अर्थ को परिभाषित करेंगे, इसके बाद विकास की पश्चिमी अवधारणा पर चर्चा करेंगे तथा उसके कारण वर्तमान विश्व में हो रही सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का विस्तार से वर्णन करेंगे। इन समस्याओं के समाधान के रूप में विकास के भारतीय पारंपरिक मॉडल की चर्चा करेंगे।

विकास का अर्थ

विकास की सैद्धांतिक अवधारणा को अमेरिकी सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा 'आधुनिकीकरण' के रूप में पुनर्कल्पित किया था, जिसे उपनिवेशवाद के बाद के क्षेत्रों में अमेरिकी आर्थिक सहायता और सैन्य हस्तक्षेप का मार्गदर्शन करने में मदद करने के लिए एक सार्वभौमिक 'प्रगतिशील परिवर्तन का एकमात्र मार्ग' के रूप में समझा गया था (गिलमैन, 2003)। पश्चिमी विचारधारा के विरोध में सोवियत संघ एवं चीन में साम्यवादी विचारधारा का विस्तार होने लगा। जिसका परिणाम 1945 के बाद शीत युद्ध के प्रारंभ के रूप में सामने आया (फ्रीडमैन, 2000)। 1970 के दशक का तेल संकट, विकासशील बाजारों में कमोडिटी कार्टेल के उत्थान और पतन के साथ, विकासशील देशों की ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई, जिससे विश्व मुद्रा कोष के संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम को शामिल करने की मांग की गई (एल-ओजेली, और यंग, 2010)। 1980 के दशक की शुरुआत में, निर्यात-उन्मुख विनिर्माण और अमेरिकी तथा जापानी बाजारों तक लक्षित पहुंच के माध्यम से, संकट ने पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं को तेजी से विकसित होने का अवसर प्रदान किया। इसने एक नया 'विकास-अभिविन्यास' मॉडल पेश किया (यंग, 2010)। 1989 में बर्लिन की दीवार के गिरने और उसके बाद सोवियत संघ के पतन ने पश्चिमी विकास क्षेत्रों में विजयी युग की शुरुआत की। यह नव-उदारवादी 'वाशिंगटन आम सहमति' में परिलक्षित हुई, जो मोटे तौर पर सामाजिक सरोकारों की कीमत पर आर्थिक विकास पर केंद्रित थी (महोन, 2017)।

परन्तु विकास का अर्थ आर्थिक वृद्धि और विकास से कई व्यापक हैं जो मानवीय विकास के सभी पहलुओं पर आधारित है। वास्तविक मानवीय विकास अधिक अमूर्त कारकों से संबंधित है जो लोगों के जीवन में परिवर्तन की मात्रा के साथ-साथ परिवर्तन की गुणवत्ता से भी संबंधित हैं। 'जॉन क्लार्क' ने 1991 में अपनी पुस्तक 'डेमोक्रेटाइजिंग डेवलपमेंट' में स्पष्ट

रूप से व्यक्त किया है : "विकास कोई वस्तु नहीं है जिसे जीएनपी आंकड़ों द्वारा तौला या मापा जाए, यह परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जो लोगों को अपनी नियति की जिम्मेदारी लेने और अपनी पूरी क्षमता का एहसास कराने में सक्षम बनाती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लोगों में आवश्यक आत्मविश्वास, कौशल, संपत्ति और स्वतंत्रता का निर्माण करना आवश्यक है" (क्लार्क, 1991, 36)।

हाल के विकास सिद्धांत और व्यवहार में प्रमुख रुझानों में से एक विकास एजेंडे के साथ मानवाधिकार और पर्यावरण एजेंडा का विलय रहा है। यह विलय मानता है कि विकास को साधारण आर्थिक विश्लेषण से परे महत्व दिया जाना चाहिए, जिसमें गरीबी, अधिकारों, स्वतंत्रता, संस्कृति, गरिमा और पर्यावरण की हानि को भी शामिल होना चाहिए। 1990 में यूएनडीपी के 'मानव विकास सूचकांक' (एचडीआई) का निर्माण यह पहचानने का एक और साहसिक प्रयास था कि मानव विकास अर्थशास्त्र से कहीं अधिक है, और यह मानव जीवन की गुणवत्ता के साथ-साथ आर्थिक विकास की मात्रा के बारे में है (यूएनडीपी, 1993)। यूरोपीय, उत्तरी अमेरिकी और दक्षिण-पूर्व एशियाई समाजों में अत्यधिक शहरीकरण, प्रदूषण, पर्यावरणीय गिरावट, अनुचित व्यापार प्रथाएं और आर्थिक विस्तारवाद के कुविकास का उतना ही रूप और कारण है जितना कि कुछ अफ्रीकी, एशियाई और लैटिन अमेरिकी समाज देशों में भूख, संघर्ष और गरीबी (स्लिम, 1995, 146)।

प्रत्येक समाज अमीर-गरीब और उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम विकास की समस्या से जूझ रहा है, परन्तु वह इस बात को भूल जाते है कि निष्पक्ष और टिकाऊ विकास एक वैश्विक मुद्दा है। पिछले कुछ वर्षों में विश्व बैंक के विश्व-विकास संकेतकों द्वारा दर्शाए जाने वाले पारंपरिक आर्थिक संकेतकों (उत्पादन, आय, उपभोग, ऋण, आदि) से आगे बढ़कर संकेतकों की एक नई विस्तृत श्रृंखला की ओर बढ़ने का एक बड़ा प्रयास देखा गया है, जो विकास के व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय आयामों पर भी बल देता है। समकालीन विकास के मॉडल की समस्याओं को देखते हुए इसके विकल्प या सुधार की दिशा में कदम उठाना अति आवश्यक है।

विकास की पश्चिमी अवधारणा का आधिपत्य

शीत युद्ध की समाप्ति के साथ, पश्चिमी आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण वैश्विक परिदृश्य पर हावी हो गया है। जिसने राजनीतिक और आर्थिक विकास के दो मुख्य मॉडल निर्धारित किए, जो अंतरराष्ट्रीय नीति एवं अर्थव्यवस्था को निर्देशित करता है। इसका आदर्श वाक्य 'सुशासन' है, जिसके आर्थिक और राजनीतिक दोनों पहलू हैं। आर्थिक सुशासन का तात्पर्य मुक्त बाजारों और एक सीमित एवं सक्षम राज्य की धारणा से है। राजनीतिक सुशासन मानवाधिकारों और एक जीवंत समाज के विकास के बारे में है। पश्चिम की वर्तमान सत्तारूढ़ आर्थिक विचारधारा, जिसे अक्सर पूंजीवाद कहा जाता है, राज्य की अर्थव्यवस्था में

न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ बाजार शक्तियों के मुक्त खेल में विश्वास करती है, जो आर्थिक वृद्धि, उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण आदि पर बल देता है।

2007-2009 के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिमी यूरोपीय देशों को आर्थिक मंदी का सामना करना पड़ा जिसने इसकी सीमाओं को विश्व के सामने ला कर रख दिया। विश्व को गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं जैसे बढ़ती असमानता, बेरोजगारी और पारिस्थितिक संकट का सामना करना पड़ रहा है। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री 'जोसेफ स्टिग्लिट्ज' ने देखा कि जो चल रहा है उसे 'नैतिक अभाव' के रूप में वर्णित किया जा सकता है (स्टिग्लिट्ज, 2012)। विकास कि पश्चिमी अवधारणा ने विकास के नैतिक और मानवीय पहलुओं को पीछे छोड़ दिया, जिसका प्रभाव वैश्विक रूप से देखा जा सकता है।

भारत और विश्व पर समकालीन विकास मॉडल का प्रभाव

मुक्त बाजार की वर्तमान विचारधारा ने पूरे विश्व में गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ पैदा कर दी हैं, जो निम्नलिखित हैं -

पारिस्थितिक विनाश - मानवीय गतिविधियों का व्यापक विस्तार पर्यावरणीय स्थिरता के लिए विनाशकारी साबित हो रहा है। मुख्य रूप से ऊर्जा स्रोत के रूप में जीवाश्म ईंधन के उपयोग के कारण कार्बन-डाइऑक्साइड उत्सर्जन से ग्रह गर्म हो रहा है, जिससे जलवायु बाधित हो रही है। निरंकुश विकास ने पारिस्थितिकी को नुकसान पहुंचाया है, जिससे लोगों का जीवन कठिन हो गया है और उन लोगों को भूमि और प्राकृतिक संपदा से वंचित होना पड़ा है जो अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह से भूमि और जंगलों पर निर्भर हैं। उत्तराखंड में चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन, तमिलनाडु में कुदाकलम परमाणु ऊर्जा परियोजना और ओडिशा में नियामगिरि पहाड़ियों के खिलाफ विरोध आंदोलन, ये सभी सरकार की वर्तमान आर्थिक नीति के प्रति लोगों के गहरे असंतोष के प्रतिबिंब हैं। भारत के प्राचीन धर्मग्रंथ, वेदों ने पृथ्वी को जीवित माता एवं भूमाता माना और इसके कई श्लोक धरती माता की महिमा का बखान करते हैं। पारिस्थितिक संकट की समस्या पर काबू पाने के लिए हमें उपभोग-उन्मुख जीवनशैली को बदलने की जरूरत है। भारत का प्राचीन ज्ञान 'सादा जीवन और उच्च विचार' के गुण की प्रशंसा करता था।

समाज में असमानता - वर्तमान विकास का मॉडल लाभ के असमान वितरण पर आधारित है। ऑक्सफैम के अध्ययन में भारत को दुनिया के सबसे असमान देशों में से एक पाया गया। इसमें कहा गया है कि 2015 में सबसे अमीर 1 प्रतिशत भारतीयों के पास 58 प्रतिशत संपत्ति थी, जबकि आधे गरीब लोगों के पास सिर्फ 2 प्रतिशत थी। 2000 में, सबसे अमीर 1 प्रतिशत भारतीयों के पास 37 प्रतिशत संपत्ति थी। फोर्ब्स के अनुसार, भारत में 100 से अधिक अरबपति हैं जो देश की जीडीपी का एक-चौथाई हिस्सा हैं। जिससे सामाजिक अस्थिरता का खतरा पैदा हो जाता है। (माथुर, 2019, 32)

उपभोक्तावादी संस्कृति - उपभोक्तावाद आधुनिक विकासोन्मुख आर्थिक मॉडल का एक स्तंभ है। उपभोक्तावाद लोगों को उच्च उपभोग स्तर को खुशहाली और सफलता से जोड़ने के लिए प्रेरित करता है। पश्चिम की नकल पर भारत में उपभोक्तावाद तेजी से फैल रहा है। आलीशान घरों और लक्जरी कारों का अधिग्रहण, पांच सितारा होटलों में जाने और विदेश में छुट्टियां बिताने की संस्कृति, और विवाह और अन्य सामाजिक समारोहों में दिखावटी प्रदर्शन सभी तेजी से फैल रही उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रतीक हैं। हालाँकि, उपभोक्तावाद की अपनी लागत है जिसमें अधिक उपभोग करने के लिए तनावपूर्ण प्रेरणा शामिल है, भले ही जीवन की गुणवत्ता में गिरावट हो।

बेरोजगारी - आज दुनिया के सामने सबसे गंभीर समस्याओं में से एक बेरोजगारी है, खासकर शिक्षित युवाओं की। पश्चिमी देश, जहां पूर्ण रोजगार सामाजिक नीति का मुख्य आधार है, 2008 की आर्थिक मंदी से पूरी तरह उबर नहीं पाए हैं। वर्तमान में, यूरोपीय संघ (ईयू) देशों में औसत बेरोजगारी दर 10 प्रतिशत से अधिक है। ग्रीस और स्पेन जैसे कुछ देशों में यह 20 प्रतिशत से अधिक है जिससे उनकी सामाजिक स्थिरता को खतरा है। इस व्यापक बेरोजगारी में दो कारकों ने योगदान दिया है। बड़ी कंपनियाँ और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, जो वैश्विक उत्पादन और व्यापार का एक बड़ा हिस्सा रखती हैं, प्रतिस्पर्धी दबाव और उन्नत प्रौद्योगिकी के कारण लागत में लगातार कटौती करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप श्रम की कमी होती है। दूसरा, डिजिटल क्रांति के कारण उत्पादन में श्रम की हिस्सेदारी कम हो गई है और वैश्विक नौकरी बाजार पूरी तरह से बाधित हो गया है। तकनीकी क्रांति का प्रभाव आर्थिक विकास के पारंपरिक पैटर्न को बदल रहा है, और गरीब देश अब अपने ग्रामीण क्षेत्रों से श्रम को अवशोषित करने के लिए बढ़ते औद्योगिक क्षेत्र पर भरोसा नहीं कर सकते हैं। इसलिए विकास के परंपरागत मॉडल पर गंभीरता से दोबारा विचार करने की जरूरत है।

कृषि - अधिकतर विकासशील और अल्प विकसित देशों में कृषि अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख क्षेत्र रहा है। लेकिन विकास की पश्चिमी अवधारणा का विकास होने के कारण औद्योगिक तथा सेवा क्षेत्र पर अत्यधिक बल दिया गया तथा कृषि क्षेत्र की अवहेलना की गई और विकासशील देशों के साथ दोहरा व्यवहार किया गया। जैसा हम भारत के संदर्भ में देख सकते हैं, विदेशी कंपनियों द्वारा आयातित बीजों और कीटनाशकों की उच्च लागत और पश्चिमी और अन्य देशों द्वारा भारतीय बाजार में भारी सब्सिडी वाले कृषि उत्पादों के कारण किसानों को दोनों तरफ से परेशानी हो रही है। 1995 में डब्ल्यूटीओ के गठन के साथ, कृषि को इसके दायरे में लाया गया। यह समझौता विकसित देशों के पक्ष में था, जो अपने ही किसानों को अरबों डॉलर की सब्सिडी देते हैं, और उन्हें चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने की कोई बाध्यता नहीं है। लेकिन यदि किसी विकासशील देश द्वारा सामाजिक सुरक्षा उपाय के रूप में खाद्यान्न पर मामूली सब्सिडी दी जाती है, तो इसे 'व्यापार-विकृति' माना जाता है। डब्ल्यूटीओ भारत की सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) पर आपत्ति जताता रहा है, जो आबादी के गरीब तबके को सस्ता अनाज मुहैया कराती है वह इसे 'अनुचित' करार देती है

और चाहती है कि इसे खत्म किया जाए। दूसरी ओर, संयुक्त राज्य अमेरिका मक्का, गेहूं, कपास और सोयाबीन जैसी फसलों के लिए और यूरोपीय संघ दूध, मक्खन और चीनी के लिए भारी सब्सिडी देता है, जिसे 'आय सब्सिडी' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इन उत्पादों को विकासशील देशों में डंप कर दिया जाता है, जो कीमतों को कम करते हैं, आजीविका को कमजोर करते हैं और उनकी अर्थव्यवस्थाओं को नष्ट कर देते हैं।

विकास के पश्चिमी मॉडल की निम्नलिखित समस्याओं और चुनौतियों के परिणाम स्वरूप भी विकासशील और अल्पविकसित देश विकास के परंपरागत मॉडल को छोड़ते हुए इसी मॉडल की ओर अग्रसर हो रहे हैं, तथा अपनी वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के सामने विभिन्न चुनौतियां खड़ी कर रहे हैं।

मध्य मार्ग की तलाश

दुनिया आज एक 'सही विकास' मॉडल की तलाश में है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, मुक्त-बाजार अर्थव्यवस्था मॉडल दुनिया के सामने आने वाली सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को हल करने में असमर्थ है। पूर्ववर्ती सोवियत संघ प्रकार का समाजवादी अर्थव्यवस्था मॉडल पहले ही ध्वस्त हो चुका है। क्या गांधीवादी विचारधारा और उसका समाजवाद का दर्शन हमें कुछ दिशानिर्देश प्रदान करता है?

गांधीवादी विकल्प - मौजूदा मुक्त-अर्थव्यवस्था विकास मॉडल नैतिकता और सामाजिक न्याय के मुद्दों की अनदेखी करता है। महात्मा गांधी ने कहा था कि अर्थशास्त्र को नैतिकता से अलग नहीं किया जा सकता। गांधीवादी विचार मौजूदा आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए कुछ मूल्यवान दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। गांधी जी के आर्थिक दर्शन का मूल सिद्धांत व्यक्तिगत गरिमा और सर्वोदय (सबसे गरीब लोगों का कल्याण) है। गांधीजी का मानना था कि एक व्यक्ति काम करके और अपनी रोटी और आजीविका अर्जित करके अपनी गरिमा अर्जित करता है, क्योंकि काम आत्म-निर्वाह और आत्म-अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। अत: आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार व्यवस्थित होनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को लाभकारी रोजगार प्राप्त करने का अवसर मिले। गांधीजी विवेकहीन औद्योगीकीकरण के विरोधी थे और कृषि, कुटीर और लघु उद्योगों को गौरवपूर्ण स्थान देकर ग्रामीण-केंद्रित विकास का समर्थन करते थे, क्योंकि भारत जैसे श्रम-प्रधान देश में बेरोजगारी की समस्या को हल करने का यही एकमात्र तरीका था। गांधीजी औद्योगीकीकरण और आर्थिक वैश्वीकरण के पूरी तरह से विरोधी थे, क्योंकि वे स्थानीय श्रमिकों को विस्थापित करते हैं, और आर्थिक आत्मनिर्भरता के सिद्धांत के खिलाफ हैं। गांधीजी ने विकेंद्रीकृत विकास मॉडल का समर्थन किया क्योंकि इससे लाभ समाज के सबसे निचले पायदान तक पहुंचने में मदद मिलेगी और समानता और सामाजिक सद्‌भाव को बढ़ावा मिलेगा। गांधीजी विशिष्ट उपभोग और विलासितापूर्ण जीवन के विरोधी थे। वह चाहते थे कि लोगों की न्यूनतम आवश्यकताएं हों और वे सादा जीवन जिएं।

वर्तमान दुनिया को देखते हुए, जब पर्यावरण का क्षरण सबसे गंभीर समस्या है, अगर ग्रह को जीवित रखना है तो लोगों के पास अपनी जीवनशैली बदलने और खपत कम करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। यदि गांधीवादी विचार को उसकी सच्ची भावना से समझा जाए, तो यह बेरोजगारी, असमानता और पर्यावरणीय गिरावट की गंभीर समस्याओं का समाधान प्रदान करता है, जिसका सामना वर्तमान विश्व कर रहा है।

विकास का नया मॉडल - आज भारत को विकास के एक ऐसे मॉडल की जरूरत है जो मुक्त बाजार और समाजवादी विचारधारा, बाजार और राज्य का विवेकपूर्ण मिश्रण हो और जन-केंद्रित सेवाएं प्रदान करने के लिए सामंजस्य और तालमेल के साथ काम करे। इसका मूल रूप से अर्थ है आर्थिक लक्ष्यों और सामाजिक लक्ष्यों के बीच संतुलन बनाना और प्राचीन काल से हमारे आध्यात्मिक गुरुओं द्वारा वकालत किए गए मध्य मार्ग का अनुसरण करना। 'गौतम बुद्ध' ने मध्य मार्ग की वकालत की थी, जहां उन्होंने एक सामंजस्यपूर्ण, संतुलित जीवन की अवधारणा की बात की थी, जो आत्म-भोग और पूर्ण संयम के दो चरम सीमाओं के बीच चलती है, जो पीड़ा से परे है। भगवद गीता जीवन और हमारी सभी गतिविधियों में संयम और संतुलन के गुण की प्रशंसा करती है।

विकास का नैतिक और मानवीय आधार

वेंस मार्टिन, जो बिल्ड फाउंडेशन के अध्यक्ष रहे, आइडीआर के साथ साक्षात्कार में, विकास के मानवीय और संस्कृति-आधारित मॉडल के महत्व पर चर्चा करते हैं। "विकास का एक पश्चिमी प्रतिमान है, जिसे मेरा मानना है कि 'आधुनिक' भारत ने स्वीकार कर लिया है। जब मैं 1970 के दशक में पहली बार भारत आया था, तब ऐसी स्थिति नहीं थी, जब वहां गांधीवादी नैतिकता प्रबल थी। मेरा मानना है कि भारत उस नैतिकता से भटक गया है, भले ही वह इस पर व्यापार करना पसंद करता है। लेकिन बेहतर विकास मॉडल बनाने के लिए भारत के पास सीखने के लिए बहुत कुछ है। विकास का पश्चिमी प्रतिमान लोगों या संस्कृति-आधारित नहीं है, यह जीडीपी-आधारित है और आम तौर पर संस्कृति-विरोधी है" (केजरीवाल और शेट्टी, 2019)

वर्तमान में अधिकांश वैश्विक समस्याएं विकास के पश्चिमी भौतिकवादी मॉडल का आंख मूंदकर अनुसरण करने के कारण हैं, जहां सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि को किसी देश के विकास और प्रगति का मुख्य उपाय माना जाता है, चाहे इसकी आर्थिक और सामाजिक लागत कुछ भी हो। यह विचारधारा इस आधार पर आधारित है कि मनुष्य की असीमित इच्छाएँ हैं और उन इच्छाओं को पूरा करने के लिए पैसा कमाना उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। यह दृष्टिकोण भारत के आध्यात्मिक लोकाचार के बिल्कुल विपरीत है। 'श्री अरबिंदो' ने इस बात पर जोर दिया था कि आध्यात्मिकता भारतीय मन की मुख्य कुंजी है, और जीवन को केवल बाह्यताओं की शक्ति में नहीं जीया जा सकता है। भारतीय संस्कृति मानवतावादी मूल्यों में अंतर्निहित है और इसका लक्ष्य प्रत्येक मनुष्य का कल्याण और खुशी है। इसकी एक

लौकिक दृष्टि है जहां अभिविन्यास 'कल्याण', 'सामाजिक भलाई' और 'अधिकतम की भलाई' की ओर है। यह वसुधैव कुटुंबकम (दुनिया एक परिवार है) और सर्वे भवन्तु सुखिन: (सभी को खुशी) के कथन में परिलक्षित होता है।

यह समझने की जरूरत है कि मुक्त बाजार और वैश्वीकरण का विचार वसुधैव कुटुंबकम की भारतीय दार्शनिक अवधारणा के समान नहीं है। वैश्वीकरण पश्चिम की औद्योगिक और तकनीकी सभ्यता का परिणाम है, जो वस्तुओं और सेवाओं के अधिक से अधिक उत्पादन और उपभोग से धन कमाने में विश्वास करती है। हालाँकि इसने विश्व व्यापार और वाणिज्य को फलने-फूलने और आर्थिक बेहतरी का मार्ग प्रशस्त किया है, परन्तु इसकी प्रकृति भौतिकवादी और उपभोक्तावादी है, और इसकी प्रेरक शक्ति मुनाफाखोरी और स्वार्थ है। दूसरी ओर, वसुधैव कुटुंबकम मूलत: एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अवधारणा है। यह पूरी दुनिया को एक परिवार के रूप में देखती है जिसमें प्रेम, सद्भाव, सहयोग और आपसी समर्थन बुनियादी तत्व हैं। यह असीमित उपभोक्तावाद को खारिज करती है। इसका दर्शन स्व-नियंत्रित नियंत्रण, संसाधनों के न्यायसंगत बंटवारे और समाज के प्रत्येक सदस्य की देखभाल में निहित है। साथी मनुष्यों की सेवा और आत्मत्याग भारत की सांस्कृतिक विरासत की कुंजी है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, भारतीय संस्कृति का सार सेवा और त्याग है। एक सफल विकास मॉडल देश के सांस्कृतिक लोकाचार के अनुरूप होना चाहिए। हमारे विकास दर्शन को एक खुशहाल, स्वस्थ और समृद्ध समाज के निर्माण के रूप में पुन: परिभाषित किया जाना चाहिए।

विकास के उद्देश्यों में गरीबी उन्मूलन, आय और धन का समान वितरण, लोगों की आर्थिक और सामाजिक भलाई, मानव क्षमता का विकास एवं पारिस्थितिक स्थिरता को शामिल करना होगा तथा इसके लिए भारत को सबके लिए सम्मानजनक रोजगार, गतिशील कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था, आर्थिक और सामाजिक असमानता को समाप्त करना, शिक्षा के माध्यम से कार्यबल की क्षमता का विकास करना और सार्वभौमिक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली के माध्यम से सभी के लिए स्वास्थ्य सुविधा की उपलब्धता आदि की दिशा में कदम उठाने होंगे।

मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में धर्म

भारत के प्राचीन दर्शन मनुष्य के विकास पर गहराई से विचार करते है और जीवन के चार लक्ष्यों को मान्यता देते है जिन्हें पुरुषार्थ-धर्म (धार्मिक जीवन), अर्थ (धन), काम (सांसारिक सुख) और मोक्ष (मोक्ष) कहा जाता है। ये लक्ष्य सांसारिक लक्ष्यों को आध्यात्मिक लक्ष्यों के साथ मिलाते हैं। एक सामान्य मनुष्य को तीन लक्ष्यों का पालन करना होता है - धर्म, अर्थ और काम, जिसे त्रिवर्ग कहा जाता है। त्रिवर्ग का सिद्धांत कहता है कि हालांकि पैसा कमाना, आजीविका में संलग्न होना और जीवन और मनोरंजक गतिविधियों का आनंद लेना पूरी तरह से वैध है, लेकिन उन्हें धर्म के बंधन में होना चाहिए (माथुर, 2019, 43)। धर्म वह

सिद्धांत है (अक्सर लोकप्रिय रूप से धर्म के साथ भ्रमित होता है), जो दुनिया की प्रगति और कल्याण को बनाए रखता है और व्यक्ति के साथ-साथ राज्य की ओर से हर प्रकार के धार्मिक आचरण को अपनाता है।

कुछ पश्चिमी दार्शनिकों ने विचार व्यक्त किया है कि भारतीय संस्कृति जीवन को नकारने वाली है और इस सांसारिक दुनिया को भ्रम मानती है, जो उनके आर्थिक विकास की कमी और पिछड़ेपन के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है। यह दृष्टिकोण भारतीय दर्शन की गलत समझ पर आधारित है। व्यक्तिगत जीवन और राजकाज दोनों में धन का महत्व भारत में प्राचीन काल से ही पहचाना जाता था। 'कौटिल्य' ने कहा था- 'सुखस्य मूलं धर्म, धर्मस्य मूलमार्थ, अर्थस्य मूलं राज्यम्'। धर्म (धार्मिकता) सुख का मूल है, धन ही धर्म का मूल है, राज्य धन का मूल है (माथुर, 2019, 44)। यदि इसे मानव जाति की आर्थिक बेहतरी और समृद्धि के विरुद्ध समझा जाता है तो यह भारत के सांस्कृतिक मूल्यों की गलतफहमी होगी। भारतीय विश्व दृष्टिकोण यह है कि पैसा कमाना - (अर्थ) और जीवन के सुखों का आनंद लेना (काम) वांछनीय गतिविधियाँ हैं, लेकिन उन्हें धर्म द्वारा विनियमित किया जाना चाहिए। यह नैतिक दिशानिर्देश न केवल व्यक्ति के लिए है बल्कि राज्य के लिए भी है जिसे राजधर्म कहा जाता है।

भारत की संस्कृति मानती है कि धन कमाना महत्वपूर्ण है, लेकिन यह मानव प्रयास का एकमात्र उद्देश्य नहीं हो सकता है और इसे धर्म के बंधन में होना चाहिए। विकास की अपनी खोज में, भारत को अपने प्राचीन दर्शन को नहीं छोड़ना चाहिए, जो संतोष, शांति और आत्म-संतुष्टि का जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह तभी संभव है जब हम एक खुशहाल, स्वस्थ और समृद्ध समाज के निर्माण के रूप में अपने राष्ट्रीय लक्ष्य को फिर से परिभाषित करें। इसलिए, हमें विकास के एक ऐसे मॉडल की दिशा में काम करना चाहिए जो भौतिक और आध्यात्मिक लक्ष्यों के बीच संतुलन बनाए रखे और देश के प्रत्येक नागरिक को आर्थिक बेहतरी और सामाजिक न्याय प्रदान करे।

निष्कर्ष

विकास का एक मॉडल जो भौतिक प्रगति और आर्थिक विकास को लोगों के कल्याण का एकमात्र उपाय मानता है वह दोषपूर्ण है और भारत के साथ-साथ दुनिया में हमारे सामने आने वाली अधिकांश समस्याओं के लिए जिम्मेदार है। आज भारत में, लोगों के सामाजिक और आर्थिक कल्याण के अधिकांश घटक, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और एक स्वस्थ कृषि और औद्योगिक आधार, निराशाजनक स्थिति में हैं, जो दर्शाता है कि हमारी मौजूदा नीति विफल हो गई है। इसके लिए हमारी विकास नीति पर मौलिक पुनर्विचार की आवश्यकता है। हमारे सांस्कृतिक और सभ्यतागत लोकाचार पर आधारित विकास के एक अधिक मानव-केंद्रित मॉडल को अपनाने की आवश्यकता है, जो नैतिक-आध्यात्मिक हो और मानव कल्याण, सामाजिक भलाई और लोगों की भलाई की समस्या से गहराई से

संबंधित हो। एक खुशहाल, स्वस्थ और समृद्ध समाज के निर्माण के रूप में हमारे विकास लक्ष्यों को फिर से परिभाषित करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

एल-ओजेली, सी., और येउंग, एच.डब्ल्यू. सी. (सम्पा.). (2010) *ग्लोबलाइजिंग रीजनल डेवलपमेंट इन ईस्ट एशिया प्रोडक्शन नेटवर्क क्लस्टर एंड एंटरप्रेन्योरशिप,* यूके: रूटलेज.

क्लार्क, जे. (1991) *डेमोक्रेटिक डेवलपमेंट: द रोल ऑफ वॉलंटरी ऑर्गेनाइजेशन,* लंदन: अर्थस्कैन.

फ्रीडमैन, एल. (2000). *केनेडी वार : बर्लिन, क्यूबा, लाओस एंड वियतनाम,* न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

गिलमैन, एन. (2003). *मंड्रीज ऑफ द फ्यूचर: मॉडर्नाइजिंग थ्योरी इन कोल्ड वार अमेरिका,* बाल्टीमोर: जॉन्स हॉपकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस.

केजरीवाल, साहिल और शेट्टी, स्मरिनिता. 'द वेस्टर्न पैरडाइम् आफ डेवलपमेंट इस हर्टिंग इंडियाज एनवायरनमेंट मूवमेंट', *न्यूजलॉन्ड्री,* 18 दिसंबर, 2019.

महोन, आर. (2017). 'जेंडरिंग डेवलपमेंट: द ओईसीडीस डेवलपमेंट असिस्टेंट समिति, 1981-2000'. इन *द ओईसीडी एंड द इंटरनेशनल पॉलिटिकल इकोनॉमी साइंस* 1948 (पृष्ठ 335-356). चौम: पैल्ग्रेव मैकमिलन.

माथुर, बी.पी. (2019). 'रिथिंकिंग डेवलपमेंट: इंडियाज कल्चरल एथिक्स एज फाउंडेशन', *भारतीय लोक प्रशासन पत्रिका,* वॉल्यूम 65, नंबर 1.

स्लिम, ह्यूगो (1995). व्हाट इस डेवलपमेंट?, टेलर और फ्रांसिस. वॉल्यूम 5, नंबर 2.

स्टिग्लिट्ज, जे. ई. (2012). *द प्राइस ऑफ इनिक्वालिटी* (पृष्ठ iv-viii). लंदन: एलन लेन.

यूएनडीपी (1993). *द ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट,* ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 2, दिसम्बर 2024, पृ. 197-208)
UGC-CARE (Group-I)

छत्तीसगढ़ राज्य की विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति परिवारों के जोत का आकार एवं मासिक आय स्तर का भौगोलिक विश्लेषण

शिवेन्द्र बहादुर*

भुंजिया जनजाति छत्तीसगढ़ राज्य की विशेष पिछड़ी जनजाति है। इसीलिए इनकी आर्थिक स्थिति का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। प्रस्तुत शोध पत्र में भुंजिया जनजाति परिवारों की आर्थिक दशा के निर्धारक कारक यथा- जोत के आकार एवं मासिक आय स्तर का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। शोधपत्र पूर्णत: प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन हेतु गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखण्ड से कुल 143 भुंजिया जनजाति परिवारों की आर्थिक संरचना के अंतर्गत उनके जोत के आकार एवं मासिक आय स्तर से संबंधित सूचनाएँ अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से एकत्रित की गई हैं।

बीज शब्द - विशेष पिछड़ी जनजाति, भुंजिया जनजाति, आर्थिक दशा, जोत का आकार, आय स्तर।

*अतिथि व्याख्याता भूगोल, बाबू पंढरी राव कृदत्त, शासकीय महाविद्यालय, सिलौटी, जिला धमतरी (छत्तीसगढ़). **E-mail: drshivendra1993@gmail.com**

प्रस्तावना

छत्तीसगढ़ राज्य देश का एक अनुसूचित जनजातीय बाहुल्य राज्य है। छत्तीसगढ़ राज्य की सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिदृश्य के निर्माण में अनुसूचित जनजातियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संविधान निर्माताओं ने इस तथ्य पर ध्यान केन्द्रित किया कि देश में कुछ समुदाय आदिम कृषि पद्धतियों, बुनियादी सुविधाओं के अभाव तथा भौगोलिक अलगाव के कारण सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन से पीड़ित हैं। अत: इन समुदायों की मूलभूत समस्याओं के समाधान के लिए संवैधानिक प्रावधान किए गए। भारत के संविधान के अनुच्छेद 366(25) में निर्धारित किया गया कि अनुसूचित जनजातियों का अर्थ ऐसी जनजातियाँ या जनजातीय समुदाय हैं जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत सूचीबद्ध कर अनुसूचित जनजाति माना गया है। वर्तमान में देश के विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में निवासरत् 705 से अधिक जनजातियाँ (एक से अधिक राज्यों में अतिव्यापी समुदायों के साथ) इस सूची में सम्मिलित हैं। यह वे समुदाय हैं जो देश में आदिकाल से निवासरत हैं। जनसामान्य इन्हें आदिवासी, वनवासी, आदिम जाति, जनजाति या वन्यजाति के रूप में जानते हैं (वैष्णव, 2018)। अनुसूचित जनजाति वे समुदाय हैं जो दुर्गम वनाच्छादित तथा पहाड़ी क्षेत्रों में निवासरत होने के कारण आज भी विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ सके हैं। देश के स्वतंत्रता के 25 वर्ष बाद भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जनजातियों के विकास की समीक्षा की गई, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि विकासशील एवं अर्ध्द-विकसित अनुसूचित जनजाति समूह शासन की विभिन्न योजनाओं का लाभ प्राप्त कर विकास के पथ पर अग्रसर हो रही हैं परंतु कुछ ऐसी भी अनुसूचित जनजातीय समुदाय हैं जो विकास की दृष्टि से कोसों दूर हैं तथा उन्हें शासकीय योजनाओं का लाभ नहीं मिल पा रहा है। अत: भारत सरकार द्वारा पांचवीं पंचवर्षीय योजना अवधि (वर्ष 1974 से 1979) में कुछ महत्वपूर्ण मापदंड यथा- कृषि पूर्व की अर्थव्यवस्था, जनसंख्या स्थिर या घटती हुई, साक्षरता दर 2 प्रतिशत से कम एवं पृथक्करण के आधार पर देश की 75 जनजातीय समूह को आदिम जनजाति समूह/विशेष पिछड़ी जनजाति समुह (पार्टिकुलरली वलनेरेबल ट्राइबल ग्रुप्स) का दर्जा दिया गया तथा इनके सर्वांगीण विकास हेतु योजनाएँ तैयार की गई। इस प्रकार छत्तीसगढ़ राज्य की 42 अनुसूचित जनजातियों में से पाँच जनजातीय समुदायों (पहाड़ी कोरवा, बिरहोर, बैगा, कमार एवं अबूझमाड़िया) को विशेष पिछड़ी जनजाति की श्रेणी में रखा गया है। छत्तीसगढ़ शासन द्वारा राज्य की भुंजिया एवं पण्डो अनुसूचित जनजाति की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को भारत सरकार द्वारा घोषित विशेष पिछड़ी जनजाति के मापदंडों के अनुसार राज्य स्तर पर विशेष पिछड़ी जनजाति का दर्जा प्रदान किया गया है। छत्तीसगढ़ी में भुंज शब्द का अर्थ (आग में जल जाना) होता है। इस आधार पर किवदंती अनुसार आग में जल जाने के कारण इन्हें भुंजिया कहा जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध पत्र में छत्तीसगढ़ राज्य की विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति की सामाजिक-आर्थिक संरचना के अंतर्गत उनके जोत के आकार एवं मासिक आय स्तर का भौगोलिक विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के मुख्य उद्देश्य हैं - छत्तीसगढ़ राज्य की विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति परिवारों के जोत आकार का विश्लेषण करना; और विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति परिवारों की मासिक आय स्तर का विश्लेषण करना।

अध्ययन क्षेत्र

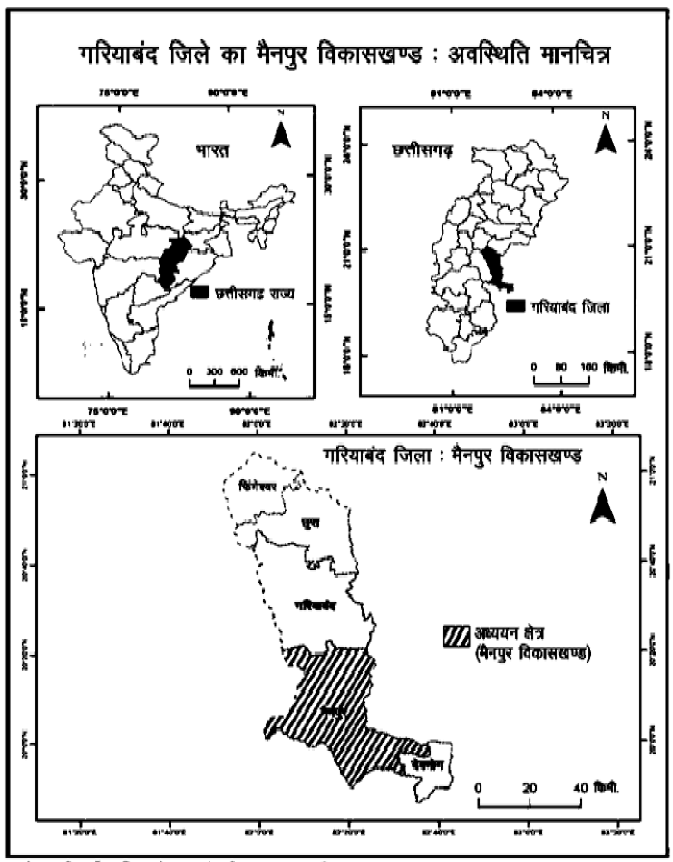

स्रोत: भारतीय सर्वेक्षण विभाग, देहरादून एवं छत्तीसगढ़ राज्य संदर्भ एटलस (विस्त), 2011

मानचित्र 1.1

विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति छत्तीसगढ़ राज्य के तीन जिलों क्रमशः गरियाबंद, महासमुंद एवं धमतरी जिले में निवासरत् है। यह जनजाति जहाँ गरियाबंद जिले के छुरा विकासखण्ड के 27 ग्रामों, गरियाबंद विकासखण्ड के 33 ग्रामों, मैनपुर विकासखण्ड के 41 ग्रामों, देवभोग विकासखण्ड के सात ग्रामों एवं फिंगेश्वर विकासखण्ड के दो ग्रामों में निवासरत् है, वहीं यह महासमुंद जिले के महासमुंद विकासखण्ड के पाँच ग्रामों तथा बागबाहरा विकासखण्ड के 15 ग्रामों में भी निवास करती है। धमतरी जिले के मगरलोड विकासखण्ड के

तीन ग्रामों एवं नगरी विकासखण्ड के पाँच ग्रामों में भी भुंजिया जनजाति का संकेंद्रण दृष्टव्य होता है। इस प्रकार तीनों जिलों के कुल 138 ग्रामों में भुंजिया जनजाति के 2130 परिवार निवासरत् हैं। इस प्रकार गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखण्ड में तीनों जिलों के सभी विकासखण्डों की तुलना में सर्वाधिक 41 ग्रामों में भुंजिया जनजाति निवास करती है। भुंजिया जनजाति का निवास क्षेत्र अधिक व्यापक है। अत: प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन हेतु गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखण्ड का चयन किया गया है। मैनपुर विकासखण्ड का भौगोलिक विस्तार 19-53'55" उत्तरी अक्षांश से 82-14'03" पूर्वी देशांतर के मध्य है तथा इस विकासखण्ड का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 670.52 वर्ग किलोमीटर है। इस क्षेत्र की जलवायु उष्णकटिबंधीय मानसूनी प्रकार की है। मैनपुर विकासखण्ड से पैरी नदी एवं उसकी सहायक सोंढूर नदी प्रवाहित होती है। पैरी नदी का उद्‌गम भातृगढ़ पहाड़ी, मैनपुर पठार से होता है। प्राचीन समय में पैरी नदी को पयोधरा नदी एवं सोंढूर नदी को सुंदराभुति अथवा सोण्ड नदी के नाम से जाना जाता था। मैनपुर विकासखण्ड से होकर राष्ट्रीय राजमार्ग 130 से गुजरती है (मानचित्र 1)।

छत्तीसगढ़ राज्य में निवासरत् विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति की जनसंख्या 2001 की जनगणना के अनुसार 9357 व्यक्ति थी, जो वर्ष 2011 की जनगणना में बढ़कर 10603 व्यक्ति हो गई। इस प्रकार वर्ष 2001 से 2011 के मध्य भुंजिया जनजाति में कुल 1245 व्यक्तियों की शुध्द वृद्धि हुई। वर्ष 2011 में भुंजिया जनजाति की कुल जनसंख्या में पुरुष जनसंख्या 5225 एवं महिला जनसंख्या 5378 दर्ज की गई। भुंजिया जनजाति की दशकीय वृद्धि दर 13.32 प्रतिशत है। भुंजिया जनजाति में लिंगानुपात वर्ष 2011 में 1029 महिला/हजार पुरूष दृष्टव्य हुई, जो तुलनात्मक रूप से छत्तीसगढ़ राज्य के अनुसूचित जनजाति के लिंगानुपात (1020 महिला/हजार पुरुष) से अधिक है। भुंजिया जनजाति की जनसंख्या छत्तीसगढ़ की कुल अनुसूचित जनजातीय जनसंख्या का मात्र 0.13 प्रतिशत है। भुंजिया जनजाति की कुल साक्षरता दर वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार 45.28 प्रतिशत थी, जो 2011 की जनगणना में बढ़कर 50.93 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2001 में भुंजिया जनजाति में पुरुष साक्षरता जहाँ 62.36 प्रतिशत थी, वह वर्ष 2011 की जनगणना में बढ़कर 64.19 प्रतिशत हो गई, वहीं भुंजिया जनजाति में महिला साक्षरता दर वर्ष 2001 की जनगणना में 28.69 प्रतिशत थी, वह बढ़कर वर्ष 2011 की जनगणना में 38.04 प्रतिशत प्रदर्शित हुई।

आँकड़ों के स्रोत एवं विधितंत्र

प्रस्तुत शोध पत्र पूर्णत: प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन से संबंधित आधारभूत प्राथमिक आँकड़ों में विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति परिवारों की आर्थिक संरचना के अंतर्गत उनके जोत के आकार एवं मासिक आय स्तर से संबंधित आँकड़े प्रमुख हैं। सर्वप्रथम भुंजिया विकास अभिकरण से गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखण्ड के उन ग्रामों की सूची प्राप्त की गई, जहाँ भुंजिया जनजाति के परिवार निवासरत् हैं। इस प्रकार मैनपुर

विकासखण्ड में कुल 41 ग्राम प्राप्त हुए, जहाँ भुंजिया जनजाति परिवार वर्तमान में निवास कर रहे हैं। इन ग्रामों की सूची में से 25 से अधिक भुंजिया परिवार वाले ग्रामों को सूचीबद्ध किया गया। इस सूची में कुल 11 भुंजिया जनजाति बाहुल्य ग्राम चयनित हुए। इस प्रकार मैनपुर विकासखण्ड के वृहदतम भुंजिया जनजाति बाहुल्य ग्रामों (11 ग्राम) में से 40 प्रतिशत ग्रामों का दैव निदर्शन विधि द्वारा प्रतिदर्श ग्राम के रूप में चयन किया गया, जिसमें मैनपुर विकासखण्ड से कुल 4 भुंजिया जनजाति बाहुल्य ग्राम चयनित हुए। चयनित प्रतिदर्श 4 ग्रामों से 70 प्रतिशत (कुल 143 परिवार) भुंजिया जनजाति परिवारों की सामाजिक-आर्थिक संरचना के अंतर्गत उनके जोत के आकार एवं मासिक आय स्तर से संबंधित सूचनाएँ अवलोकन, साक्षात्कार एवं अनुसूची के माध्यम से एकत्रित की गई है। मैनपुर विकासखण्ड से कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों के प्रतिदर्श के आकार का सांख्यिकी विधि द्वारा प्रतिदर्श माध्य एवं वास्तविक माध्य के मध्य प्रसरण का सार्थकता परीक्षण किया गया, जो उच्च सार्थक स्तर (0.01) पर प्रमाणित हुआ। मैनपुर विकासखण्ड से चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर उनकी आर्थिक संरचना के अंतर्गत उनके जोत के आकार एवं मासिक आय स्तर को विश्लेषित किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में मैनपुर विकासखण्ड के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण के लिए द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण एवं मानचित्रीकरण

गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों के जोत आकार एवं मासिक आय स्तर के क्षेत्रीय वितरण में विचलन ज्ञात करने हेतु माध्य, मानक विचलन, परास गुणांक एवं विचलन गुणांक आदि सांख्यिकीय विश्लेषण विधियो का प्रयोग किया गया है। मैनपुर विकासखण्ड के चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों के आय स्तर पर विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारकों के प्रभाव के विश्लेषण हेतु जतराना (2001) एवं कॉक्स (1972) द्वारा प्रयुक्त बहुचर मॉडल के अंतर्गत बहुचर गुणनखण्ड सहसंबंध गुणांक विधि का प्रयोग किया गया है। शोधपत्र में आँकड़ों को बोधगम्य एवं आकर्षक बनाने हेतु मानचित्रीकरण विधि का प्रयोग किया गया है।

भुंजिया जनजाति परिवारों के जोत का आकार

भूमि का आकार या भूमि जोत या कृषि जोत या परिचालन जोत शब्द का अर्थ भारत में कृषकों के पास मौजूद कृषि भूमि का औसत आकार है। परिचालन जोत को उस भूमि के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसका उपयोग पूरी तरह या आंशिक रूप से कृषि उत्पादन के लिए किया जाता है। जोत का आकार, अपने धारकों की उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने एवं पर्याप्त मात्रा में आय उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय ग्रामीण परिवेश में जोत के आकार एवं आर्थिक स्तर का सीधा संबंध है। अनुसूचित जनजातीय

परिवारों में जोत के आकार से परिवारों की सामाजिक-आर्थिक दशा का निर्धारण होता है। परिवार में वृहद जोत आकार जहाँ उच्च आर्थिक स्तर में धनात्मक वृद्धि को इंगित करता है, वहीं सीमांत एवं लघु जोत आकार, परिवार की निम्न आर्थिक स्थिति का परिचायक है। जोत का छोटा होना आर्थिक स्थिति को नींव से कमजोर बनाती है, वहीं कमजोरी कृषक के जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती है (साहू, 2017)। इस प्रकार जोत के आकार एवं भुंजिया जनजाति परिवारों के आर्थिक स्तर में सीधा संबंध है। भुंजिया जनजाति परिवार आय के प्रमुख स्रोत के रूप में भूमि पर निर्भर हैं। भूमि का आकार एक मूल्यवान कृषि संपत्ति एवं धन के स्वामित्व को दर्शाता है। जोत जितना बड़ा होगा, जोत में निवेश करने के लिए स्वामित्व में उतना ही अधिक संसाधन तथा क्षमता होगी एवं उत्पादन भी बढ़ेगा। केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय भारत सरकार की कृषि जनगणना के अनुसार मैनपुर विकासखण्ड के विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति परिवारों के जोत आकार को छः भागों क्रमशः भूमिहीन, सीमांत जोत (0-1 हेक्टेयर), लघु जोत (1-2 हेक्टेयर), अर्द्धमध्यम जोत (2-4 हेक्टेयर), मध्यम जोत (4-10 हेक्टेयर) एवं वृहद जोत (10 से अधिक हेक्टेयर) आकार वाले कृषक परिवारों में वर्गीकृत कर विश्लेषित किया गया है। इस प्रकार भुंजिया जनजातीय परिवारों के जोत के आकार का विश्लेषण उनकी आर्थिक दशा के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण है।

भूमिहीन भुंजिया जनजाति परिवार

ऐसे भुंजिया जनजाति परिवार, जिनके पास किसी भी प्रकार की कृषि भूमि उपलब्ध नहीं है, उन्हें भूमिहीन की संज्ञा दी गई है। वर्तमान समय में ऐसे ग्रामीण परिवारों के अनुपात में तेजी से वृद्धि हुई है जो किसी भी भूमि पर खेती नहीं करते हैं (रावल, 2013)। भूमिहीनता उन कारकों में से एक है जो जनसंख्या में गरीबी एवं खाद्य असुरक्षा की अभिव्यक्ति को मूर्त रूप देते हैं। भूमिहीनता का मानव सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। इससे निर्धन लोगों की पर्याप्त भोजन तक पहुँच की अक्षमता जैसी गंभीर समस्या उत्पन्न होती है (चौधरी एवं बातेन, 2010)। मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में 13.29 प्रतिशत परिवार भूमिहीन हैं। चयनित ग्रामों के भुंजिया जनजाति परिवारों में भूमिहीन परिवारों का अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत जहाँ जांगड़ा ग्राम (17.14 प्रतिशत) में प्राप्त हुआ, वहीं इन्दागांव ग्राम (11.11 प्रतिशत) में भूमिहीन परिवारों का न्यूनतम प्रतिशत प्रदर्शित हुआ। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि अधिकांश भूमिहीन भुंजिया जनजाति परिवार जो पहले अपनी भूमि पर खेती करते थे, अब कृषि मजदूर बन गए हैं। इस प्रकार भूमिहीनता से विभिन्न मानव सुरक्षा आयाम खतरे में पड़ रहे हैं।

सीमांत जोत वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवार

एक हेक्टेयर से कम कृषि भूमि के स्वामित्व वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवारों को सीमांत जोत आकार वाले कृषक परिवारों की श्रेणी में रखा गया है। मैनपुर

विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में 48.95 प्रतिशत परिवार सीमांत जोत आकार वाले कृषक हैं। चयनित ग्रामों के भुंजिया जनजाति परिवारों में सीमांत जोत आकार वाले कृषक परिवारों का अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत जहाँ जांगड़ा ग्राम (54.29 प्रतिशत) में प्राप्त हुआ, वहीं तेतलखुटी ग्राम (45 प्रतिशत) में सीमांत जोत आकार वाले कृषक परिवारों का प्रतिशत न्यूनतम प्राप्त हुआ। अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्षा आधारित परिस्थितियों में छोटे एवं सीमांत कृषकों के लिए केवल फसलों से अपने भरण-पोषण के लिए पर्याप्त संतुलित भोजन एवं आय प्राप्त करना कठिन है। इसलिए, उन्हें अपनी कृषि आय, रोजगार एवं अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अन्य उद्यमों को विकसित करने पर बल देना महत्वपूर्ण होगा।

मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में भूमिहीन एवं सीमांत जोत आकार वाले कृषकों के क्षेत्रीय वितरण को ज्ञात करने के लिए सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है। कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में भूमिहीन एवं सीमांत जोत आकार वाले कृषक परिवारों का माध्य 22 परिवार एवं मानक विचलन का मूल्य 4.99 तथा परास गुणांक 0.27 प्राप्त हुआ। कुल चयनित भूमिहीन एवं सीमांत जोत आकार वाले भुंजिया जनजाति कृषक परिवारों का विचलन गुणांक 22.43 प्रतिशत प्राप्त हुआ। इस प्रकार मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में भूमिहीन एवं सीमांत कृषक परिवारों के वितरण में क्षेत्रीय असमानता परिलक्षित हुई।

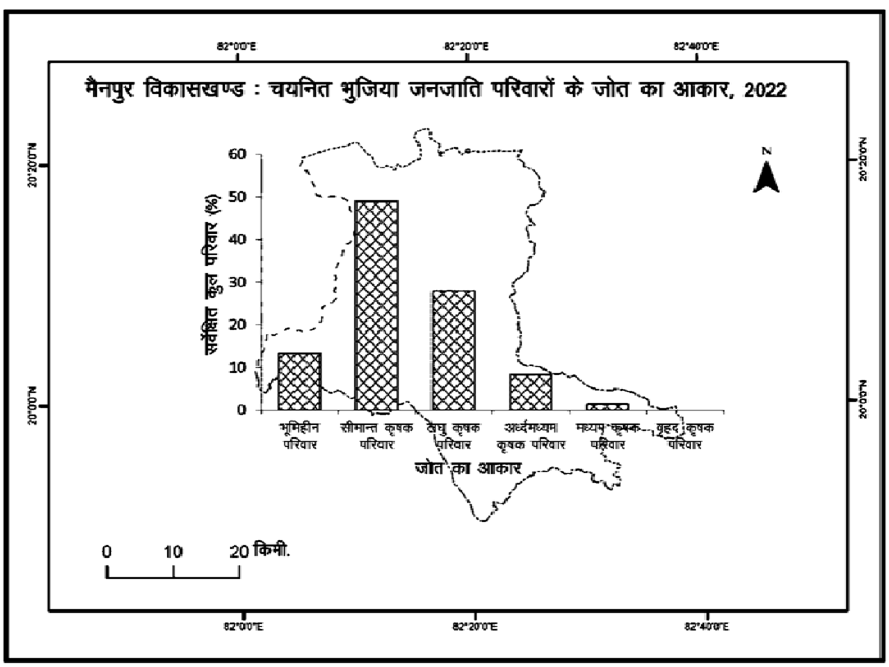

स्रोत– व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2022 मानचित्र 1.2

लघु जोत वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवार

कृषि भूमि वाले 1 से 2 हेक्टेयर भुंजिया जनजाति के कृषक परिवारों को लघु जोत आकार वाले कृषक परिवारों के अंतर्गत रखा गया है। लघु कृषक वे हैं जिनके पास क्षेत्र के अन्य कृषकों की तुलना में सीमित संसाधन हैं (डिक्सन एवं अन्य, 2003)। भारतीय कृषि की लघु जोत आकार वाली विशेषता आज पहले की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण है (देव, 2017)। लघु कृषक वे होते हैं जो अधिकांश श्रम के लिए परिवार के सदस्यों पर निर्भर होते हैं या वे जो जीविका उन्मुख होते हैं, जहाँ कृषि भूमि का प्राथमिक उद्देश्य, मुख्य खाद्यान्न की घरेलू खपत का बड़ा हिस्सा उत्पादित करना होता है (हेज़ेल एवं अन्य, 2007)। मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में 27.97 प्रतिशत परिवार लघु जोत आकार वाले कृषक हैं। चयनित ग्रामों के भुंजिया जनजाति परिवारों में लघु जोत आकार वाले कृषक परिवारों का अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत जहाँ इन्दागांव ग्राम (31.11 प्रतिशत) में प्राप्त हुआ, वहीं जांगड़ा ग्राम (22.86 प्रतिशत) में लघु जोत आकार वाले कृषक परिवारों का प्रतिशत न्यूनतम प्राप्त हुआ। वास्तव में भुंजिया जनजाति परिवारों में लघु जोत आकार वाले कृषक परिवारों के छोटे खेतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए बेहतर कौशल, आधुनिक तकनीक के लिए विस्तारित ऋण, सूचना एवं ज्ञान प्रदान करने जैसे उपायों का किया जाना महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार लघु जोत आकार वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवारों के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली दृष्टिकोण बहुत प्रासंगिक होगा।

अर्द्धमध्यम जोत वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवार

कृषि भूमि 2 से 4 हेक्टेयर तक के स्वामित्व वाले भुंजिया जनजाति परिवारों को अर्द्धमध्यम जोत आकार वाले कृषक परिवारों की श्रेणी में रखा गया है। मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में 8.39 प्रतिशत परिवार अर्द्धमध्यम जोत आकार वाले कृषक हैं। चयनित ग्रामों के भुंजिया जनजाति परिवारों में अर्द्धमध्यम जोत आकार वाले कृषक परिवारों का अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत जहाँ तेतलखुटी ग्राम (10 प्रतिशत) में प्राप्त हुआ, वहीं जांगड़ा ग्राम (5.17 प्रतिशत) में अर्द्धमध्यम जोत आकार वाले कृषक परिवारों का प्रतिशत न्यूनतम प्राप्त हुआ।

मध्यम जोत वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवार

कृषि भूमि 4 से 10 हेक्टेयर के स्वामित्व वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवारों को मध्यम जोत आकार वाले कृषक परिवारों के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है। मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में 1.40 प्रतिशत परिवार मध्यम जोत आकार वाले कृषक हैं। चयनित ग्रामों के भुंजिया जनजाति परिवारों में मध्यम जोत आकार वाले कृषक परिवार केवल तेतलखुटी ग्राम (2.50 प्रतिशत) एवं इन्दागांव ग्राम (2.22

प्रतिशत) में दृष्टव्य हुए, वहीं खोखमा एवं जांगड़ा ग्राम में मध्यम जोत आकार वाले भुंजिया जनजाति परिवारों का प्रतिशत नगण्य प्राप्त हुआ।

वृहद जोत वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवार

कृषि भूमि 10 हेक्टेयर से अधिक के स्वामित्व वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवारों को वृहद जोत आकार वाले कृषक परिवारों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। उल्लेखनीय है कि मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में वृहद जोत आकार वाले कृषक परिवारों का प्रतिशत नगण्य प्राप्त हुआ।

भुंजिया जनजाति परिवारों का मासिक आय स्तर

श्रम या उत्पादों के बदले प्राप्त किया गया धन, आय कहलाता है। आय वह धन है जिससे परिवार न केवल अपना भरण पोषण करता है, अपितु वह अपने भविष्य के लिए भी इसका कुछ अंश सुरक्षित रखता है। पारिवारिक आय पर सामाजिक-आर्थिक कारकों का बड़ा प्रभाव होता है (तुयेन, 2015)। भुंजिया जनजाति परिवारों की आर्थिक संरचना के निर्धारण में उनके आय स्तर का महत्वपूर्ण स्थान है। भुंजिया जनजाति परिवारों में महिला एवं पुरुष दोनों में आय प्राप्त करने हेतु बराबर की सहभागिता देखी जाती है। भुंजिया परिवारों में निम्न आय स्तर उनके निम्न शैक्षिक स्तर एवं निर्वाह कृषि, वनोपज संग्रहण एवं कृषि मजदूरी जैसे निम्न आर्थिक कार्यों में सहभागिता का प्रतिफल है। वास्तव में शिक्षा, व्यवसाय तक पहुँच हेतु दृढ़ता से जुड़ी हुई है तथा विभिन्न सामाजिक समूहों का निम्न शैक्षणिक स्तर उनके निम्न आय स्तर के लिए जिम्मेदार है। आदिवासी परिवार आय में अनियमितताओं के कारण अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रहते हैं। इसके अलावा, बेरोज़गारी, बीमारी, बहिष्कार, जानकारी की कमी, अशिक्षा जैसे अनियंत्रित कारक उन्हें भयंकर गरीबी के जाल में धकेलते हैं (यादव एवं साहो, 2019)। मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों के मासिक आय को तीन भागों क्रमशः 5000 रुपये से कम मासिक आय, 5000 से 10000 रुपये मासिक आय एवं 10000 रुपये से अधिक मासिक आय प्राप्त करने वाले परिवारों में वर्गीकृत कर विश्लेषित किया गया है।

मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में 84.62 प्रतिशत परिवार 5000 रुपये से कम, 12.59 प्रतिशत परिवार 5000-10000 रुपये एवं मात्र 2.80 प्रतिशत परिवार 10000 रुपये से अधिक मासिक आय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार 5000 रुपये से कम एवं 10000 रुपये से अधिक मासिक आय प्राप्त करने वाले भुंजिया जनजाति परिवारों में 30 गुना का अंतर दृश्य हुआ।

मैनपुर विकासखण्ड के चयनित ग्रामों में 5000 रुपये से कम मासिक आय प्राप्त करने वाले भुंजिया जनजाति परिवारों का अपेक्षाकृत सर्वाधिक प्रतिशत जहाँ जांगड़ा ग्राम (88. 57 प्रतिशत) में प्राप्त हुआ, वहीं 5000 रुपये से कम मासिक आय प्राप्त करने वाले भुंजिया

जनजाति परिवारों का अपेक्षाकृत न्यूनतम प्रतिशत तेतलखुटी ग्राम (82.50 प्रतिशत) में दृष्टव्य हुआ। चयनित ग्रामों में 5000-10000 रुपये तक मासिक आय प्राप्त करने वाले भुंजिया जनजाति परिवारों का अपेक्षाकृत सर्वाधिक प्रतिशत जहाँ इन्दागांव ग्राम (13.33 प्रतिशत) में प्राप्त हुआ, वहीं 5000-10000 रुपये तक मासिक आय प्राप्त करने वाले भुंजिया जनजाति परिवारों का अपेक्षाकृत न्यूनतम प्रतिशत जांगड़ा ग्राम (11.43 प्रतिशत) में प्रदर्शित हुआ। 10000 रुपये से अधिक मासिक आय प्राप्त करने वाले भुंजिया जनजाति परिवारों का अपेक्षाकृत सर्वाधिक प्रतिशत जहाँ तेतलखुटी ग्राम (5 प्रतिशत) में प्राप्त हुआ, वहीं जांगड़ा ग्राम में 10000 रुपये से अधिक मासिक आय प्राप्त करने वाले भुंजिया जनजाति परिवारों का प्रतिशत नगण्य रहा।

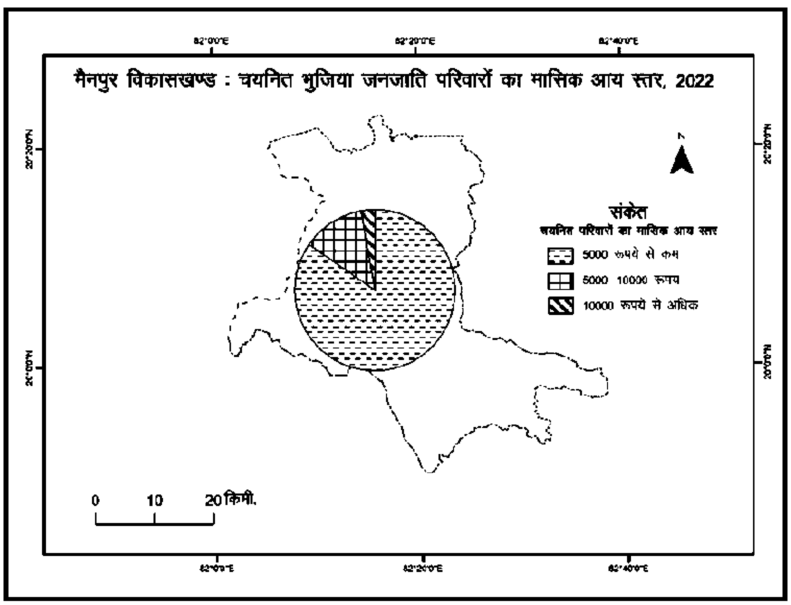

स्रोत– व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2022 मानचित्र 1.3

मैनपुर विकासखण्ड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में 5000 रूपए से कम मासिक आय प्राप्त करने वाले परिवारों के क्षेत्रीय वितरण को ज्ञात करने के लिए सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है। 5000 रूपए से कम मासिक आय प्राप्त करने वाले कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों का माध्य 30 परिवार एवं मानक विचलन का मूल्य 8.06 तथा परास गुणांक 0.35 प्राप्त हुआ। 5000 रूपए से कम मासिक आय प्राप्त करने वाले कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों का विचलन गुणांक 26.64 प्रतिशत प्राप्त हुआ। इस प्रकार मैनपुर विकासखण्ड में 5000 रूपए से कम मासिक आय प्राप्त करने वाले कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों के वितरण में क्षेत्रीय असमानता परिलक्षित हुई।

कई महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक कारक एक परिवार की आय निर्धारित करते हैं। विशेष पिछड़ी जनजाति, समाज में सबसे कमजोर हैं और उनकी आय का स्तर निम्न है। इसलिए उनके निम्न आय स्तर केनिर्धारक कारकों का पता लगाना प्रासंगिक है। विशेष पिछड़ी भुंजिया जनजाति परिवारों के निम्न आय स्तर के निर्धारक कारकों का पता लगाने हेतु जतराना (2001) एवं कॉक्स (1972) द्वारा प्रयुक्त बहुचर मॉडल के अंतर्गत बहुचर गुणनखण्ड सहसंबंध गुणांक विधि का प्रयोग किया गया है। बहुचर कारक विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि मैनपुर विकासखण्ड के चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों के निम्न आय स्तर को बढ़ाने में उनकी निम्न आर्थिक कार्यों में अधिक सहभागिता (निर्वाह कृषि, मजदूरी), निरक्षरता, माध्यमिक स्तर से कम साक्षरता, भूमिहीनता, सीमांत एवं लघु जोत आकार के भूमि स्वामित्व का प्रभाव, उच्च सार्थक स्तर पर प्रभावशील रहा।

निष्कर्ष

मैनपुर विकासखंड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों के जोत के आकार के विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि विकासखण्ड के 13.29 प्रतिशत भुंजिया जनजाति परिवार भूमिहीन, 48.95 प्रतिशत परिवार सीमांत जोत आकार वाले कृषक, 27.97 प्रतिशत परिवार लघु जोत आकार वाले कृषक, 8.39 प्रतिशत परिवार अर्ध्दमध्यम जोत आकार वाले कृषक एवं 1.40 प्रतिशत परिवार मध्यम जोत आकार वाले कृषक परिवारों की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं, वहीं वृहद जोत आकार वाले कृषक परिवारों का प्रतिशत मैनपुर विकासखंड के कुल चयनित भुंजिया जनजाति परिवारों में नगण्य प्राप्त हुआ। भुंजिया जनजाति के अधिकांश कृषक सीमांत एवं लघु जोत आकार वाले हैं। उन्हें उचित एवं स्थिर कीमतों की कमी, उर्वरकों एवं खादों पर उच्च लागत, उच्च लेनदेन लागत तथा बिचौलियों द्वारा शोषण जैसी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के समाधान हेतु छोटे खेतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए बेहतर कौशल एवं आधुनिक तकनीक के लिए विस्तारित ऋण, सूचना तथा ज्ञान प्रदान करने जैसे उपायों का किया जाना महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार लघु जोत आकार वाले भुंजिया जनजाति के कृषक परिवारों के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली दृष्टिकोण बहुत प्रासंगिक होगा, जिससे भुंजिया जनजाति के कृषक परिवारों के विकास तथा कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा। मासिक आय स्तर के विश्लेषण से स्पष्ट हुआ की सर्वाधिक 84.62 प्रतिशत भुंजिया जनजाति परिवार जहाँ 5000 रुपये से कम मासिक आय प्राप्त करते हैं, वही 10000 रुपये से अधिक मासिक आय प्राप्त करने वाले भुंजिया जनजाति परिवार 2.80 प्रतिशत प्रदर्शित हुए। भुंजिया जनजाति के परिवारों के आय स्तर में वृद्धि के लिए उन्हें कौशल विकास का प्रशिक्षण प्रदान करना, उच्च शिक्षा हेतु प्रोत्साहित करना एवं उनके निवास क्षेत्र में लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास जैसे उपाय किया जाना प्रासंगिक होगा। इसी प्रकार भुंजिया जनजातीय परिवारों को अपने क्षेत्र के आस-पास रोजगार के अवसर प्रदान करके उनकी आय से संबंधित समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

सन्दर्भ

चौधरी, एम.एस. एंड एम.ए. बातेन (2010). 'इनक्रीजिंग लैंडलेसनेस एंड इट्स इंपैक्ट ऑन फूड', *ओआईडीए इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ सस्टेनेबल डेवलपमेंट,* वॉल्यूम 1, पेज 79, आईएसएसएन: 19236662.

कॉक्स, डी.आर. (1972). 'रिग्रेशन मॉडल्स एंड लाइफ टेबल्स', *जर्नल ऑफ द रॉयल स्टैटिस्टिकल सोसाइटी,* वॉल्यूम 34 (सीरीज बी), पेज 187-220.

देव, एस. महेन्द्र (2017). *स्मॉल फार्मर्स इन इंडिया : चैलेंजेस एंड अपॉर्चुनिटीज,* इंदिरा गांधी इंस्टिट्यूट ऑफ डेवलपमेंट रिसर्च, मुंबई, पेज 5.

डिक्सन, जे.के. एवं अन्य (संपादक) (2003). 'अप्रोचेस टू एसेसिंग द इंपैक्ट ऑफ ग्लोबलाइजेशन ऑन अफ्रीकन स्मॉल होल्डर: हाउसहोल्ड एंड विलेज इकोनॉमी मॉडलिंग', *प्रोसीडिंग्स ऑफ ए वर्किंग सेशन ऑन ग्लोबलाइजेशन एंड द अफ्रीकन स्मॉल होल्डर स्टडी,* एफएओ एंड वर्ल्ड बैंक, रोम एफएओ ऑफ यूएन.

हेजेल पी.सी. एवं अन्य (2007). 'द फ्यूचर ऑफ स्मॉल फार्म फॉर पॉवर्टी रिडक्शन एंड ग्रोथ', *डिस्कशन पेपर 42-2020*: वॉशिंगटन, डी.सी., इन्टरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट (आईएफपीआरआई).

जतराना, एस. (2001). 'हाउसहोल्ड एनवायरमेंटल फैक्टर्स एंड देयर इफैक्ट्स ऑन इन्फेंट मोर्टेलिटी इन मेवात रीजन ऑफ हरियाणा स्टेट इंडिया', *डेमोग्राफी ऑफ इंडिया,* वॉल्यूम 30, नं. 1, पृ. 31-47.

साहू, पी. (2017). 'दुर्ग जिले की कृषि एवं ग्रामीण विकास पर सिंचाई का प्रभाव: एक स्थानिक-कालिक विश्लेषण', *अप्रकाशित शोध प्रबंध,* पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.). पृ. 208.

तुयेन, टी.क्यू. (2015). 'सोशियो-इकोनॉमिक डिटर्मिनेंट्स ऑफ हाउसहोल्ड इनकम अमंग एथनिक माइनॉरिटीस इन द नॉर्थईस्ट माउंटेंस वियतनाम', *क्रोएशियाई इकोनॉमिक सर्वे,* 17(1), पृ. 139-159.

विकास, रावल (2013). 'चेंजेस इन द डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ ऑपरेशनल लैंड होल्डिंग्स इन रूरल इंडिया: ए स्टडी ऑफ नेशनल सैम्पल सर्वे डाटा', *रिव्यु ऑफ एग्रेरियन स्टडीज,* वाल्यूम 3, नं. 2, पृ. 73-74.

वैष्णव, टी.के. (2018). *छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ,* छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, पृ. 1, आईएसबीएन: 978-93-82313-35.9.

यादव, एम.के. एंड ए.के. साहो (2019). 'एन इम्पीरिकल स्टडी ऑफ डिटरमाइनिंग फैक्टर्स ऑफ ट्राइबल हाउसहोल्ड इनकम : ए केस स्टडी ऑफ थारू ट्राइब्स इन इंडिया', *ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस स्टडीज,* वाल्यूम 8(1), पृ. 102, आईएसएसएन: 2319-829एक्स.

लेखकों के लिए अनुदेश

मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल में समाज विज्ञान से सम्बन्धित सैद्धान्तिक आलेख, अनुभवजन्य शोध आधारित आलेख, टिप्पणियाँ और पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित की जाएँगी। लेखकों से निवेदन है कि अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु प्रेषित करते समय निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखें -

- कृपया अपनी रचना को यूनीकोड फॉन्ट में टंकित कर एमएस-वर्ड फाइल में mpissrhindijournal@gmail.com अथवा mailboxmpissr@gmail.com पर ई-मेल के माध्यम से प्रेषित करें। शोध आलेख की शब्द सीमा 3500 से 5000 के बीच होना चाहिए। शोध आलेख के साथ 100-150 शब्दों में शोध आलेख का सारांश भी अनिवार्य है।
- विशेष परिमाण संख्या जैसे 2 प्रतिशत या 5 किलोमीटर को सूचित करने के अतिरिक्त इकाई अंकों (1-9) को शब्दों में ही लिखें जबकि दहाई एवं उससे अधिक की संख्या को अंकों में लिखें।
- किसी भी वर्तनी के लिए एकरूपता महत्वपूर्ण होती है। सम्पूर्ण रचना में एक ही शब्द को विभिन्न प्रकार से नहीं लिखा जाना चाहिए। इसमें प्रचलन और तकनीकी सुविधा का ध्यान रखा जाना चाहिए।
- रचना में उद्धृत वाक्यांशों को दोहरे उद्धरण चिह्न ("...") के मध्य दें। यदि उद्धृत अंश तीन वाक्यों से अधिक का हो तो उसे अलग पैरा में दें। उद्धृत अंश में लेखन की शैली और वर्तनी में कोई भी परिवर्तन अपनी ओर से न करें।
- सभी टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ शोध आलेख के अंत में दिये जाएँ तथा शोध आलेख में यथास्थान उनका आवश्यक रूप से उल्लेख करें। सन्दर्भ सूची में किसी भी सन्दर्भ का अनुवाद करके न लिखें। सन्दर्भों को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। यदि सन्दर्भ में हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा का मिश्रण हो तो सन्दर्भ को लिप्यान्तरित कर देवनागरी लिपि में ही लिखें।
- समसामयिक प्रासंगिकता, स्पष्ट एवं तार्किक विश्लेषण, सरल एवं बोधगम्य भाषा, उचित प्रविधि आदि शोध आलेख के प्रकाशन हेतु स्वीकृति के मानदण्ड होंगे। प्राप्त रचनाओं की समीक्षा प्रकाशन से पूर्व विषय विशेषज्ञों द्वारा की जाती है। यदि समीक्षक रचना में संशोधन हेतु अभिमत देते हैं तो रचनाकार को वांछित संशोधन करने होंगे। किसी भी शोध आलेख को स्वीकृत/अस्वीकृत करने का अधिकार सम्पादक का होगा।
- पत्र व्यवहार का पता : सम्पादक, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल, म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, 6, प्रो. रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन - 456010 (म.प्र.)।

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली तथा उच्च शिक्षा मन्त्रालय, मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित स्वायत्त शोध संस्थान है। कार्य एवं स्वरूप की दृष्टि से मध्यप्रदेश में यह अपनी तरह का एकमात्र शोध संस्थान है। समाज विज्ञानों में समकालीन अन्तरशास्त्रीय संदृष्टि को बढ़ावा देते हुए समाज विज्ञान मनीषा का सशक्त संवाहक बनना संस्थान का मूल उद्देश्य है।

अपनी संस्थापना से ही यह संस्थान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक एवं विकास की विभिन्न समस्याओं, मुद्दों और प्रक्रिया ओं पर अन्तरशास्त्रीय शोध को संचालित और प्रोत्साहित करते हुए सामाजिक, आर्थिक और नीतिगत महत्त्व की शोध परियोजनाओं को क्रियान्वित करता है।

संस्थान की शोध गतिविधियाँ मुख्यतः पंचायत राज एवं ग्रामीण विकास, अनुसूचित जाति एवं जनजाति से सम्बन्धित मुद्दे, विकास एवं संस्थापन, पर्यावरण अध्ययन, सामाजिक न्याय, लोकतन्त्र एवं मानवाधिकार, सूचना तकनीकी तथा समाज, शिक्षा एवं बाल अधिकार एवं नवीन आर्थिक नीतियाँ आदि संकेन्द्रण क्षेत्रों पर केन्द्रित हैं।

परिसंवादों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि अकादमिक अनुष्ठानों का आयोजन, समाज विज्ञानों में अनुसन्धानपरक नवोन्मेष एवं नवाचारों का प्रवर्तन, मन्त्रालयों एवं अन्य सामाजिक अभिकरणों को परामर्श एवं शोधपरक सहयोग प्रदान करना संस्थान की अन्य प्रमुख गतिविधियाँ हैं। संस्थान में एक संवर्द्धनशील पुस्तकालय एवं प्रलेखन केन्द्र है जिसमें समाज विज्ञानों पर पुस्तकें, शोध जर्नल्स और प्रलेख उपलब्ध हैं।

संस्थान शोध कार्यों को अवसरिक पत्रों, विनिबन्धों, शोध-पत्रों एवं पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करता है। इसके अतिरिक्त दो षाण्मासिक शोध जर्नल - मध्यप्रदेश जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज़ (अँग्रेजी) एवं मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल (हिन्दी) का प्रकाशन भी संस्थान द्वारा किया जाता है।

भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय में
पं.क्र. MPHIN/2003/10172 द्वारा पंजीकृत

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान के लिए
डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया द्वारा
6, रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश) से
प्रकाशित एवं मुद्रित